संशोधक और प्रकाशक—
माननीय श्रीयुक्त उत्तम भिक्षु
बर्मा-वासी

विचार और सामग्रीदाता—
श्रीमत् भदंत बोधानंदजी महास्थविर,
बुद्धविहार, लखनऊ

मुद्रक—
विश्वमित्र प्रेस
१४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट
कलकत्ता

लेखक और संपादक—
पं० चंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु
लखनऊ

प्राप्तिस्थान—
हिंदू-समाज-सुधार कार्यालय
सआदतगंज रोड, लखनऊ

❀ प्रेमोपहार ❀

श्रीयुक्त...

....की सेवा में—

प्रिय सहृदय !

लीजिए, यह "भगवान् गौतम बुद्ध की जीवनी और उपदेश" (अर्थात् "Life and Teachings of Lord Budha") नामक ग्रंथ आपके कर-कमलों में सादर समर्पित है। भगवान् बुद्ध संसार के श्रेष्ठतम महापुरुष, उनका जीवनचरित पवित्रता का पुंज और उनके उपदेश अलौकिक शांतिदायक हैं। इसे श्रद्धा और प्रेम के साथ बार-बार पढ़िए। जितनी श्रद्धा और जितनी अधिक भक्ति के साथ आप इसे पढ़ेंगे, उतना ही अधिक अलौकिक आनंद और लोकोत्तर शांति आपको प्राप्त होगी। आपको अनुभव होगा कि राग-द्वेष की अग्नि से दिन-रात जल रहे संसारके प्राणियों से आप उच्चतर हैं, आपमें मनुष्यत्व का विकास हो गया है, देवत्व का हो रहा है, और आप देवताओंके समाज में मिलने जा रहे हैं। क्योंकि करुणानिधान भगवान् सम्यक् संबुद्ध आप पर मंगल की वर्षा कर रहे हैं। तथास्तु

आपका—

स्थान.............................

....

....

e and Teaching of Lord Buddha in Hindi.

). APPROVER & PUBLISHER



REV. OTTAMA BHIKHHU

OF

BURMA

BORN IN AKYAB

MAHABODHI SOCIETY

4A, COLLGE SQUARE

CALCUTTA.

2476
1933

निवेदन

बौद्ध-धर्म संसार का सबसे महान् धर्म है। इस धर्म के आलोक ने केवल एशिया-खंड को ही नहीं, अपितु समस्त संसार को समालोकित किया है, और इसके अनुयायियों की संख्या इस पृथिवी पर सबसे अधिक है। इस महान् धर्म के प्रवर्तक भगवान् गौतम बुद्ध इसी भारत-भूमि में, एक प्रतिष्ठित क्षत्रिय-वंश में, उत्पन्न हुए जो इस अश्रुत-पूर्व परम पवित्र लोकोत्तर-धर्म का प्रचार करने के कारण शास्ता, जगद्गुरु और धर्मचक्रवर्ती सम्राट् कहलाए। भारत-भूमि में ही इस धर्म का आविर्भाव और प्रकाश होने के कारण धार्मिक जगत् में भारतवर्ष का स्थान सर्वोच्च है, और इसे जगद्गुरु होने का गौरव प्राप्त हुआ। भारत के इस गौरव को पृथिवी के समस्त विद्वानों ने मुक्तकंठ से स्वीकार किया है। पृथिवी के एक तिहाई मनुष्य बुद्ध-भूमि भारत की मिट्टी को पूजनीय मानकर मरणासन्न बौद्ध-भाई के मुख में, गंगाजल और तुलसी की तरह, डालकर प्राणी की सद्गति समझते हैं! यह हम भारतीयों के लिये गर्व करने की बात है।

बौद्ध-धर्मावलंबियों का कथन और विश्वास है कि "बौद्ध-धर्म ही भारत का मूल धर्म है तथा धर्म से मनुष्य का नित्य-संबंध है। जब-जब मनुष्य-समाज सम्यक् धर्म को भूलकर नाना प्रकार की मिथ्या दृष्टियों में फँस जाता है और भोग-परायण हो संसार में राग-द्वेष के विषैले बीज बोकर दुःखित, पीड़ित और पतित हो जाता है, तब-तब उसके दुःख-निवारण और कल्याण के लिये परम कारुणिक बुद्ध संसार में उत्पन्न होकर धर्म के सम्यक् स्वरूप को अपने उपदेशों और चरित्रों द्वारा सिखाते हैं। इस कारण प्रवाह-रूप से बुद्ध-धर्म अनादि काल से चला आ रहा है, और अनंत काल तक रहेगा। ये सम्यक् संबुद्ध साधारण मनुष्य नहीं होते अपितु अनंत ज्ञान, अपार करुणा और अगाध विशुद्ध गुणों के आगार होते हैं। जिस प्रकार रोगी को अपने रोग की निवृत्ति के लिये एक सच्चे वैद्य की आवश्यकता होती है, ऐसे ही इस पृथिवी के दुःखित प्राणियों को अपने दुःख-निवारण लिये एक निर्दोष सर्वांग-पूर्ण पुरुष की आव-

श्यकता रहती है, और इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये निर्दोष पूर्ण-पुरुष अर्थात् सम्यक् संबुद्ध बनने के लिये बुद्ध-पुरुषों को भी बहुत बड़ी तपस्या और आध्यात्मिक योग्यता की तैयारी करनी पड़ती है। इन बुद्ध-पुरुषों का आविर्भाव किसी जाति या देश-विशेष के लिये नहीं होता, वरन् समस्त संसार के व्यथित जीवों के दुःख-मोचन के लिये हुआ करता है। इसी कारण बुद्ध-पुरुष संसार के समस्त मूल्यवान् रत्नों में सर्वश्रेष्ठ रत्न हैं; और जीवों के कल्याण के लिये उनका उपदेश किया हुआ धर्म भी संसार के समस्त मूल्यवान् रत्नों में सर्वश्रेष्ठ है; एवं उस धर्म के अनुरूप अपना आदर्श जीवन बनाकर उस धर्म का संसार में प्रचार करनेवाले महात्मा पुरुषों का जो संघ है, वह भी संसार के समस्त मूल्यवान् रत्नों में सर्वश्रेष्ठ रत्न है। अतएव बुद्ध, धर्म और संघ ये तीन रत्न हैं, और संसार के समस्त मूल्यवान् रत्नों में सर्वश्रेष्ठ हैं। जब कोई भाग्यमान् मनुष्य इन तीनों रत्नों की शरण में आता है, तो उसे सच्चा सुख और शांति प्राप्ति होती है।" यदि यह सत्य है, तो हम भारतीयों का यह अत्यंत दुर्भाग्य है जो हम अपने ऐसे महान् प्रभु को भूले हुए हैं, और मिथ्या दृष्टियों में फंसकर उनके लोकोत्तरीय उपदेश एवं कल्याणकारी अनुशासन को नहीं मालूम क्या-क्या अंट-शंट समझे और माने बैठे हैं।

अभी कल की बात है जब महात्मा गांधी ने भारतीय दलित-जातियों के लिये नए सुधारों में हिंदुओं से अलग प्रतिनिधित्व और अलग चुनावकी घोषणा के विरुद्ध आमरण-अनशन की भीषण प्रतिज्ञा की, तो दलितों के साथ होनेवाले सामाजिक अत्याचारों को सोचकर सारा हिंदू-समाज उबल पड़ा था। उस समय लज्जा और आत्मग्लानि से प्रेरित होकर हिंदी के एक सुप्रसिद्ध पत्र ने पश्चात्तापपूर्वक नीचे-लिखी पंक्तियां प्रकाशित की थीं—

"शताब्दियों से हम पाप करते चले आ रहे हैं। हमने जिस सामाजिक अत्याचार का विधान सैकड़ों वर्ष पूर्व किया था, वह आज बहुत भीषण दिखाई देता है !......जितना अन्याय, जितना अनाचार और जितना अत्याचार हमने किया है, उसका स्मरण करके जी काँप उठता है !...... धार्मिक व्यवस्था और सामाजिक सुप्रबंध के नाम पर हमने जाति-भेद के विष-बीज को शताब्दियों तक बोकर, एक संप्रदाय को दबाकर दूसरे संप्रदाय को बड़प्पन देने के लिये जाति को टुकड़े-टुकड़े बाँटकर, घोर गृह-कलह की नींव

रक्खी, और इस सर्वनाश की ओर बढ़ते हुए हम बड़े खुश थे। परंतु आज जिनके आँखें हैं, वे देख सकते हैं कि जिस मार्ग पर हम चलकर आए हैं, वह हमें केवल सर्वनाश की ओर ले जा सकता है!......हम आज ऐसे मद में हैं कि हम यह भी भूल चुके हैं कि जिस डाल पर हम बैठे हुए हैं, उसीको हमें न काटना चाहिए!......जिन्हें हम अछूत और नीच समझते हैं, वे ही वास्तव में हमारे आधार और हमारे सामाजिक जीवन के प्रधान स्तंभ हैं, उन्हीं के नरमुंडों के ऊपर हमारी उच्चता का सिंहासन स्थापित है। परंतु समाज ने उनके लिये जीवन में ही मृत्यु की व्यवस्था कर दी है!...... वे हमारी खोखली, सारहीन और मूर्खतापूर्ण उच्चता के घमंड के आगे मनुष्य होते हुए भी कुत्ते-बिल्ली, मक्खी-मच्छड़ से भी अधम और नीचतम प्राणी हैं!!!......पत्थर की मूर्तियों की बात नहीं है, संगदिलों की चर्चा नहीं है, जिनके दिल है, जो वेदना का अनुभव कर सकते हैं, वह तो आज अपने पापों का कोई भी उपयुक्त प्रायश्चित्त ही नहीं देखते! उन्हें तो सर्वनाश ही दिखाई देता है!! स्वतंत्रता, समता और भ्रातृभाव के सिद्धांत हमारी ज़बान पर हैं और हम उनकी सौ-सौ क़सम खाते हैं, परंतु हमारे जीवन का प्रत्येक क्षण उन्हीं सिद्धांतों की क्रूरतम हत्या में व्यतीत होता है!!!......आज यरवदा के क़ैदी (अर्थात् महात्मा गांधी) ने हमारे इन्हीं पापों के प्रायश्चित्त का भार अपने ऊपर लिया है! आज से दो हज़ार वर्ष पूर्व 'मानव पापों' के लिये मसीह ने जो प्रायश्चित्त किया था, आज उसी घटना की पुनरावृत्ति होने जा रही है!! संसार का एक वैसा ही महान् पुरुष, दूसरों की ज़बर्दस्ती से नहीं, अपने 'ईश्वर की आवाज़' को सुनकर, अपने शीश को अपने हाथ में लेकर बलि-वेदी की ओर बढ़ रहा है!!!......"

उपर्युक्त पंक्तियों में हिंदुओं के सामाजिक अत्याचार के विरुद्ध जो वेदना, जो व्यथा और जो व्याकुलता प्रकट हुई है और अकातर अंतःकरण से पश्चात्ताप-पूर्वक सच्चा प्रायश्चित्त करने की जो भावना उद्भासित हुई है, उसके प्रति 'साधु-साधु' कहकर यह लिखने का साहस हुआ है कि एक दिन हिंदुओं के धार्मिक अत्याचारों तथा ब्राह्मणी-धर्म के धूर्तता-पूर्ण मिथ्या प्रचारों के विरुद्ध भी न्यायनिष्ठ, विवेकवान् और धर्मपरायण शिक्षित हिंदू-समाज को

विश्ववंद्य जगद्गुरु भगवान् गौतम बुद्ध और उनके त्रितापहारी धर्म के प्रति की गई अवहेलना, प्रमाद और तिरस्कार के लिये भी रो-रोकर पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त करना होगा ! ब्राह्मणी भूलभुलैया और ब्राह्मणी अज्ञानांधकार के घटाटोप की ओट में छिपे हुए बुद्ध-ज्ञान-रूपी विश्वप्रकाशक प्रकाशपुंज सूर्य की ज्योतिर्मयी किरणें मिथ्या मेघमंडल को विदीर्ण करके तमसाच्छन्न भारत में ज्यों-ज्यों द्रुत-वेग से विकीर्ण होकर अपना आलोक-विस्तार करेंगी, त्यों-त्यों वह दिन निकट आता जायगा, और उस दिन सत्य के जिज्ञासु शिक्षित आर्य-हिंदू बंधुगण यदि अधिक नहीं, तो कम-से-कम हिंदी-साहित्य के विद्वान् लेखक, सहृदय-हृदय, न्यायनिष्ठ श्रीयुत पं० वेंकटेशनारायण त्रिपाठी एम० ए० की नीचे लिखी पंक्तियों का तो अपने अंतःकरण से अवश्य ही समर्थन करेंगे। त्रिपाठीजी ने लिखा है—

"दुःख की बात है कि बुद्धदेव के विषय में, उनकी जन्मभूमि भारत-वर्ष में, बड़ी प्रचंड अनभिज्ञता फैली हुई है। पुराणों के पढ़ने और सुननेवालों के विचार से, भगवान् विष्णु ने संसार को बहकाने के लिये बुद्ध का अवतार लेकर नास्तिकता का प्रचार किया, और शंकर स्वामी ने अपनी प्रबल युक्तियों से बौद्ध-मत के चिथड़े-चिथड़े कर सनातन हिंदू-धर्म का पुनरुद्धार किया। अँगरेज़ी पढ़नेवाले विद्यार्थियों को भी बुद्ध और उनके सात्त्विक धर्म के विषय में कुछ ऐसी ही ऊटपटाँग बातें स्कूल और कालेजों में पढ़ा दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त हम इन परमपूज्य देवता के जीवन और उनके दुःखमोचन और पापहरण उपदेशों से बिलकुल ही अनभिज्ञ हैं। जिस परम-पुरुष को एकतिहाई दुनिया पूजती है, जिसके उपदेशों में करोड़ों स्त्री-पुरुषों को शांति प्राप्त होती है, जिसका जीवन सर्वोत्कृष्ट और परम पवित्र है, जिसकी शिक्षा का आदर ईसाई-धर्म से असंतुष्ट योरप के बड़े-बड़े विद्वानों को करना पड़ा, जिसके धर्म को, कई बातों में, अब सभ्य-संसार अपूर्व और सर्वोच्च स्वीकार करता है, बड़े शोक की बात है कि उसके देशवासी उससे और उसके धर्म से विमुख हों ! जिसे सारा संसार पूजने को तैयार हो, वही अपने देश में अनजान और असम्मानित रहे ! जो कुछ अत्याचार हम लोगों ने बुद्धदेव और बौद्ध-धर्म पर किए हैं, वे अनेक और

क्रूर हैं ! हमारी कृतघ्नता की कथा बड़ी लंबी और दारुण है !! पर अब हमको इस कलंक के मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए, इस अपयश को दूर करने पर कटिबद्ध होना चाहिए !!!......हमें यह याद रखना चाहिए कि गौतम का जन्म हिंदू-घराने में हुआ था। उनकी सारी ज़िंदगी में भारतीयता भरी रही। हम अवश्य ही दावे के साथ कह सकते हैं कि बुद्ध हिंदू-जाति में सबसे महान्, सबसे अधिक बुद्धिमान् और सबसे उत्तम पुरुष थे !......"

बस, इस विषय में अपनी ओर से इससे अधिक कुछ और न लिखकर हिंदी-प्रेमी सज्जनों से हमारा यही निवेदन है कि आजकल जबकि हिंदी को सर्वांग-पूर्ण राष्ट्र-भाषा बनाने का प्रयत्न हो रहा है, और हिंदू-संगठन तथा एशियाटिक महासंघ की आवश्यकता प्रकट की जा रही है, ऐसी अवस्था में, हिंदी में, एशिया के सबसे महान् धर्म के साहित्य का प्रचार होना कितना आवश्यक और कितना वांछनीय है, इस बात का अनुभव सहृदय पाठक स्वयं करें। बौद्ध-धर्म के विषय में हिंदी में आठ-दस पुस्तकें मेरे देखने में आईं, किंतु उन सभी में विद्वान् लेखकों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार भगवान् बुद्ध के पावन चरित को चित्रित करने की चेष्टा की है; किसी लेखक ने यह दिखाने का प्रयत्न नहीं किया कि बुद्ध भगवान् को उनके अनुयायी, बौद्ध-शास्त्र और बौद्ध-जगत् किस दृष्टि से देखते हैं। प्रगतिशील हिंदी-साहित्य में इस अभाव की पूर्ति के लिये भगवान् गौतम बुद्ध की यह संक्षिप्त उपदेशात्मक जीवनी मूल बौद्ध-ग्रंथों के आधार पर, बौद्ध-महात्माओं के विचारों के अनुसार, बौद्ध-भावों से आपन्न होकर लिखी गई है। लखनऊ-निवासी श्रीमत् भदंत बोधानंदजी महास्थविर इस पुस्तक के विचार और सामग्री-दाता हैं तथा बर्मा-वासी माननीय श्रीयुक्त उत्तम भिक्षुजी महाराज इसके संशोधक और प्रकाशक। यह ग्रंथ इन्हीं दोनों बौद्ध-महात्माओंका आदरणीय प्रसाद है। हाँ, इसके लिखने में मैंने यथासाध्य सरल, सुबोध हिंदी में बौद्ध-भावों को हिंदू-समझबूझ की शैली में प्रकट करने की चेष्टा की है। इस पुस्तक में भगवान् के कुछ अलौकिक चमत्कारों का

उल्लेख हुआ है, उसके विषय में निवेदन है कि जो सज्जन बुद्ध भगवान् को सर्वोपरि अर्हंत या विष्णु भगवान् का नवाँ अवतार मानते हैं, अथवा महर्षि पतंजलि के मतानुसार जिनका योग-विभूतियों पर विश्वास है, उन्हें तो संदेह करने का स्थान ही नहीं है; किंतु जो लोग यह कुछ नहीं मानते, उनकी सेवा में सविनय निवेदन है कि वे चमत्कारों को त्यागकर केवल ऐतिहासिक महापुरुष की दृष्टि से ही बुद्ध भगवान् के अकाट्य तर्क, अनुल्लंघनीय ज्ञान, अलौकिक धर्म और अमृतमय उपदेशों से लाभ उठावें। हिंदू-भाइयों से सानुरोध निवेदन है कि हिंदू-जाति के गौरव-स्वरूप भगवान् बुद्ध का भारत पर जो ऋण है, उसके नाते उनपर श्रद्धा करके उनके इस उपदेश-पूर्ण जीवनचरितको पढ़ने का कष्ट स्वीकार करें। आशा है, इससे उन्हें बहुत-कुछ लाभ होगा।

करुणामय भगवान् से प्रार्थना है कि इस ग्रंथ के पाठकों के हृदय विशाल हों, और उनमें बुद्ध भगवान् की भक्ति तथा बौद्ध-साहित्य, बौद्ध-संस्कृति एवं बौद्ध-धर्म में अनुराग उत्पन्न हो। तथास्तु।

विनयावनत—

हिंदू-समाज-सुधार कार्यालय,
लखनऊ, १ अप्रिल, १९३३

चंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु

विषय-सूची

वंदना

नमो तस्स भगवतो अर्हतो सम्मा संबुद्धस्स

यो सन्निसन्नो वर बोधिमूले मारं ससेनं महतिं विजेत्वा;
सम्बोधिमागञ्छि अनन्तज्ञानो लोकुत्तमो तं पणमामि बुद्धम् ।

अर्थ—जिन अनंत ज्ञानी पुरुषोत्तम ने पवित्र बोधिवृक्ष के नीचे विराजमान हो बहुत बड़ी सेना के सहित मार को जीतकर सम्यक् ज्ञान लाभ किया है, उन भगवान् सम्यक् संबुद्ध को मैं प्रणाम करता हूँ ।

अट्ठङ्गिको अरियपथो जनानां मोक्खप्पवेसायुजुको व मग्गो ;
धम्मो अयं सन्तिकरो पणीतो नीय्याणिको तं पणमामि धम्मम् ।

अर्थ—जो आर्य अष्टांगिक मार्ग से विशिष्ट, सब लोगों के मोक्ष प्राप्त करने का सीधा मार्ग, परम शांतिदायक, अतिश्रेष्ठ और निर्वाण में ले जानेवाला है, उस परम पवित्र धर्म को मैं प्रणाम करता हूँ ।

संघो विसुद्धो वर दक्खिनेय्यो सन्तिन्द्रियो सब्बमलप्पहीनो ;
गुणे हि नेकेहि समिद्धिपत्तो अनासवो तं पणमामि संघम् ।

अर्थ—जो परम पवित्र और दान करने के लिये अति श्रेष्ठ पात्र है, जिसकी इंद्रियाँ शांत और जो सब प्रकार के पाप-मलों से हीन है, जो अनेक दिव्य गुणों से विभूषित और आसव (तृष्णा) से रहित है, उस परम पावन संघ को मैं प्रणाम करता हूँ ।

बुद्धं शरणं गच्छामि
धम्मं शरणं गच्छामि
संघं शरणं गच्छामि

बुद्ध के आविर्भाव का समय

भगवान् गौतम बुद्ध के आविर्भाव के समय इस देश में धर्म की विचित्र अवस्था थी। लोग धर्म के वास्तविक रूप को भूलकर धर्माभास और मिथ्या दृष्टियों में फँस गए थे। सदाचरण, संयम, लोक-हित, आध्यात्मिक शांति और निर्वाण की चर्चा लुप्तप्राय हो गई थी और तत्कालीन प्रचलित धर्मों में रूढ़ियों की उपासना, शुष्क तर्क और मिथ्या आडंबर चरम सीमा को पहुँच गया था।

उस समय इस देश में यज्ञ, होम, बलिदान, तंत्र, मंत्र, जादू, टोना और अभिचार का बाज़ार गरम था। भारत अश्वमेध, गोमेध, नरमेध और वाजपेय आदि यज्ञों की वेदी बना हुआ था। काशी, कोशल, कुरु, पांचाल और मगध आदि राजधानियों में जिधर देखो उधर राजा-महाराजा बड़े समारोह के साथ यज्ञ करते हुए दृष्टिगोचर होते थे। यज्ञवेदी निरीह पशुओं के रक्त से सींची जाती थी और यज्ञों में आहुत होनेवाले पशुओं के मांस और मज्जा के चटचट शब्द और धुएँ से आकाश गूँज उठा था। सोम-सुरा-पान से उन्मत्त होकर पुरोहित लोग यज्ञ-मंडप में यजमानों की स्त्रियों के साथ लज्जाहीन विनोद करते थे। परमोपयोगी निरीह गो-जाति के अकारण संहार से पृथ्वी हिल उठी थी और गो-हिंसा के महापाप से प्रजा में ९८ प्रकार के रोग फैल गए थे! यज्ञों में निरंतर पशु-वध होने के कारण मनुष्यों के हृदय उत्तरोत्तर कठोर और निर्दय होते जा रहे थे। लोग बाह्य आडंबर-पूर्ण कर्मकांडों

को ही धर्म का मुख्य अंग माने हुए थे और ब्राह्मण लोग इसके एक-मात्र ठेकेदार थे, जिसकी दक्षिणा में वे राजाओं और धनिकों से हाथी, घोड़े, रथ, दास-दासी, धन-धान्य, धरती, रत्न आदि विविध भाँति के बड़े-बड़े दान लेते और मौज करते थे।

दूसरी ओर कुछ लोगों में शरीर सुखानेवाले नाना भाँति के तप जारी थे। इन तपस्वियों में कोई ऊर्ध्वबाहु करके हाथ सुखाते थे, तो कोई पंचाग्नि तापते थे; कोई बाणशय्या पर लेटकर शरीर को क्लेश देते थे, तो कोई जलशयन करते थे। इनका विश्वास था कि आत्मा अजर-अमर है और शरीर उसके लिये एक क़ैदख़ाना है। जहाँ तक हो सके, शरीर को सुखाकर आत्मशक्ति को बढ़ाना चाहिए। ये लोग आत्मा की यथार्थ उन्नति का रहस्य न समझते थे, और इनके द्वारा समाज में शुष्क और भ्रम-पूर्ण ज्ञान का प्रचार हो रहा था।

इनके सिवा देश में कुछ दार्शनिकों का भी समुदाय था जो आत्मा, ब्रह्म, ईश्वर, प्रकृति, माया, हिरण्यगर्भ, विराट् आदि विषयों पर व्यर्थ वितंडावाद किया करता था। इनमें एक नास्तिकों का भी दल था जो केवल प्रत्यक्षवादी था। उसका कहना था कि न परलोक है, न पुनर्जन्म, और न इस जीवन के बाद शुभाशुभ कर्मों का फल-भोग ही है। जब तक जियो, सुख से रहो। खाओ, पियो, चैन करो। धर्म और परलोक निरा ढकोसला है। इनके शुष्क और तीक्ष्ण तर्कों से जनता व्याकुल हो गई थी।

उस समय सबसे कठिन और असह्य प्रसंग वर्णोंका चढ़ाव-उतार था। ऊँची जाति के लोग नीच जाति के मनुष्यों को बड़ी हीन दृष्टि से

देखते थे। नीच वर्ण के मनुष्यों को किसी प्रकार का भी सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक अधिकार न था। उनके जीवन का समाज में कोई मूल्य न था। वे दीन-हीन की तरह जीवन बिताते थे और उनकी दशा पशुओं से भी अधिक गई-बीती थी। वे सब प्रकार के मानवी अधिकारों से वंचित थे। उच्च जाति के लोग यदि इन लोगों में से किसी को अपना दास बना लेते, तो वह अपना अहोभाग्य समझता था।

इस प्रकार के अन्याय, अत्याचार, अनर्थ और मिथ्या आडंबर से जब यह देश परिपूर्ण हो गया, तो लोग व्याकुल हो उठे। उन्हें प्रचलित धर्मों के प्रति असंतोष और अविश्वास उत्पन्न हो गया। वे किसी ऐसे सर्वज्ञ और पूर्ण पुरुष की प्रतीक्षा करने लगे, जो अपने आत्मज्ञान और सत्य उपदेशों से अज्ञानांधकार को दूर करके दिव्य प्रकाश फैला दे और लोगों की धार्मिक पिपासा को शांत करके उनके आगे एक ऐसे पवित्र, प्रशस्त, निर्दोष आदर्श को उपस्थित कर दे जिसका अनुसरण करके वे अपने जीवन को कृतकृत्य कर सकें। जिस समय लोग ऐसे सद्गुरु की प्रतीक्षा करते हुए धर्म में परिवर्तन करने को लालायित हो रहे थे, ठीक उसी समय भगवान् गौतम बुद्ध ने इस भारत-भूमि में अवतार लेकर अपनी दिगंत-व्यापिनी अक्षीयमाण कीर्ति का विस्तार करते हुए केवल भारत ही नहीं अपितु समस्त संसार के धार्मिक इतिहास में एक नए युग का प्रवेश कर दिया।

भगवान् गौतम बुद्ध

[जीवनी और उपदेश]

१—जन्म और गृहस्थ-जीवन

बुद्ध होने की तैयारी

बौद्ध-जातक में भगवान् गौतम बुद्ध के पूर्वजन्म-संबंधी अनेक कथाएँ लिखी हैं। इन कथाओं के पढ़ने से ज्ञात होता है कि भगवान् गौतम बुद्ध साढ़े पाँच सौ जन्मों से बुद्ध होने की तैयारी कर रहे थे। गौतम बुद्ध से पहले भी जो बुद्ध हो चुके हैं, उन्हें भी इसी प्रकार तैयारी करनी पड़ी थी, और भविष्य में भी जितने बुद्ध होंगे, वे इसी प्रकार तैयारी करने के बाद ही होंगे। बौद्ध-शास्त्रानुसार इस कल्प का नाम भद्र-कल्प है। इस कल्प में अब तक—(१) ककुच्छंद, (२) कनक-मुनि, (३) कश्यप, और (४) शाक्यसिंह गौतम-नामक—चार बुद्ध हो चुके हैं, और एक बुद्ध अभी और होंगे जिनका नाम 'आर्य-मैत्रेय' होगा। इस वर्तमान भद्रकल्प के पाँच बुद्धों के अतिरिक्त इस अनादि संसार में कितने सब बुद्ध हो चुके हैं और कितने अगले कल्पों में होंगे, इसकी संख्या नहीं दी जा सकती। स्वयं गौतम बुद्ध ने अपने पूर्व-जन्मों में २८ बुद्धों के दर्शन किए थे, जिनका वर्णन बौद्ध-शास्त्रों में है। गौतम बुद्ध अपने इस जन्म के पहले सुमेध-तपस्वी नाम

से प्रसिद्ध थे और उस समय तक उन्होंने दान, शील, नैष्क्रम्य, प्रज्ञा, वीर्य, क्षांति, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री और उपेक्षा, इन दसों पारमिताओं को उपलब्ध कर लिया था। उन्हें देख कर दीपांकर-बुद्ध ने भविष्य-वाणी की थी कि अगले जन्म में तुम बुद्ध होकर असंख्य-अप्रमेय प्राणियों का उद्धार करोगे। इसके बाद वह तूपित-नामक देव-लोक में चले गए और जब तक गौतम बुद्ध के रूप में उनका आविर्भाव नहीं हुआ, बोधिसत्त्व-रूप में उसी तूपित-लोक में विद्यमान रहे।

जन्म

आज से लगभग ढाई हज़ार वर्ष पहले उत्तर भारत (बस्ती ज़िले) में कपिलवस्तु नाम की एक राजधानी थी, जहाँ शाक्य-वंशीय महाराज शुद्धोदन राज्य करते थे। शाक्य-वंश इक्ष्वाकु-वंश की शाखा है, जिसे सूर्य-वंश भी कहते हैं। महाराज शुद्धोदन के दो रानियाँ थीं। एक का नाम महामाया, दूसरी का प्रजावती। महामाया के गर्भ से, ईसवी सन् से ६२३ वर्ष पहले, वैशाख शुक्ल पूर्णिमा को, कपिलवस्तु और देवदह के बीच, लुंबिनी-कानन में बुद्ध का जन्म हुआ। जन्म होने पर उनका नाम सिद्धार्थ रक्खा गया। बौद्ध-शास्त्रों में लिखा है कि जिस समय भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ, उसी समय में ७ और व्यक्तियों का भी जन्म हुआ। उसी मुहूर्त में गया में उस बोधिद्रुम का उद्गम हुआ जिसके नीचे भगवान् ने बुद्धत्व लाभ किया। उसी समय महामंत्री कालुदायी का जन्म हुआ, उसी समय आनंद का जन्म हुआ, उसी समय राजकुमारी गोपा का जन्म हुआ, उसी समय सारथी 'छंदक' का जन्म हुआ, उसी समय 'कंठक' घोड़े का जन्म हुआ, और उसी समय भूमि

बोधिसत्व ने मायादेवीके उदर से निकलकर उत्तर दिशाकी ओर सात पग गमन करके कहा :—

(पालि)	(हिन्दी)
(१) "अग्गोहस्मि लोकस्स"	(१) "मैं संसार में सबसे अग्रणी हूं"
(२) "जेट्ठोहस्मि लोकस्स"	(२) "मैं संसार में सबसे श्रेष्ठ हूं"
(३) "असदिसोहस्मि लोकस्स"	(३) "मैं संसार में अतुल्य हूं"
(४) "बुद्धो बोधेय्यं"	(४) "बोधिज्ञान होते ही मैं उसे संसार के लोगों को प्रदान करूंगा"
(५) "मुत्तो मोचेय्यं"	(५) "मैं संसार के लोगों को दुःखोंसे छुड़ाकर मुक्त करूंगा"
(६) "तिण्णो तारेय्यं"	(६) "मैं अपना उद्धार कर के संसार के लोगों का उद्धार करूंगा"।

हमारे भगवान ने यहीं जन्म लिया। यह हमारी पहली विजय है। क्योंकि यदि भगवान ने जन्म न लिया होता, तो सारा संसार अंधकार में ही रहता। हमारे भगवान का जन्म हुआ, यह हमारे लिए कैसी सौभाग्य की बात है। मान लो, यदि उन्होंने जन्म न लिया होता तो ? संसार में कितना भय, कैसा अंधकार फैला होता ! और वह अंधकार भी कैसा ? संसार में सब से गूढ़तम अंधकार—अज्ञानता का अंधकार ! किन्तु हमारे भगवान ने जन्म लिया, जिसके फलस्वरूप हमें सुख और प्रकाश—संसार का सर्वोत्तम प्रकाश, यानी सत्य का प्रकाश—मिला। भगवान का जन्म हमें निर्वाण प्राप्त करनेका मार्ग सिखाने के ही लिए हुआ था, संसार के लिए यह कैसे आनन्द, कैसे प्रकाश और कैसे सौभाग्य की बात है। आइये, इस उद्धारक को प्रतिदिन और हमेशा सहस्र बार—नहीं, कोटि बार—प्रणाम करें।



कपिलवस्तु में बोधिसत्व का जन्म ।

से ४ सुवर्णपूर्ण डेगों का उद्गम हुआ। बौद्ध-शास्त्रों में लिखा है कि जिस माता की कोष में बुद्ध आते हैं, उस माता को लाखों वर्षों से दान आदि पारमिताएँ पूरी कर लेनी होती हैं। और जिस कोष में बुद्ध वास करते हैं, वह दूसरे प्राणियों के रहने या उपभोग्य-योग्य नहीं रहती, इसीलिये बुद्ध-माता बुद्ध को प्रसव करने के बाद शीघ्र ही देह त्यागकर तूपित-नामक देवलोक में वास करती हैं। बुद्ध का प्रसव भी, साधारण बालकों की तरह, बैठे वा लेटे हुए नहीं होता, वह दस मास माता की कोष में वास करके खड़े-खड़े ही जन्म ग्रहण करते हैं। यही कारण है कि जब भगवान् गौतम बुद्ध के जन्म का समय आया, तो देवताओं की प्रेरणा से उनकी माता कपिलवस्तु से अपने पिता के घर देवदह जाने लगीं। उस समय महाराज शुद्धोदन ने कपिलवस्तु से देवदह तक मार्ग को केला, वंदनवार, जलपूर्ण घट और ध्वजा-पताका इत्यादि से सुसज्जित करवा दिया था। किंतु जिस समय महारानी महामाया की रत्नजटित सोने की पालकी, जिसके साथ एक हज़ार दास, दासी, आत्मीय और अफ़सर थे, लुंबिनी-नामक मनोरम शाल-वन में पहुँची, उसी समय उन्हें वेदना होने लगी। महारानी पालकी से उतरकर एक सघन शाल-तरु के नीचे खड़ी हुईं। तत्काल शाल की एक शाखा अपने आप झुक गई, महारानी ने उसे पकड़ लिया। संरक्षकों ने तुरंत चारो ओर क़नात घिरवा दी। भगवान् खड़े-खड़े ही माता की कोख से बाहर हुए। वह शुद्ध और मलहीन प्रकट हुए। शुद्धचित्त महाब्रह्मा ने सोने के जाल में उन्हें ग्रहण किया, फिर कोमल मृगचर्म में रक्खा, और फिर रेशमी वस्त्र में लपेटकर

उन्हें मनुष्य के हाथ में दिया। मनुष्य के हाथ में आते ही छूटकर वह पृथ्वी पर खड़े हो गए, और उत्तर दिशा की ओर सात पग गमन किया, जिससे सप्त ब्रह्मांड समालोकित हुए। भगवान् के जन्म के सातवें दिन, प्रसूतिका-गृह में ही, उनकी माता महामाया अपना प्राण-प्रिय पुत्र प्रजावती की गोद में सौंपकर परलोक सिधारीं, अतएव उनका लालन-पालन उनकी विमाता प्रजावतीजी ने किया। और उनके लिये सब दोषों से रहित धाइयाँ नियुक्त की गईं। पुत्र-जन्म के उपलक्ष में महाराज शुद्धोदन ने असंख्य द्रव्य दान किया, याचकों को अयाचक किया और क़ैदियों को क़ैद से मुक्त किया।

कालदेवल की भविष्यवाणी

सिद्धार्थ का जन्म होते ही कपिलवस्तु सब प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि से परिपूर्ण हो गया। प्रजाओं में घर-घर आनंद-मंगल होने लगे, लोगों के आनंद की सीमा न रही। लोग मुक्तकंठ से कहने लगे कि महाराज शुद्धोदन के घर किसी अलौकिक पुरुष ने जन्म ग्रहण किया है। अलौकिक बालक का जन्म सुनकर कालदेवल या असित ऋषि महाराज शुद्धोदन के घर आए। राजा ने ऋषि को देखकर हर्षित हो प्रणाम किया और उनके चरणों का स्पर्श कराने के लिये बालक को उनके सम्मुख लाए। जिस समय राजा अपने पुत्र को ऋषि के चरणों की ओर ला रहे थे, अकस्मात् बालक के पैर ऋषि के मस्तक की ओर हो गए। ऋषि ने अलौकिक तेजविशिष्ट बालक के चरणों को अपने मस्तक में लगा लिया और बालक के शरीर के लक्षणों और अनुव्यंजनों की परीक्षा करने लगे। वह बालक सिद्धार्थ के शरीर में महापुरुषों के ३२

लक्षणों और ८० अनुव्यंजनों को देख आनंद से पुलकित होकर बोले—"राजन्! आप बड़े भाग्यमान् हैं। आपका यह पुत्र महापुरुषों के समस्त लक्षणों से युक्त है। यदि यह गृहस्थ रहे, तो चक्रवर्ती सम्राट् होंगे, और यदि विरक्त हुए, तो बुद्ध होकर संसार के असंख्य प्राणिया का उद्धार करेंगे। मैं बहुत दिनों से इनकी प्रतीक्षा कर रहा था। आज दर्शन करके कृतार्थ हुआ।" ऋषि की यह भविष्यवाणी सुनकर राजा अत्यंत विस्मित हुए और बालक को महापुरुष समझकर उन्होंने प्रणाम किया।

बाललीला और शिक्षा

राजपुत्र सिद्धार्थ शुक्लपक्ष के चंद्रमा की तरह प्रतिदिन बढ़ने लगे। उनके रूप-लावण्य की छटा देखकर माता-पिता, ज्ञाति, मंत्री और पुरवासी लोग अति आनंदित होते थे। उनके खेल-कूद और विनोद के लिये नाना प्रकार की सामग्री इकट्ठा की गई, किंतु सिद्धार्थ शैशव-काल से ही क्रीड़ासक्त न थे, उन्हें एकांत में बैठना बहुत प्रिय था। जब वह कुछ बड़े हुए, तो राजा ने उन्हें विद्या-अध्ययन के लिये अपने कुलगुरु विश्वामित्र के आश्रम में भेज दिया। गुरुजी जब उन्हें अक्षरा-भ्यास कराने लगे, तो 'अ' वर्ण का उच्चारण करते ही वह संसार की अनित्यता के ध्यान में मग्न हो गए, जिसे देखकर गुरुजी अत्यंत विस्मित हुए। राजकुमार सिद्धार्थ ने अपनी प्रखर प्रतिभा से थोड़े ही काल में सब प्रकार की विद्याएँ प्राप्त कर लीं। उन्होंने ६४ प्रकार की लिपियाँ और तत्काल में प्रचलित सब प्रकार की विद्याएँ सीखी थीं।

शिक्षा समाप्त होने पर राजकुमार गुरुगृह से अपनी राजधानी में लौट आए।

हंस पर दया

एक बार राजकुमार सिद्धार्थ अपने उद्यान में विचार-निमग्न बैठे थे कि आकाश में उड़ते हुए हंसों की पंक्ति में से एक हंस बाण से विद्ध होकर उनके सम्मुख गिरा और छटपटाने लगा। दया से द्रवित होकर राजकुमार ने उस हंस को उठा लिया और हौज़ के जल से उसके शरीर का रक्त धोकर वह उसके घावों में सावधानी से पट्टी बाँधने लगे। इसी समय उनका चचेरा भाई देवदत्त, जो उनसे ईर्षा रखता था, वहाँ आया और बोला—"इस पक्षी को मैंने मारा है। मैं इसका स्वामी हूँ। इसे मुझको दे दीजिए।" सिद्धार्थ ने पक्षी देने से इनकार किया। अतएव परस्पर विवाद होने लगा, जिसका निर्णय न्यायाधीश के निकट पहुँचा। न्यायाधीश ने निर्णय किया कि "जिसने उसकी रक्षा की है, और जो उसके घावों को अच्छा करके उसे जीवन-दान देगा, वही उस पक्षी का स्वामी हो सकता है।"

स्वयंवर और विवाह

नई उम्र में ही राजकुमार के एकांतवास और वैराग्य-भाव को देखकर महाराज शुद्धोदन को कालदेवल ऋषि की भविष्यवाणी स्मरण हो आती थी। उन्हें अहर्निश यह चिंता रहती थी कि पुत्र कहीं विरक्त न हो जाय। अतएव राजा ने मंत्री, पुरोहित और ज्ञाति-जनों की सम्मति से देवदह के महाराज दंडपाणि की रूप-लावण्यवती कन्या राजकुमारी गोपा के साथ, जिसे यशोधरा, मृग्या और उत्पलवर्णा भी

कहते हैं, राजकुमार के विवाह का प्रस्ताव किया। महाराज दंडपाणि ने उत्तर दिया कि "जो स्वयंवर की परीक्षा में जीतेगा, वही गोपा को वरेगा।" निदान स्वयंवर रचा गया। जिसमें देवदत्त आदि पाँच सौ शाक्यकुमार और अनेक गुणज्ञ एकत्रित हुए। महाराज शुद्धोदन, आचार्य विश्वामित्र और आचार्य अर्जुन आदि चतुर पुरुष परीक्षक मध्यस्थ नियत हुए। इस स्वयंवर में लिपिज्ञान, संख्याज्ञान, लंघित, प्लवित, असि-विद्या, वाण-विद्या, धनुर्विद्या, काव्य, व्याकरण, पुराण, इतिहास, वेद, निरुक्त, निघंटु, छंद, ज्योतिष, यज्ञकल्प, सांख्य, योग, वैशेषिक, स्त्रीलक्षण, पुरुषलक्षण, स्वप्नाध्याय, अश्वलक्षण, हस्तिलक्षण, अर्थविद्या, हेतुविद्या, पत्रछेद्य और गंधयुक्ति आदि कला और विद्याओं की परीक्षा में राजकुमार ने जव विजय पाई, तो राजकुमारी गोपा ने उनके गले में जयमाला डाल दी और विधिपूर्वक उनका विवाह हो गया। विवाह के समय राजकुमार सिद्धार्थ की आयु १६ वर्ष की थी और वही आयु राजकुमारी गोपा की थी। दोनो समवयस्क और परम सुंदर थे।

प्रमोद-भवन

विवाह होने पर भी राजकुमार का एकांत में वैठकर ध्यान करना और जन्म-मरणादि के प्रश्नों पर विचार करना न छूटा, जिससे महाराज शुद्धोदन की चिंता वढ़ गई। वह इस प्रकार का उपाय करने लगे जिससे राजकुमार का वैराग्य-भाव कम हो। उन्होंने कुमार के आनंद-प्रमोद के लिये तीन ऋतुओं के उपयोगी तीन महल वनवाए—एक नौ तल्ला, एक सात तल्ला, एक पाँच तल्ला। इन महलों में छहों ऋतुओं के अनुकूल

छटा छाई रहती थी और ये सब प्रकार की कामोद्दीपन विलास-योग्य वस्तुओं से परिपूर्ण थे। महाराजा ने इन सुरम्य प्रासादों का नाम 'प्रमोद-भवन' रक्खा और कुमार की परिचर्या के लिये ४४ हज़ार समवयस्का सुंदरियों को नियुक्त किया, जो नृत्य, गायन और हर प्रकार की काम-कला में प्रवीण थीं। इन सुंदरियों के शरीर भाँति-भाँति की सुगंधों से सुवासित और अनुपम सुंदर वस्त्राभूषणों से सुशोभित रहते थे। सारांश यह कि महाराज ने इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया कि राजकुमार का चित्त सदैव भोग-विलास में रहे, वैराग्य की ओर न जाने पावे; किंतु इस अनंत ऐश्वर्य का भोग करते हुए भी राजकुमार का विरक्त-भाव और ध्यान करना दूर नहीं हुआ।

निमित्त-दर्शन और वैराग्य

महाराज शुद्धोदन ने यद्यपि राजकुमार के भोग-विलास के लिये हर प्रकार की सामग्री उनके प्रमोद-भवन में एकत्रित कर दी थी, तथा हर प्रकार की कष्टदायक और शोकोत्पादक बातों को उनसे गुप्त रक्खा जाता था, तो भी जिस प्रकार सोने की ज़ंजीर में बँधे होने पर भी हाथी का मन जंगलों में फिरने को ही चाहता है, उसी प्रकार राजकुमार को संसार के देखने की प्रबल इच्छा थी। एक दिन उन्होंने अपने पिताजी से नगर-निरीक्षण की आज्ञा माँगी और महाराज ने उन्हें आज्ञा दे दी। किंतु चतुर महाराज ने निरीक्षण से पूर्व नगर को इस प्रकार सजवा दिया कि जिस-जिस मार्ग से राजकुमार गमन करें, उसमें मनोरम दृश्यों के अतिरिक्त किसी प्रकार के दुःख एवं शोकोत्पादक

दृश्य उनके सामने न आने पाएँ। उन्होंने राजकुमार के लिये एक अति सुन्दर रत्न-जटित, चार घोड़ोंवाला रथ तैयार कराया जिसपर सवार होकर वह नगर की सैर करने को निकले। किंतु महाराज का सब प्रयत्न निष्फल हुआ और दैवी प्रेरणा से राजकुमार ने अपने गृह-त्याग के चारो निमित्तों को देख ही लिया।

राजकुमार सारा नगर देखना चाहते थे, अतएव चारो ओर जाने के लिये चार दिन नियत हुए। पहले दिन जब वे रथ पर चढ़कर जा रहे थे, तो उन्होंने एक बूढ़े मनुष्य को देखा। उन्होने उसकी झुकी कमर और झुर्रीदार चेहरे को देखकर सारथी से पूछा—"यह कौन है सारथी ? इसके शिर के बाल सफेद हैं, आँखें गड्ढे में घुस गई हैं, और शरीर बड़ा ही जर्जर हो रहा है। यह तो बड़ा दुखित दिखाई देता है।"

सारथी यह सुनकर बड़े संकट में पड़ गया। उसने बड़ा साहस करके उत्तर दिया—"महाराज, ये सब बुढ़ापे के चिह्न हैं। जवानी में यह खूब हृष्ट-पुष्ट रहा होगा। ज्यों-ज्यों इसकी उमर ढलती गई, त्यों-त्यों इसका शरीर शिथिल और सौंदर्य नष्ट होता गया। बुढ़ापे में सभी कमज़ोर हो जाते हैं।"

सारथी की बात सुनकर राजकुमार बुढ़ापे के दुःखों पर ध्यान करने लगे। वह सोचने लगे—"मनुष्य इस जीवन में कितना सुख और आनंद प्राप्त कर सकता है जबकि उसे भय लगा है कि उसे शीघ्र ही वृद्ध होना पड़ेगा ?" उन्होंने सारथी से कहा—"सारथी ! रथ घर ले चलो।" सारथी रथ लौटा ले गया।

दूसरे दिन फिर रथ पर सवार होकर राजकुमार नगर-निरीक्षण

को निकले। आज उन्होंने एक रोगी को देखा जिसका शरीर उठने बैठने की शक्ति से रहित था, और वह रोगों की पीड़ा के कारण कराह रहा था। उन्होंने सारथी से पूछा—"यह किस प्रकार का मनुष्य है ?"

सारथी ने उत्तर दिया—"महाराज, यह मनुष्य बीमार है। इसके शरीर की धातुएँ क्षीण हो गई हैं, और उनकी क्रिया में व्यतिक्रम हो गया है। रोग-ग्रस्त होने पर सभी की यह दशा हो जाती है, चाहे वह ग़रीब हो या अमीर, मूर्ख हो या बुद्धिमान्। शरीरधारी मात्र पर रोगों का आक्रमण होता है।"

यह सुनकर राजकुमार संसार के दुःखों का ध्यान करने लगे। उन्हें समस्त प्राणी दुःखों और क्लेशों से पीड़ित दिखाई दिए। उन्हें सांसारिक आमोद-प्रमोदों का अंत दुःख-पूर्ण दिखाई दिया। उनका कोमल हृदय करुणा से विगलित हो गया। उन्होंने सारथी को रथ लौटा ले चलने की आज्ञा दी।

तीसरे दिन जब वह फिर रथ पर सवार होकर निकले, तो उन्होंने देखा कि चार आदमी एक अर्थी को अपने कंधों पर लादे हुए जा रहे हैं। उन्होंने उस निर्जीव लाश को देखकर सारथी से पूछा—"यह क्या है जिसे ये लोग लिए जा रहे हैं? यह तो फूलों और सुगंध से आच्छादित है, और जो लोग इसे लादे हैं, वे दुःखित होकर रो रहे हैं?"

सारथी ने उत्तर दिया—"यह मृत मनुष्य का शव है। इसके शरीर से प्राण निकल गए, इसका जीवन नष्ट हो गया। अतः इसके कुटुम्बी और मित्र, जो इससे प्रेम करते थे, इसे श्मशान लिए जा रहे हैं, जहाँ इसे फूक देंगे।"

यह सुनकर राजकुमार का हृदय दुःख से पूर्ण हो गया। उन्होंने सारथी से पूछा—"सारथी, यही एक मनुष्य प्राण-शून्य हो गया है, या इसी तरह समस्त संसार प्राण-रहित हो जायगा?"

सारथी का हृदय भर आया। उसने उत्तर दिया—"इस संसार के समस्त प्राणियों की एक दिन यही दशा होगी। जो जन्मा है, वह अवश्य मरेगा। मृत्यु से बचने का कोई उपाय नहीं।"

राजकुमार ने गहरी साँस लेकर कहा—"अरे संसारी मनुष्य! कैसी मिथ्या तेरी धारणा है! यह निश्चय है कि तुम्हारा शरीर एक दिन मिट्टी में मिल जायगा, फिर भी तुम कैसे असावधान और मोहांध हो रहे हो!"

सारथी ने देखा कि राजकुमार के हृदय पर इस दुःख-पूर्ण दृश्य का अति गंभीर प्रभाव पड़ा है, घोड़ों की बाग मोड़ी और रथ को लौटा ले गया। राजकुमार घर आए किंतु आज उनकी दशा बदली हुई थी। उन्हें संसार-सुख अत्यंत निस्सार प्रतीत होने लगा, उनके मन में तीव्र वैराग्य हिलोरें लेने लगा।

चौथे दिन राजकुमार जब फिर सैर को गए, तो मार्ग में उन्होंने एक विरक्त 'साधु' को देखा। और सारथी से पूछने पर जब उन्हें ज्ञात हुआ कि वह सांसारिक सुख को असार समझकर भिक्षा-वृत्ति से निर्वाह करता हुआ संसार के उपकार में जीवन व्यतीत कर रहा है, अतः उसके मुख-मंडल पर अपूर्व प्रसन्नता है, तो उन्हें उसका काम बहुत पसंद आया, और संसार-त्याग की प्रबल कामना उनके मन में उत्पन्न हो गई। उन्होंने उसी समय संकल्प कर लिया कि वह भी शीघ्र ही संन्यास ग्रहण कर लोक-सेवा करेंगे।

बौद्ध-शास्त्रों में लिखा है कि राजकुमार सिद्धार्थ को जो ये चारो निमित्त-दर्शन हुए, सो सब शुद्धावासकायिक देवताओं की माया से हुए। देवगण जानते थे कि वे बुद्धत्व लाभ करके असंख्य प्राणियों का उद्धार करेंगे, इसीलिये वे इस काम में शीघ्रता कर रहे थे, और राजकुमार ने भी सब कुछ जानते हुए सारथी से प्रश्न किए। किंतु इस वैज्ञानिक युग में इस प्रकार की बातों पर लोग श्रद्धा नहीं करते। अतः उनके लिये यह उदाहरण यथेष्ट होगा कि वृक्ष से फल को गिरते देखना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है, असंख्य बार असंख्य मनुष्यों ने यह बात देखी है, किंतु महामति सर आइज़क न्यूटन ने उसी पर मनन करके जिस प्रकार गुरुत्वाकर्पण-जैसे महान् तत्त्व का आविष्कार कर लिया, उसी प्रकार महापुरुष राजकुमार सिद्धार्थ ने वृद्ध, रोगी, मृतक और साधु का दर्शन करके संसार की अनित्यता का विज्ञान कर लिया, जो उनके संसार-त्याग का निमित्त हुआ।

राहुल का जन्म

अस्तु। राजकुमार उस दिन घर नहीं लौटे। उन्होंने प्रसन्न हो सारथी को आज्ञा दी कि रथ राजोद्यान में ले चलो। वे बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक उद्यान में मनोरंजन करने लगे। उन्होंने उस वाटिका की सुन्दर निर्मल पुष्करिणी में स्नान किया, और स्नान करके एक स्वच्छ शिला पर विराजमान हुए। सेवकगण उन्हें बहुमूल्य वस्त्र और आभूपण पहनाने लगे। वस्त्रालंकार से विभूपित हो वह रथ पर सवार हुए। उसी समय उन्हें खबर मिली कि राजकुमारी गोपा ने पुत्र-रत्न प्रसव किया है। यह सुनकर वह विचार करने लगे कि यह

वालक हमारे संसार-त्याग के संकल्प-रूपी पूर्णचंद्र को ग्रेसने के लिये राहु-रूप उत्पन्न हुआ है, वोले—"राहुल आया है !" प्राणप्रिय पुत्र के मुख से "राहुल" शब्द सुनकर महाराज शुद्धोदन ने अपने पौत्र का नाम "राहुलकुमार" रक्खा। उस समय राजकुमार सिद्धार्थ की आयु २८ वर्ष की थी। राहुलकुमार की उत्पत्ति से महाराज शुद्धोदन के आनंद का ठिकाना न रहा। राजमहल में भाँति-भाँति का हर्षानंद मनाया जाने लगा। याचकों और दीन-दुखियों को महाराज ने अपरिमित दान दिया। कपिलवस्तु नगरी आनंदोत्साह से परिपूर्ण हो गई।

कृष्णा गौतमी को उपहार

इधर यह आनंद हो रहा था, उधर राजकुमार सिद्धार्थ संसार-त्याग के संकल्प में निमग्न, रथ पर विराजमान, उद्यान से राजमहल को लौट रहे थे। जब वे नगर के एक सुसज्जित राजमार्ग से निकले, तो अपने कोठे पर बैठी हुई कृष्णा गौतमी नाम की एक सुन्दरी नव-युवती सेठ-कन्या ने राजकुमार सिद्धार्थ के अनुपम सुन्दर रूप को देखकर कहा—"धन्य है वह पिता जिसने तुम्हारा-जैसा पुत्र पाया, धन्य है वह माता जिसने तुम्हें जन्म दिया और पाला-पोसा, और धन्य है वह रमणी जिसे तुमको अपना प्राणपति कहने का सौभाग्य प्राप्त है !" राजकुमार ने इस प्रशंसा को सुन लिया। वह महासुन्दरी कृष्णा गौतमी को संबोधित करके बोले—"धन्य हैं वे जिनकी राग और द्वेष-रूपी अग्नि शांत हो गई है, धन्य हैं वे जिन्होंने दोष, मोह और अभिमान को जीत लिया है, धन्य हैं वे जिन्होंने संसार-स्रोत का

पता लगा लिया है, और धन्य हैं वे जो इसी जीवन में निर्वाण-सुख प्राप्त करेंगे! भद्रे, मैं निर्वाण-पथ का पथिक हूँ।" यह कहकर उन्होंने अपने गले का बहुमूल्य रत्न-हार उतारकर उसके पास भेज दिया। राजकुमार के गले का हार पाकर कृष्णा गौतमी अत्यंत हर्षित हुई, वह समझी, राजकुमार उसके अनुपम रूप-लावण्य पर मुग्ध हो गए हैं, और उसे यह प्रेमोपहार भेजा है।

पिता से गृह-त्याग की आज्ञा माँगना

इस प्रकार संसार-त्याग की भावना और वैराग्य से परिपूर्ण-हृदय राजकुमार सिद्धार्थ घर आए। किंतु घर के उस आनंद-महोत्सव में उनका मन तनिक भी अनुरंजित नहीं हुआ, उनके चित्त में वैराग्य की तीव्र तरंगें उठकर उन्हें शीघ्र गृह-त्याग के लिये विवश करने लगीं। एक दिन उन्होंने विचारा कि चुपके से घर से भाग जाना ठीक नहीं है, पिताजी से इस विषय में अनुमति लेनी चाहिए। वह अपने पिताजी के निकट गए, और उनसे नम्रतापूर्वक निवेदन करने लगे कि अब "आपके पौत्र का जन्म हो गया, मुझे गृह-त्याग की आज्ञा दीजिए। क्योंकि संसार के सुखों में मेरा चित्त नहीं रमता; जरा, मरण, जन्म, व्याधि के दूर करने की चिंता मुझे व्याकुल किए रहती है। मैं किस प्रकार इनसे निवृत्त होकर सर्वज्ञता और निर्वाण लाभ कर सकूँगा, इसके अन्वेषण के लिये मुझे गृह-त्याग करना अति श्रेयस्कर प्रतीत होता है। मैं आज ही गृह-त्यागी होना चाहता हूँ।"

प्राणप्रिय पुत्र के मुख से यह बात सुनते ही महाराज शुद्धोदन अवाक् हो गए। थोड़ी देर निस्तब्ध रहने के बाद वे व्यथित-हृदय और गद्-

गद्‌गद्‌ स्वर से कहने लगे—"कुमार ! यह तुम क्या कहते हो ? तुमको किस बात का दुःख है ? किस बात की कमी है ? तुम अतुल ऐश्वर्य के स्वामी हो ? सहस्रों सुंदरियाँ अपने मधुर गान और वीणा-वादन से तुम्हें प्रसन्न रखने के लिये व्याकुल रहती हैं। सहस्रों दास-दासी तुम्हारी आज्ञा-पालन के लिये तुम्हारा मुख देखा करते हैं। परम गुणवती, रूपवती और विदुषी गोपा तुम्हारी जीवन-सहचरी है। फिर तुम किस लिये गृह त्यागने की इच्छा करते हो ? बेटा ! तुम्हीं हमारे प्राणों के एकमात्र अवलंब हो। तुम्हें देखकर मैं परम सुखी रहता हूँ, मैं तुम्हारे बिना कैसे जीवित रहूँगा ? इसलिये घर छोड़ना उचित नहीं। तुम जो कुछ चाहो, वह यहीं उपस्थित कर दिया जाय।"

सिद्धार्थ ने कहा—"पिताजी, यदि आप चार बातें मुझे दे सकें, तो मैं गृह-त्याग का संकल्प छोड़ सकता हूँ। मैं कभी मरूँ नहीं, बूढ़ा न होऊँ, रोगी न होऊँ और कभी दरिद्र न होऊँ।"

राजा ने कहा—"बेटा ! ये तो सब प्राकृतिक बातें हैं। मनुष्य-मात्र के लिये इनका होना आवश्यक है। प्रकृति के नियम को कौन लंघन कर सकता है ! मनुष्य अपने जीवन-भर सुखी रहने का केवल प्रयत्न कर सकता है।"

सिद्धार्थ ने कहा—"पिताजी ! मैं उस बोधि-ज्ञान को प्राप्त करूँगा जिसके द्वारा मैं जरा-मरण-व्याधि से दुःखित जीवों का उद्धार कर सकूँ।"

महाभिनिष्क्रमण अथवा गृह-त्याग

यह बात सारे राज-परिवार में फैल गई। राजा और राज-परिवार

के लोग इस समाचार से बहुत दुःखी हुए। राजा को शंका समा गई। उन्होंने पहरा-चौकी का प्रबंध किया। राजकुमार से सब लोग सतर्क रहने लगे। दूसरी ओर शुद्धावासकायिक देवगण इस चेष्टा में थे कि सिद्धार्थ शीघ्र गृह-त्यागी होकर बुद्धत्व लाभ करें और दुःखित प्राणियों का दुःख-मोचन हो। इधर महाराज के प्रयत्न से उस दिन से राजकुमार का प्रमोद-भवन नृत्य-गान से सब समय परिपूर्ण रहने लगा। देवकन्याओं के समान महासुंदरी ललनाएँ स्त्री-सुलभ हाव-भावों से हर समय उन्हें लुभाने लगीं। किंतु राजकुमार का हृदय रागादि मलों से मुक्त हो गया था, अतः इस मार-सेना का उन पर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। एक दिन, प्रभात-काल में, दैवी प्रेरणा से वशीभूत हुई एक रमणी अपने ललित कंठ से एक प्रभाती गाने लगी, जिसे सुनकर राजकुमार की निद्रा भंग हुई। उस जागरोन्मुख निस्तब्ध प्रभात में वह उस गंभीर ज्ञान-पूर्ण संगीत को सुनने लगे। सुनते-सुनते उनका हृदय द्रवीभूत हो गया और संसार की अनित्यता मूर्तिमान होकर उनकी आँखों के आगे नाचने लगी। राजकुमार ने उसी समय संकल्प कर लिया कि आज मैं अवश्य गृह-त्याग करूँगा।

उस दिन राहुलकुमार ७ दिन के थे। महाराज ने उस दिन विशेष उत्सव किया था। प्रमोद-भवन में सुरसुन्दरियों का महानृत्य हो रहा था। नर्तकियाँ अपने रूप-लावण्य और अद्भुत हाव-भाव-कटाक्षों से राजकुमार को रिझा रही थीं। वे अपनी अनुपम नृत्य-कला से राजकुमार का चित्त अपनी ओर आकर्षित करती थीं। किंतु उनका सब प्रयत्न निष्फल हुआ। राजकुमार सो गए। नर्तकियों ने देखा,

राजकुमार तो सो गए, अब हम किसके लिये नाचें-गावें, अतः वह भी जहाँ की तहाँ सो गईं। किंतु थोड़े समय पश्चात् राजकुमार उठे और अपने पलँग पर आसन मारकर बैठ गए। उस समय उस सुरम्य महाप्रांगण में सुगंधित तैल-पूर्ण प्रदीप जल रहे थे। उनके शीतल शुभ्र प्रकाश में राजकुमार ने देखा—वह सुरसुन्दरियाँ इतस्ततः अचेत पड़ी हैं। किसी के मुँह से राल बह रही है, कोई अपने दाँत कटकटा रही है, किसी का मुँह खुला है, कोई बर्रा रही है, कोई ऐसी बेहोश है कि उसका लज्जा-अंग खुला है और वह उसे ढक नहीं सकती। सब बेख़बर सो रही हैं, केवल प्रकाशमान दीपक शूँ-शूँ शब्द से उनकी इस दशा पर हँस रहे हैं। इस दृश्य से राजकुमार का विरक्त भाव और भी दृढ़ हो गया। उन्हें इंद्र-भवन की तरह सुसज्जित प्रमोद-भवन सड़ी हुई लाशों से परिपूर्ण श्मशान के समान प्रतीत हुआ। वैराग्य के तीव्र वेग से वह उठ खड़े हुए और महाभि-निष्क्रमण के लिये उद्यत हो गए।

वह उस स्थान पर गए, जहाँ उनका सारथी छंदक रहता था। उन्होंने छंदक को पुकारकर आज्ञा दी—"घोड़ा तैयार करो।" छंदक आज्ञानुसार उस अर्द्ध-निशा में 'कंथक' घोड़े को सजाने लगा। 'कंथक' ने समझा, आज मेरे स्वामी की मुझ पर अंतिम सवारी है। वह व्यथित होकर ज़ोर से हिनहिनाया। उसके उस महाशब्द से सारा नगर जाग उठता, किंतु चतुर देवताओं ने तत्काल उस शब्द को रोक दिया। संसार त्यागने से पूर्व राजकुमार की इच्छा हुई कि अपने पुत्र का मुख देखकर अपना प्यार उसे दे दें। वह राजकुमारी गोपा

के कमरे में गए। दीपकों के उज्ज्वल प्रकाश में उन्होंने देखा, दुग्धफेन के समान धवल पुष्पों से सुसज्जित शय्या पर राहुलमाता सो रही है, और उसका हाथ पार्श्व में लेटे हुए राहुलकुमार के मस्तक पर है। उन्होंने चाहा, पुत्र को गोद में ले लें, परंतु यह सोचकर कि ऐसा करने से गोपा जाग उठेगी, और मेरे महाभिनिष्क्रमण में विघ्न उपस्थित होगा। उन्होंने पुत्र-मोह को जीत लिया। मोह का राजा मार लज्जित हो गया, देवगण हँस दिए। राजकुमार कमरे से निकल आए और प्रमोदभवन से बाहर होने का विचार करने लगे। किंतु महाराज की आज्ञा से महल के फाटक और नगर-द्वारों पर सर्वत्र पहरे का कठोर प्रबंध था। देवताओं ने उनकी सहायता की। देव-माया से पहरेदार और दास-दासी सब गहरी नींद में सो गए! सुदृढ़ लौह-द्वार अपने आप खुल गए।

राजकुमार महल से उतरे। 'छंदक' सुसज्जित 'कंथक' को लिए खड़ा था। 'कंथक' सामान्य घोड़ा न था। वह कान से पूंछ तक १८ हाथ लम्बा और शंख के समान श्वेत था। राजकुमार उस पर सवार हुए। छंदक ने उसकी पूछ पकड़ ली। देवताओं ने उसके पैर की टापों को अपने हाथों पर रोका। इस प्रकार रव-हीन गति से राजकुमार आषाढ़ पूर्णिमा की उज्ज्वल अर्धनिशा में नगर के महाद्वार पर पहुँचे। फाटक इतना सुदृढ़ बना था कि एक-एक हज़ार योद्धा उसके एक-एक पल्ले को बलपूर्वक ठेलते थे, तब खुलता था। किंतु देवताओं ने अपने दिव्य पराक्रम से उसे खोल दिया, और राजकुमार नगर से बाहर हुए।

राजकुमार नगर-बाहर हो गए, यह देखकर पापिष्ठ मार ने एक बार फिर उन्हें लौटाने का प्रयत्न किया। उसने राजकुमार के आगे आकर कहा—"कहाँ जाते हो? आज से सातवें दिन तुम्हारे लिये 'चक्ररत्न' उत्पन्न होगा, जिसके प्रताप से तुम दो हज़ार छोटे द्वीपों-सहित ससागरा पृथ्वी के चारो महाद्वीपों पर एकच्छत्र शासन करोगे।"

राजकुमार ने कहा—"मार! मुझे इस पृथ्वी का चक्रवर्तित्व नहीं चाहिए। मैं तो कोटि-कोटि प्राणियों के उद्धार के लिये बुद्ध बनूँगा।"

"अच्छा देखूँगा, तुम राग, द्वेष और हिंसा से किस प्रकार बच सकते हो?"—ऐसा कहकर मार ने गुप्त भाव से उनका पीछा किया।

बोधिसत्त्व राजकुमार ने हाथ में आए हुए चक्रवर्ती राज्य को थूक की तरह फेंककर निर्जन वन का रास्ता लिया। उस समय आकाश से देवताओं ने दिव्य पारिजात-कुसुम और मंदार-पुष्पों की सघन मेघों की महावृष्टि के समान वर्षा की, और दिव्य स्वर्गीय संगीत का महागान किया। समस्त लोक-लोकांतर में ६८ लाख बाजे बजने लगे। महासमुद्र के गर्भ में गंभीर निर्घोष हुआ। देवता, नाग और सुपर्ण आदि ने दिव्य गंध, दिव्य पुष्पमाला, और दिव्य ज्योति आदि से उनकी पूजा-आरती की। मध्याकाश में स्थित पूर्ण चंद्र ने अपनी अमल धवल चंद्रिका से पृथिवी को शुभ्र और ज्योतिर्मय कर दिया। वायु समशीतल, मृदुमंद और अलौकिक गंध से सुरभित होकर संचरण करने लगा। उस शुभ्र-ज्योत्स्ना में भी साठ हज़ार देवगण बोधिसत्त्व के आगे, साठ हज़ार पीछे, साठ हज़ार दाहिने और

साठ हज़ार बाईं ओर दिव्य ज्योतिर्मय मशालें लेकर चलने लगे। इस प्रकार अलौकिक श्री-सौभाग्य से जाते हुए बोधिसत्त्व उस रात में ही तीन राज्यों को पार करके अनोमा नदी (ज़िला गोरखपुर) के निकट पहुँचे।

मार ने फिर अपनी माया की। अनोमा नदी आठ ऋषभ (१२८ हाथ) चौड़ी होकर महावेग से बहने लगी। बोधिसत्त्व ने कंथक को एड़ी लगाई, छंदक उसकी पूछ में लटक गया, कंथक एक ही छलाँग में आकाश-मार्ग से नदी पार कर गया। नदी पार करके नरम बालुका पर घोड़े से उतरकर बोधिसत्त्व ने कहा—"छंदक ! अब तुम घर लौट जाओ, मैं प्रव्रजित (संन्यासी) हूँगा।" इतना कहकर उन्होंने तलवार से अपने केश कतर डाले, और बालों के जूड़े को आकाश में फेंक दिया। देवराज इंद्र ने उस जूड़े को रत्नमय पात्र में लेकर त्रयस्त्रिंश देवलोक में "चूड़ामणि-चैत्य" की स्थापना की।

इसके पश्चात् वह अपने वस्त्राभूषण उतारने लगे। उस समय ब्रह्मलोक से घटिकार महाब्रह्मा ने आकर श्रमणों के पहनने योग्य वस्त्रों को अर्पण किया। बोधिसत्त्व ने उन्हें पहनकर अपने राजसी वस्त्राभूषण देते हुए छंदक से कहा—"जाओ, पिता से कहना, बुद्ध होकर मैं उनसे साक्षात् करूँगा।"

प्रदक्षिणा और प्रणाम करके छंदक चल दिया। कंथक को स्वामी की विदा से मर्माहत पीड़ा हुई। उसने सोचा, जिस पीठपर बोधिसत्त्व सवार होते थे, उसीपर अब कोई दूसरा प्राणी सवार होगा! शोक से उसका कलेजा फट गया, और स्वामी के आँख से ओझल होते

ही वह गिर पड़ा, और अपना शरीर त्याग दिया! वह त्रयस्त्रिंश देवलोक में पहुँचकर 'कंथक देवपुत्र' हुआ। कंथक की मृत्यु से छंदक अत्यंत दुःखित हुआ, किंतु स्वामी की आज्ञा-पालन का उसपर भार था, इसीलिये रोता-विलाप करता, नगर को वापस आया!

छंदक से सब समाचार सुनकर महाराज शुद्धोदन सपरिवार अत्यंत दुखित हुए, किंतु दर्शनों की प्रत्याशा में जीवित रहे।



२—तप और बुद्धत्व लाभ

धर्म का अनुसंधान

इस प्रकार प्रव्रजित हो बोधिसत्त्व सिद्धार्थ ने उसी प्रदेश के 'अनूपिया' नामक आम्र-बाग में एक सप्ताह विताया। वहाँ शाक्या और पद्मा नाम की दो ब्राह्मणियों ने भोजन देकर उनकी सेवा की। उसके बाद वह 'रैवत' नामक ऋषि से मिले, और वहाँ से राजगृह (ज़िला पटना) को चल दिए। राजगृह पहुँचकर बोधिसत्त्व भिक्षा के लिये निकले। उनका अनुपम सौंदर्य देखकर नगरवासी चित्रलिखे-से रह गए। यह कोई देवता हैं, गंधर्व हैं, नाग हैं, या कोई ऋद्धिमंत पुरुष हैं; मनुष्य तो प्रतीत नहीं होते—ऐसा अलौकिक रूप तो मनुष्य का नहीं हो सकता, इस प्रकार चर्चा करते हुए सभी उनको भिक्षा देने का प्रयत्न करने लगे; किंतु महापुरुष सिद्धार्थ ने "बस, इतना मेरे लिये पर्याप्त है।" कहकर थोड़ी-सी भिक्षा ग्रहण की, और शीघ्र ही नगर से बाहर चले गए। राजकर्मचारियों ने यह समाचार राजा को दिया। महाराज बिंबसार को उनके दर्शनों की इच्छा हुई। दूसरे दिन जब बोधिसत्त्व भिक्षा के लिये नगर में आए, तो महाराज बिंबसार ने उन्हें अनुत्तम भिक्षा भिजवाई, बोधिसत्त्व उसे लेकर नगर के बाहर पांडव (रत्नकूट)-पर्वत के निकट चले गए और वहीं, पर्वत की छाया में, भोजन किया। महाराज बिंबसार ने वहीं जाकर उनके

दर्शन किए, और उनसे प्रार्थना की—"महाराज ! मेरा यह समस्त मगध-राज्य आपके चरणों में समर्पित है। आप यहीं रहिए और चलकर राज-प्रासाद में वास कीजिए।" बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया—"महाराज ! यदि राज्य-सुख भोगने की मुझे इच्छा होती, तो मैं अपने पिता का विशाल-राज्य क्यों छोड़ता ? सांसारिक भोगों को मैंने त्यागकर प्रव्रज्या ग्रहण की है, मैं अब बुद्धत्व लाभ करूँगा।" यह सुनकर महाराज चुप हो गए, और नम्रतापूर्वक निवेदन किया—"बुद्धत्व लाभ करके आप मुझे अवश्य अपने दर्शन देकर कृतार्थ कीजिएगा।" बोधिसत्त्व ने महाराज की इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार राजा से वचनबद्ध होकर बोधिसत्त्व मगध के तत्कालीन सुविख्यात विद्वान् आचार्य आलारकलाम के आश्रम में गए। आश्रम में तीन सौ विद्यार्थी अध्ययन करते थे। आचार्य ने बोधिसत्त्व का प्रेमपूर्ण स्वागत करते हुए उनसे अपने निकट रहने का अनुरोध किया। बोधिसत्त्व ने कुछ काल उनके पास रहकर उनसे "समाधि-तत्त्व" को सीखा। किंतु समाधि-भावना को सम्यक् संबोधि के लिये अपर्याप्त समझ आचार्य से विदा होकर परमतत्त्व की प्राप्ति के लिये आगे बढ़े। और दूसरे सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् उद्दालक-पुत्र आचार्य रुद्रक के पास गए। आचार्य रुद्रक के आश्रम में सात सौ विद्यार्थी दर्शन-शास्त्र का अध्ययन करते थे। आचार्य ने बोधिसत्त्व से अत्यंत प्रेम-भाव से आश्रम में रहने का अनुरोध किया। बोधिसत्त्व ने आचार्य के पास रहकर अभिसंबोधि की जिज्ञासा

की। आचार्य ने क्रमशः अपने समस्त दार्शनिक ज्ञान का निरूपण किया, किंतु बोधिसत्त्व ने उसे सम्यक् संबोधि के लिये अपूर्ण समझकर आचार्य से विदा ग्रहण की। बोधिसत्त्व की प्रखर प्रतिभा और अनुपम जिज्ञासा देखकर उस आश्रम के ५ अन्य ब्रह्मचारी भी उनके साथ हो लिए। ये पाँचो ब्रह्मचारी बड़े ही कुलीन ब्राह्मण थे, इन्हें बौद्ध-ग्रंथों में 'पंचभद्रवर्गीय ब्रह्मचारी' लिखा है। 'भद्रवर्गीय' शब्द का अर्थ है 'सत्कुलजात'। ये कौंडिन्य आदि पाँचो ब्रह्मचारी बोधिसत्त्व को अलौकिक पुरुष समझकर उनकी सेवा और परिचर्या करने लगे।

तपश्चर्या

आचार्य रुद्रक के आश्रम से चलकर बोधिसत्त्व कई दिनों में गया में गयशीर्ष-पर्वत पर पहुँचे। वहाँ विहार करते हुए उन्होंने स्थिर किया कि प्रज्ञा लाभ करने के लिये तप करना चाहिए। अतएव तप के लिये उपयुक्त स्थान की खोज करते हुए वे 'उरुवेला' प्रदेश में पहुंचे। यह स्थान निरंजना (फल्गू) नदी के निकट है। इसे अत्यंत रमणीय और तप के योग्य स्थान समझकर बोधिसत्त्व ने वहीं आसन जमा दिया और तप करने लगे। उन्हें तप-निरत देखकर कौंडिन्य आदि पाँचो ब्रह्मचारी उनकी परिचर्या करने लगे।

उन्होंने वहाँ छः वर्ष तक दुष्कर तप किया। कुछ काल तक वह अक्षत चावल और तिल खाकर रहे। फिर उसे भी त्यागकर अनशन व्रत करके केवल जल पीकर रहने लगे। इस कठोर तप से उनका कंचन-वर्ण शरीर सूखकर काला हो गया। उसमें केवल अस्थि-पंजर मात्र रह गया, आँखें गढ़े में घुस गईं, और नाक-कान के रंध्र सूख



बोधि सत्व की तपस्या ।

बोधिसत्व

संतोंके सिरताज

चाहे मेरा रक्त सूख जाय, चाहे शरीर सूख कर काँटा हो जाय; पर मैं न तो कभी इस स्थान से उठूंगा, न कभी अन्न-जल ग्रहण करूंगा, जब तक मुझे सर्वश्रेष्ठ निर्वाण न प्राप्त हो—अब या तो विजय होगी या मृत्यु।"

यह भगवान बुद्ध का भव्य स्वरूप है। उन्होंने बोधि की प्राप्ति के लिए छे वर्ष तक अनशन किया, अपनी खुशी से ही अपने शरीर को कष्ट दिया—तपाया। संसार के इतिहास में किसी आदमी ने अपने ही आप अपने शरीर को इतना नहीं तपाया, जैसा भगवान बुद्धने। संसारमें और भी अनेकों महापुरुष हुए हैं, जिन्हें दूसरों ने कष्ट दिया, पर हमारे बोधिसत्व ने अपने ही हाथों अपने शरीर को तपाया। इस प्रकार का अश्रुतपूर्व महान दृढ़ संकल्प ही हमें अपने चरम लक्ष्य पर—बोधिसत्व की प्राप्ति तक—पहुंचा सकता है।

कर आर-पार दिखने लगीं। शरीर केवल हड्डियों का कंकाल दिखाई देता था। उनके शरीर के महापुरुषों के ३२ लक्षण छिप गए। वह रेचक, कुंभक, पूरक तीन प्रकार की प्राण-क्रियाओं से परे प्राण-शून्य (श्वास-रहित) ध्यान करने लगे। इस महाकठिन ध्यान से अत्यंत क्लेश-पीड़ित हो एक दिन वह मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़े। ब्रह्मचारियों ने समझा, वह मर गए ; किंतु वह उस समय समाधि की समस्त भूमियों का अतिक्रम करके असंप्रज्ञात-निर्बीज-समाधि से परे एक अनिर्वचनीय महाशून्य-समाधि में विहार करते थे। उस अत्यंत अगम महासमाधि से निकलकर जब वह क्रमशः संप्रज्ञात-समाधि-भूमि में आए, तो निश्चय किया कि "कठोर तप से बुद्धत्व लाभ नहीं होगा। सर्वज्ञता-लाभ का यह मार्ग नहीं है। अत्यंत काय-क्लेश और अत्यंत सुख, दोनो का त्याग करके माध्यमिक मार्ग का अनुगमन करके संयमी जीवन यापन करना ही समीचीन है।" ऐसा निश्चय करके उन्होंने संकेत द्वारा ब्रह्मचारियों से सूक्ष्माहार की इच्छा प्रकट की। ब्रह्मचारी उन्हें क्रमशः जल और मूँग का जूस आदि देने लगे। धीरे-धीरे जब उनके शरीर में बल का संचार हुआ, तो वह ग्रामों में जाकर भिक्षाचर्या करने लगे। उस समय वह पाँचो ब्रह्मचारी यह सोचकर कि जब तप से इन्हें प्रज्ञा लाभ नहीं हुई, तो अब भोजन करने से कैसे लाभ होगी, उनका साथ छोड़कर वहाँ से १८ योजन दूर, ऋषिपत्तन (वर्तमान सारनाथ, काशी) को चले गए।

सुजाता का खीर-दान

उस समय उरुवेला-प्रदेश के सेनानी-ग्राम में सेनानी-नामक कुनबी-परिवार की सुजाता नामक एक कन्या ने एक वट-वृक्ष से यह

प्रार्थना की थी कि तरुणी होने पर यदि उसका विवाह किसी अच्छे घर में उसी के समान सुंदर और सुयोग्य वर के साथ होगा, और पहले ही गर्भ में यदि उसे सुंदर पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी, तो वह प्रति वर्ष वैशाख-पूर्णिमा को वट-देवता को सहस्र-खर्व खीर से वलिपूजा करेगी। उसकी वह कामना पूरी हुई थी, और उसने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वट-देवता की पूजा को तैयारी की थी। उसने एक सहस्र नीरोग पहिला गायों को मधुयष्टि (मुलेठी) के वन में चरवाया। फिर उनका दूध दुहवाकर ५०० गायों को पिलवाया। फिर ५०० का ढाई सौ गायों को पिलवाया। इसी तरह करते-करते १६ गायों का दूध आठ गायों को पिलवाया। फिर वैशाख-पूर्णिमा को प्रभात-काल उन आठ गायों को दुहवाया, और उनके उस अत्यंत मधुर, गाढ़े और पुष्टिकर दूध को चाँदी के नए वर्तन में लेकर आग जला उसने अपने हाथ से अक्षत चावलों की खीर बनाना आरंभ किया।

जिस समय वह खीर बना रही थी, उसने अपनी 'पूर्णा' नाम की दासी को उस वट-वृक्ष के नीचे स्थान स्वच्छ करने को भेजा जहाँ वह पूजा के लिये जानेवाली थी। पूर्णा जिस समय स्थान परिष्कार करने के लिये वट-वृक्ष के नीचे पहुँची, तो उसने वहाँ पद्मासन से विराजमान वोधिसत्त्व को देखा। उसने यह भी देखा कि बोधिसत्त्व के कंचनवर्ण शरीर से एक दिव्य आभा का विकास हो रहा है, जिससे वह समस्त वट-वृक्ष समालोकित हो रहा है। पूर्णा ने समझा, मेरी स्वामिनी की पूजा ग्रहण करने के लिये वट-देवता वृक्ष से उतरकर बैठे हैं, और पूजा की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उसने अत्यंत

हर्षित हो जल्दी से जाकर यह शुभ-संवाद अपनी स्वामिनी को सुनाया। वट-देवता उसकी पूजा ग्रहण करने के लिये बैठे प्रतीक्षा कर रहे हैं, यह सुनकर सुजाता भी आनंद से उन्मत्त हो उठी। उसने पुनीत प्रेम और विशुद्ध श्रद्धा से तैयार की हुई उस उत्तम खीर को एक लक्ष मुद्र मूल्य के एक अति उत्तम सुवर्ण के थाल में परोसा, और ढक्कन से ढककर एक स्वच्छ वस्त्र में बाँध दिया। फिर स्नान करके सुंदर वस्त्राभूषणों को पहन और उस थाल को अपने शिर पर रखकर पूर्णा के साथ उस वृक्ष के नीचे गई। वहाँ बोधिसत्त्व को दिव्य आभा वितरण करते हुए विराजमान देखकर वह अत्यंत आनंदित हुई, और वट-देवता समझ शिर से थाल उतारकर माथा झुका दूर ही से प्रणाम किया। फिर थाल को खोल एक हाथ में थाल और दूसरे में सुगंधित पुष्पों से सुवासित स्वर्णमय जलपात्र लेकर वह बोधिसत्त्व के निकट जाकर खड़ी हुई, और देवता से भेंट ग्रहण करने की भावना करने लगी।

अत्यंत दुष्कर तपश्चर्या से क्षीणकाय एवं अलौकिक तेजविशिष्ट बोधिसत्त्व ने सुजाता की भावना को तुरंत समझ लिया। वह उस श्रद्धा-पूर्ण भेट को ग्रहण करने के लिये अपना भिक्षापात्र उठाने लगे, किंतु देवताओं की माया से घटिकार महाब्रह्मा का दिया हुआ उनका वह मिट्टी का भिक्षापात्र उस समय अदृश्य हो गया। बोधिसत्त्व ने अपना भिक्षापात्र न देखकर प्रेमपुलकित सुजाता का वह खीर-थाल और जलपात्र ग्रहण करने के लिये अपने दोनों हाथ फैलाए। महाभाग्यवती सुजाता ने पात्र-सहित खीर को महापुरुष के कर-कमलों में अर्पण

किया। बोधिसत्त्व ने सुजाता की ओर अमृतमय दृष्टि से देखा। सुजाता समझी, देवता वर माँगने को कह रहे हैं। वह बोली—"देव ! आपके प्रसाद से मेरी मनोकामना पूर्ण हुई है। मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मेरी कामना पूर्ण होनेपर मैं सहस्र गोखर्व से खीर बनाकर आपको अर्पण करूँगी। सो कृपा करके मेरी इस भेंट को ग्रहण कीजिए और इसे लेकर यथारुचि स्थान को पधारिए। जैसे मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ है, वैसे ही आपका भी पूर्ण हो।" अहा ! भक्तिविह्वल नारी वर माँगने की जगह आशीर्वाद देने लगी। बोधिसत्त्व ने ईषित मुसकान से उसका आशीर्वाद ग्रहण किया। भूरिभागा सुजाता पात्र-सहित खीर दान करके अपने घर चली गई।

बोधिसत्त्व ने पिछली रात को ५ महास्वप्नों को देखकर निश्चय किया था कि आज मैं अवश्य बुद्धत्त्व-लाभ करूँगा। अतः रात बीतने पर प्रभात-काल ही शौच आदि से निवृत्त हो वह उस वट-वृक्ष के नीचे आकर बैठे थे, और भिक्षाकाल की प्रतीक्षा कर रहे थे। जिस समय बोधिसत्त्व इस प्रकार बैठे हुए भिक्षार्थ बस्ती में जाने के समय की प्रतीक्षा कर रहे थे, उसी समय पूर्णा ने वहाँ आकर उनके दर्शन किए, और "मेरी स्वामिनी आपकी पूजा के लिये बलिसामग्री लेकर आ रही हैं" कहकर चली गई, और फिर सुजाता ने आकर खीर-दान किया। सुजाता के चले जाने पर बोधिसत्त्व उठे, और वृक्ष की प्रदक्षिणा कर थाल को लेकर निरंजना-नदी के तट पर गए। वहाँ थाली को रखकर नदी में स्नान किया, और एक स्वच्छ स्थान पर पूर्व की ओर मुख करके बैठ गए। फिर उस अत्यंत मधुर पायस पर

सात रेखाएँ कीं, और फिर दूसरी ओर से सात रेखाएँ करके उन सातों रेखाओं को काट दिया। ऐसा करने से पायस के उंचास भाग हो गए। फिर एक-एक भाग को एक-एक ग्रास करके बिना जल पिए ही उन्होंने भोजन किया, और शेष में जल पान करके उन स्वर्ण-पात्रों को नदी में फेंक दिया। इस भोजन के बाद सात सप्ताह तक बोधिसत्त्व ने भोजन नहीं किया। मानो ४९ ग्रास ४९ दिनों का आहार हो गए। इस प्रकार पायस भोजन करके बोधिसत्त्व उठे, और निकटवर्ती सघन शालवन में चले गए। उस दिन वह दिन-भर उस वन में चंक्रमण या दिवा-विहार करते रहे, कहीं बैठे तक नहीं।

ब्राह्मण का कुशा-दान

दिन के अवसान-काल में दिवाकर जब अस्ताचलगामी हुए और प्रतीची से उनके आरक्त मंडल से स्वर्णमयी किरणें विकीर्ण होकर उस सघन वन के तरु-पल्लवों को स्वर्णकांत बनाने लगीं, शीतल एवं स्वच्छ सौरभमयी सांध्यपवन मंद-मंद संचरण करके शरीर और मन को प्रफुल्लित करने लगा, समस्त भूमिचारी एवं नभचारी पशु-पक्षी-गण अपना-अपना आहार लेकर बसेरे को जाने लगे, तो बोधिसत्त्व भी दिन-भर चलने के बाद उस सोहावनी संध्या में ध्यान-समाधि के लिये किसी उपयुक्त स्थान की खोज में जा रहे थे। उसी समय उन्हें कुशों को लिए हुए स्वस्तिक नामक एक ब्राह्मण दिखाई दिया। बोधिसत्त्व ने उससे तृण माँगे। उसने पूछा—"महाराज, तृण लेकर क्या करोगे?" बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया—"इन पर बैठकर मार-विजय करके सर्वज्ञता लाभ करूँगा।" ब्राह्मण बोला—"महाराज! हम तो नित्य ही

तृणों पर बैठते हैं, हमें सर्वज्ञता क्यों नहीं लाभ होती ?" बोधिसत्त्व ने कहा—"हे स्वस्तिक ! सर्वज्ञता लाभ करने के लिये बहुत बड़े आयोजन की आवश्यकता है, उसे दस पारमिता-संपन्न कोई विरला ही पुरुष प्राप्त कर सकता है।" ब्राह्मण बोला—"महाराज ! मुझे भी उसकी युक्ति बताइए।" बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया—"जब सुनना कि मैं प्रज्ञा प्राप्त करके अमृत का वितरण कर रहा हूँ, तो तुम भी आकर उसे ग्रहण करना।" ब्राह्मण ने भक्तिभावपूर्वक प्रणाम करके उन्हें तीन मुट्ठा तृण भेंट किए जिन्हें लेकर वे एक अति रमणीय पीपल के वृक्ष के नीचे गए और उन तृणों को बिछा दिया। फिर उस तृणासन पर यह दृढ़ प्रतिज्ञा करके बैठ गए कि "चाहे मेरा शरीर पात हो जाय, परंतु मैं बुद्धत्व लाभ किए बिना इस आसन से न उठूँगा।" यह पीपल का वृक्ष "बोधि-वृक्ष" और यह स्थान "बुद्ध-गया" के नाम से प्रसिद्ध है।

मार-विजय

जब बोधि प्राप्त करने के लिये बोधिसत्त्व बोधिवृक्ष के नीचे समाधिस्थ होकर बैठे, तो 'मार' (कामदेव) बहुत डरा। उसने सोचा, यदि इनको बुद्धत्व लाभ हो गया, तो ये असंख्य अप्रमेय प्राणियों के लिये निर्वाण का मार्ग खोल देंगे। फिर हमारी प्रभुता किन पर रहेगी ? हमारा माननेवाला कोई न रह जायगा, सब हमारे अधिकार से निकल जायँगे। पाठक पढ़ चुके हैं कि इससे पहले भी वह कई बार उन्हें विचलित करने का प्रयत्न कर चुका था, परंतु बोधिसत्त्व कभी अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए। उसने कपिलवस्तु में महा-

भिनिष्क्रमण के समय अनेक विघ्न किए, उसके पश्चात् जब वे छः वर्ष का घोर तप कर रहे थे, तब भी वह कई बार उनके पास गया और उन्हें समझाया—"तुम किस लिये शरीर सुखाते हो। तुम तो राज-पुत्र हो। तुम्हें किस बात की कमी है, जिसके लिये यह कठिन तप करते हो। तुमको तो राज-सुख भोगना चाहिए। तपस्या में क्या धरा है ?" इत्यादि। परंतु बोधिसत्त्व सदैव उसका तिरस्कार ही करते रहे; किंतु इस बार जब उसने देखा कि शाक्यमुनि दृढ़ प्रतिज्ञा-रूपी कवच धारणकर सत्य-रूपी शरासन पर बुद्धि-रूपी बाण का संधान करके मार-राज्य को छिन्न-भिन्न कर देने के लिये समरांगण में आ डटे हैं, तो वह भी अपनी पूर्ण शक्ति से उन्हें पराजित करने का प्रयत्न करने लगा। ऋतुराज वसंत का अवसानकारिणी वैशाखी पूर्णिमा की उस मनोरम संध्या में—जिसमें कि चंद्रमा ने अपनी पूर्ण कला से नभोमंडल में उदित होकर अपनी शीतल चंद्रिका से पृथिवी को धवलित कर दिया था, एवं त्रिविध समीर ने अपने मृदुमंद संच-रण से उसे और भी मनोरम बना दिया था—पापी मार ने पहले अपनी रति, प्रीति, तृष्णा इत्यादि कन्याओं को काम-कला-प्रवीण महासुंदरी रमणियों की सेना के साथ उनके निकट भेजा, जो अपने स्त्री-स्वभाव-सुलभ हाव-भाव-कटाक्ष एवं नृत्य-गीत-वाद्य आदि ३२ प्रकार की काम-कलाओं का प्रदर्शन करके बोधिसत्त्व को विविध प्रकार के मनोहर वचन बोलकर लुभाती रहीं, किंतु जब उनका आसन न डिगा और न मन ही चलायमान हुआ, तो वे अद्भुत काम-केलि को दिखाती हुई बोधिसत्त्व के चारो ओर नंगी होकर

नाचने और स्त्री-पुरुषवत् परस्पर रमण करने लगीं, किंतु बोधिसत्त्व ने उनकी ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं, और उनका सब प्रयत्न निष्फल हो गया।

इस प्रकार जब मार-कन्याएँ अपना सारा कौशल दिखाकर हार गईं, तो मार स्वयं गिरिमेखल नामक हाथी पर सवार होकर अपने सहस्र करों में शस्त्रास्त्र धारण करके अपने विलास, हर्ष और दर्प आदि पुत्रों तथा समस्त सेना-सहित बोधिसत्त्व पर आक्रमण करने को समुद्यत हुआ। बोधिसत्त्व मार को इस प्रकार आक्रमण करते देखकर हँसे और सब जानते हुए भी अजान की तरह उससे बोले—"हे मार! तुमने इतनी बड़ी सेना लेकर मुझ पर चढ़ाई करने का कष्ट क्यों किया है?"

मार ने कहा—"राजकुमार! तुम्हारी वाणी तो बड़ी मधुर है, पर हृदय अत्यंत कुटिल। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि इस संसार में देव, दानव, मनुष्य, तिर्यक् सब मेरे वशीभूत हैं, इस त्रिलोकी की रचना में मैं सर्वत्र व्याप्त हूँ, और सब प्राणी मेरे अधीन हैं। किंतु तुम मेरी इस प्रभुता और पूजा-प्रतिष्ठा को मिटा देने के लिये यहाँ आसन लगाकर बैठे हो और इस बात की चेष्टा कर रहे हो कि निर्वाण का मार्ग सर्व-साधारण के लिये खुल जाय। यदि तुम्हारा यह प्रयत्न सफल हो गया और निर्वाण का मार्ग नीच-ऊँच सबके लिये खुल गया, तो फिर मैं किसपर शासन करूँगा और कौन मेरे अधिकार में रहेगा? तुम्हें स्मरण रखना चाहिए कि पहले कोई विरले जीव रूप-ब्रह्मलोक और अरूप-ब्रह्मलोक में जाने की चेष्टा

करते थे, और मैं प्रायः उन्हें विचलित कर दिया करता था, परंतु तुम तो सर्व-साधारण के लिये उससे भी ऊँचे निर्वाण का द्वार खोलने की प्रतिज्ञा करके बैठे हो, भला यह कैसे संभव हो सकता है कि तुम मेरे अधिकार के भीतर रहते हुए ऐसा कर सको ?

बोधिसत्त्व ने कहा—"हे मार ! अब तक तुमने जिन योगियों को विचलित करने की बात कही है, उनमें तुम मुझे मत समझो। मैं संसार के दुखित जीवों के कल्याण का मार्ग ढूँढ़ने का दृढ़ संकल्प करके बैठा हूँ, तुम मुझे तिल-मात्र भी विचलित नहीं कर सकते। तुम्हें उचित है कि तुम मेरे इस पुण्योपेत पवित्रतम कार्य में सहायता देकर महत् पुण्य का संचय करो। यह मैंने माना कि तुम बड़े ऋद्धिमंत हो, किंतु दुखित और व्यथित जीवों के उन्नति-विकास में सहायता न देकर तुम जो उन्हें अपनी पूजा-प्रतिष्ठा-रूप क्षुद्र स्वार्थ-साधन के लिये अपने अधिकाराधीन रखना चाहते हो, यह अत्यंत पाप-कर्म है। यह तुमको नहीं करना चाहिए। हे मार ! तुम्हें स्मरण रखना चाहिए कि तुम कामनाओं के स्वामी हो, किंतु तुममें आत्म-संयम नहीं है, इसलिये तुम्हारा किसी विषय में भी प्रभुत्व नहीं है। हे कामेश्वर ! यदि तुम्हारा पतन न हुआ, तो तुम देखोगे कि मैं तुम्हारे सामने ही बुद्धत्व लाभ करूँगा।"

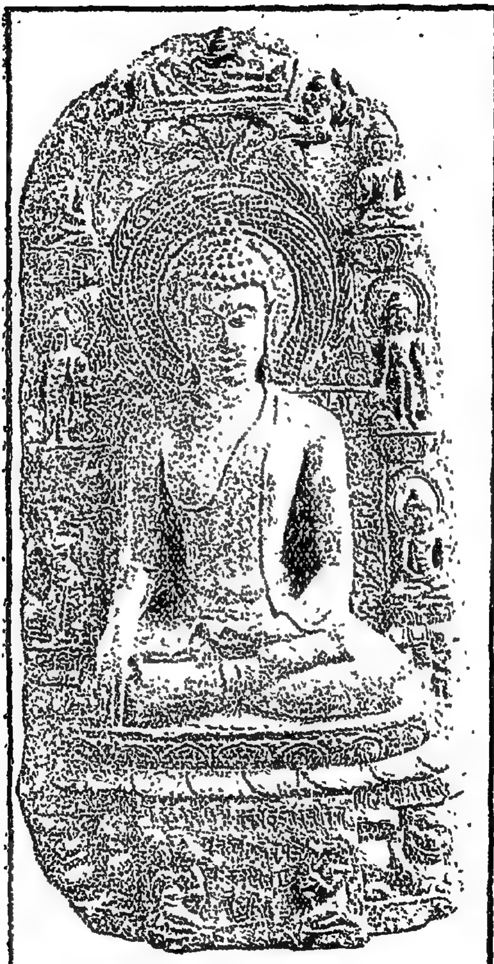
बोधिसत्त्व की बात सुनकर मार अत्यंत क्रोधित हो गया। वह अपने सहस्र करों से उनपर नाना अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करने लगा। उसने अपनी प्रचंड माया से वेगवती आँधी चलाई जिससे बड़े-बड़े वृक्ष जड़ से उखड़ गए; मूशलधार पानी बरसने लगा,

बिजली तड़पने लगी, मेघ गरजने लगे, मानो महा भयंकर प्रलय-काल का दृश्य उपस्थित हो गया। किंतु इस भयानक उत्पात से भी न बोधिसत्त्व अपने आसन से डिगे और न बोधिद्रुम का ही एक पत्ता हिला। मार जब अपने कौशल करके थक गया, तो वह मार्मिक बातें कहकर बोधिसत्त्व को चिढ़ाने लगा। बोला—"हे राजकुमार! यह जो तुम बकध्यान लगाकर बैठे हो, इससे तुम्हारा कुछ भी कल्याण नहीं हो सकता। यदि तुम मेरी सम्मति के अनुसार अनुष्ठान करते, तो मैं तुम्हें त्रिलोक की संपदा उपस्थित कर देता। तुमने राजा होकर भी न कोई यज्ञ किया, न ब्रह्मभोज किया, और न ब्राह्मणों को दान ही किया, फिर तुम अति दुर्लभ निर्वाण-पद को क्या कोरी समाधि लगाकर प्राप्त कर सकते हो?"

बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया—"मार! तुम वृथा प्रलाप क्यों करते हो? तुम्हारे इन प्रयत्नों से मैं विचलित नहीं हो सकता। मेरा पुण्य अमित और अमिट है, जिसकी साक्षी समस्त देवगण और यह पृथिवी देगी।" ऐसा कहकर बोधिसत्त्व ने अपने कर-कमल से पृथिवी को स्पर्श किया। उनके स्पर्श करते ही पृथिवी के भीतर से तुमुल गर्जन हुआ, जिससे मार मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा और उसकी समस्त सेना तितर-बितर होकर भाग गई। देवताओं ने धिक्कारपूर्वक मार की निंदा की और बोधिसत्त्व पर सुमन-वृष्टि।

इस प्रकार विघ्नकारी मार को विजय करके बोधिसत्त्व निरुपद्रव चित्त से समाधि में निमग्न हो गए।

बोधिसत्व ने जब बोधिद्रुम के नीचे बैठ कर मार पर विजय पाई उसी समय से—"वह भगवान अर्हत हैं, सम्यक्-संबुद्ध हैं, विद्या और आचरण से युक्त हैं, सुगत हैं, लोकों के जाननेवाले हैं ; उनसे कोई उत्तम नहीं है, ऐसे (वह) पुरुषों के चाबुक-सवार हैं, देवताओं और मनुष्यों के शास्ता (उपदेशक) हैं,—(ऐसे वह) बुद्ध भगवान हैं। वह ब्रह्मलोक, मारलोक, देवलोक सहित इस लोक को देव-मनुष्यों सहित श्रमण-ब्राह्मण-युक्त (सभी) प्रजा को, स्वयं समझ—साक्षात्कार कर—जानते हैं। वह आदिमें कल्याण-(कारक), मध्यमें कल्याण-(कारक) अन्त में कल्याण-(कारक) धर्म का अर्थ-सहित—व्यंजन-सहित—उपदेश करते हैं।



भगवान बुद्धने बोधिवृक्ष के नीचे सम्यक ज्ञान प्राप्त किया

बुधत्व-लाभ

इस समाधि-दशा में पहले ध्यान की चारो अवस्थाओं—अर्थात् (१) सवितर्क ध्यान, (२) अवितर्क ध्यान, (३) निष्प्रीतिक ध्यान, और (४) अदुःखासुख ध्यान में विहार करते हुए रात्रि के प्रथम याम में उन्होंने दिव्य-दृष्टि प्राप्त की। इस दिव्य-दृष्टि को बौद्ध-शास्त्रों में "दिब्ब-लोचन" या "दिव्य-चक्षु-ज्ञान-दर्शन" कहते हैं। इस विद्या के लाभ करने से समस्त आवरण दूर हो जाते हैं और स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य, सुख-दुःख आदि जीवों के संपूर्ण भोग और पदार्थ अपने वास्तविक रूप में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगते हैं। रात्रि के मध्य याम में उन्हें "पुब्बनिवास" या "पूर्वानुस्मृति-ज्ञान-दर्शन" का लाभ हुआ। इस विद्या की प्राप्ति से वह जातिस्मर हो गए और उन्हें अपने पिछले करोड़ों जन्मों का वृत्तांत प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगा। फिर रात्रि के शेष याम में उन्हें "पटिच्चसमुप्पाद" या "प्रतीत्य-समुत्पाद" या "आसवक्षय-ज्ञान-दर्शन" का लाभ हुआ। इस विद्या की प्राप्ति से उन्हें संपूर्ण वाह्य और आभ्यंतर जगत् के कार्य-कारण-भाव का अविच्छिन्न संबंध दिखाई पड़ने लगा। उन्होंने देखा कि कार्य-कारण-भाव के अखंड नियम के वशवर्ती होकर इस अनादि संसार की समस्त वाह्य वस्तुएँ जिस प्रकार उत्पत्ति, स्थिति और विनाश को प्राप्त हो रही हैं, उसी प्रकार आभ्यंतर जगत में भी चित्त की समस्त शुभाशुभ वृत्तियाँ उत्पत्ति और निरोध को प्राप्त हो रही हैं। इस प्रकार अपरिवर्तनशील और अलंघनीय नियमों के अधीन होकर यह सारा संसार घड़ी-यंत्र की तरह अविराम-गति से चक्कर लगा रहा है।

वह संसार के समस्त दुःखों का कारण प्रत्यक्ष देखने लगे कि अविद्या से संस्कार की उत्पत्ति होती है, संस्कार से विज्ञान की, विज्ञान से नाम-रूप की, नाम-रूप से षड़ायतन की, षड़ायतन से स्पर्श की, स्पर्श से वेदना की, वेदना से तृष्णा की, तृष्णा से उपादान की, उपादान से भव की, भव से जाति की और जाति से जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास अथवा पंच दुःख-स्कंधों * की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार दुःख, दुःख का कारण, दुःखों का निरोध और दुःख-निरोध के उपाय अर्थात् आर्य अष्टांगिक मार्ग † इन चारो आर्य-सत्यों को उन्होंने सम्यक् रूप से जान लिया। और, रात्रि के अवसान में, अरुणोदय के समय, वे "अनुत्तरा सम्यक् संबोधि" लाभ करके 'बोधिसत्त्व' से 'सम्यक् संबुद्ध' हो गए। बौद्ध-शास्त्रों में लिखा है कि इस प्रकार सम्यक् संबुद्ध होकर वह पृथिवी से सात तालवृक्षों के परिमाण में ऊँचे उठ गए और देवताओं ने यह जानकर कि भगवान् के सम्यक् संबुद्ध हो जाने से अब संसार के दुःखित प्राणियों के लिये निर्वाण का मार्ग खुल गया, उनपर पुष्पों की वृष्टि करके अनेक प्रकार से उनकी पूजा और वंदना की।

इस प्रकार सम्यक् संबुद्ध होकर भगवान् ने यह उदान कहा—

अनेकजातिसंसारं संधाविस्सं अनिब्बसं।
गहकार गवेस्संतो दुक्खाजाति पुनप्पुनं॥

---

* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान, ये पंच स्कंध हैं।

† सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि; यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है।

गहकारक दिट्ठोसि पुनगेहं न कण्हसि ।
सब्बा ते फासुका भग्ग गहकूटं विसङ्खतं ।
विसङ्खारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा ॥

अर्थ—इस भव-रूप संसार में अनेक जन्म लेकर मैं भ्रमण करता बराबर गृहकार को ढूँढ़ता रहा, और बार-बार जन्म लेने के दुःखों को सहता रहा। किंतु अब मुझे गृहकार दिखाई दिया, और अब मुझे गृह करना शेष नहीं रहा। अब मेरे सब बंधन टूट गए, और गृह-रूपी शिखर चूर्ण हो गया, एवं संसार की सभी वासनाओं का विनाश हो जाने से मेरा चित्त निर्वाण-पद में प्राप्त हो गया।

३—धर्मचक्र का प्रवर्तन

सप्त सप्ताह

बुद्धत्व लाभ करने के बाद भगवान् सात सप्ताह अर्थात् ४९ दिन तक बोधिवृक्ष के नीचे और उसके निकट विहार करते रहे। पहले सप्ताह वे उसी बोधिद्रुम के नीचे बैठे रहे। दूसरे सप्ताह वे निरंतर टहलते रहे। तीसरे सप्ताह वे विना पलक मारे निरंतर बोधिमंड को देखते रहे। चौथे सप्ताह निरंतर चलते रहे। पाँचवें सप्ताह में मुचि-लिंद-वृक्ष के नीचे समाधिस्थ बैठे रहे। इस सप्ताह में मूशलधार वर्षा होती रही। उस समय नागराज ने आकर अपने फनों से भगवान् पर छाया की। छठे सप्ताह में वे अजपाल वटवृक्ष के नीचे विराजमान रहे। यहाँ चैरक, परिव्राजक, श्रावक, गौतम, निर्ग्रंथ, आजीवक और शक्र आदि के साथ भगवान् ने धर्म-संबंधी वार्तालाप किया। सातवें सप्ताह में भगवान् ने तारायण-वृक्ष के नीचे विहार किया। यहाँ धृत-राष्ट्र, विरूढ़क, विरूपाक्ष, और कुबेर नामक चार दिग्पालिक देव-ताओं ने आकर भगवान् को अनवृत्त तप्त ह्रद का जल, नाग-लता की दंतधावन और दिव्य हरीतकी को अर्पण किया। भगवान् ने दंतधावन करके स्नान किया और दिव्य हरीतकी खाकर बैठे थे कि उसी समय त्रपुष और भल्लिक नामक दो वैश्य-यात्रियों ने भगवान् को भक्तिभावपूर्वक मधुयुक्त भोजन अर्पण किया। भगवान् ने उनका भोजन ग्रहण करके उन्हें धर्मोपदेश दिया। उपदेश श्रवण करके वे दोनो भगवान् के शिष्य हो गए।

धर्म-प्रचार की चिंता

भोजन करने के पश्चात् भगवान् तारायण-मूल से उठकर अज-पाल वृक्ष के नीचे आ विराजे और धर्म की गंभीरता पर विचार करने लगे कि मैं अपना यह धर्म किसे सुनाऊँ। संसार के जीव तो राग,द्वेष और मोह के वशीभूत होकर मलिन-बुद्धि हो गए हैं, धर्म की ओर उनकी श्रद्धा नहीं है। यह सोचकर वे निरुत्साह हो गए कि जिन जीवों के कल्याण के लिये मैंने यह महान् परिश्रम किया है, उनमें धर्म सुनने की रुचि नहीं है। इस प्रकार भगवान् को निरुत्साह होते देख सहम्पति महाब्रह्मा आए और अभिवादन करके भगवान् से प्रार्थना की कि "हे परम कारुणिक भगवान् बुद्ध ! आप अपनी प्रतिज्ञा को स्मरण कीजिए और अपने पापमोचन धर्मचक्र का प्रचार कीजिए। अधिकारी आपको ढूँढ़ने पर अवश्य मिलेंगे।" इस प्रकार सहम्पति महाब्रह्मा के प्रार्थना और उत्साहित करने पर भगवान् चिंता करने लगे। उन्होंने पहले आचार्य रुद्रक को स्मरण किया, किंतु ज्ञात हुआ कि उनका शरीर अब नहीं है। फिर उन्होंने आचार्य आराड़ कालाम को स्मरण किया, पर मालूम हुआ कि उनका शरीर भी अब नहीं है। फिर उन्होंने अपने उन पाँच सहपाठियों को स्मरण किया जो तपश्चर्या की अवस्था में उनसे विमुख होकर चले गए थे। उन्होंने ध्यान-बल से मालूम किया कि वे पाँचो तपस्वी वाराणसी नगरी के मृगदाव नामक ऋषिपत्तन में विद्यमान हैं। अत-एव, बुद्धत्व-प्राप्ति के आठवें सप्ताह में भगवान् ने वाराणसी की ओर प्रस्थान किया।

'उपग' से भेट

भगवान् वहाँ से उठकर चले ही थे कि मार्ग में उन्हें आजीवक-संप्रदाय का 'उपग' नामक एक दार्शनिक सामने से आता हुआ मिला। बुद्ध भगवान् का प्रशांत, दिव्य और आनंदमय मुखमंडल देखकर उसने उन्हें प्रणाम करके पूछा—"भगवन्! आपकी दिव्याकृति देखकर यह ज्ञात होता है कि आप कोई लोकोत्तर प्रतिभाशाली जीवन्मुक्त पुरुष हैं। आप किसके शिष्य हैं और किस मत के अनुयायी हैं?"

यह सुनकर भगवान् ने उत्तर दिया—

सब्बाभिभू सब्बविदो हमस्मि
सब्बेसु धम्मेसु अनुपलित्तो;
सब्बं जयो तनक्खयो विमुत्तो
सयं अभिञ्ञाय कमुद्दिसेय्य।

अर्थ—हे उपग! मैं सर्वविद्, सब धर्मों से निर्लिप्त, सर्वजित, वासना-रहित और विमुक्त हूँ और मैंने सब कुछ स्वयं ही जाना है। किसे बताऊँ कि मेरा उपदेशक कौन है?

यह कहकर भगवान् आगे बढ़े और गया, रोहित वस्त्र, अनाल, सारथिपुर आदि स्थानों में विचरण करते हुए वाराणसी के पास गंगा के तट पर पहुँचे।

गंगा पार होना

गंगा अपनी उत्ताल तरंगों से बह रही थी। भगवान् ने नाविक के निकट जाकर पार होने को कहा। नाविक ने उतराई माँगी।

भगवान् ने कहा—"मेरे पास उतराई नहीं है।" ऐसा कहकर वे आकाश-मार्ग से जाकर तत्काल गंगा-पार हो गए। नाविक विस्मित भाव से देखता रह गया और पश्चात्ताप करता हुआ मूर्च्छित हो पृथिवी पर गिर पड़ा। सावधान होने पर उसने यह समाचार महाराज विंबिसार के पास पहुँचाया। महाराज ने उसी समय यह नियम बना दिया कि प्रव्रजित साधुओं से उतराई न ली जाया करे।

पंच भद्रवर्गीय ब्राह्मणों से भेंट

गंगा-पार होकर भगवान् ने वाराणसी में भिक्षा करके भोजन पाया और धीरे-धीरे विचरण करते हुए मृगदाव-नामक ऋषिपत्तन में पहुँचे जहाँ पंच भद्रवर्गीय ब्रह्मचारीगण तपस्या करते थे। ये पाँचो जाति के ब्राह्मण थे, इनके नाम कौंडिन्य, वप, भद्रिय, महानाम और अश्वजित् थे। भगवान् को आते देख ये परस्पर कहने लगे—"मालूम होता है गौतम को बुद्धत्व लाभ नहीं हुआ और तपस्या त्यागकर इधर आया है। हम लोगों को इसका अभिवादन करना नहीं चाहिए, पर हाँ, राजपुत्र है, इसलिये बैठने का कोई आसन दे देना चाहिए।" किंतु आश्चर्य का विषय यह है कि जिस समय भगवान् उनके निकट पहुँचे, तो उनके दिव्य तेजःपुंज को देख-कर वे लोग अपनी प्रतिज्ञा पर अटल न रह सके और कंपित-कलेवर हो अपने आसनों से उठकर उनका प्रत्युद्गमन किया तथा उन्हें सादर एक सुंदर आसन पर बिठाकर उनसे पूछने लगे—"आयुष्मान् गौतम! तुम्हारे शरीर की कांति विमल हो गई है और तुम्हारे मुख-मंडल पर दिव्य तेज और आनंद विराजमान है, क्या तुमने किसी

अलौकिक धर्म का साक्षात्कार किया है?" भगवान् ने उत्तर दिया—"हे तपस्वियो ! तुम लोग मुझे 'आयुष्मान् गौतम' मत कहो, अब मैं शास्ता हूँ। क्योंकि मैंने चरम सत्य को जान लिया है और अमृत का मार्ग देख लिया है। मैं बुद्ध, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और निष्पाप हूँ। मैं जन्म-मरण से रहित हो चुका हूँ।

पाँचो का शिष्यत्व ग्रहण

भगवान् के इस प्रकार के वचनों को सुनकर वे पाँचो तपस्वी ब्राह्मण उनके चरणों पर गिर पड़े और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे—"भगवन् ! हमारे पूर्व-अपराधों को क्षमा करके अब अनुग्रह-पूर्वक हमें अपने नवाविष्कृत धर्मामृत का पान कराइए।" इस प्रकार प्रार्थना किए जाने पर भगवान् ने उन्हें धर्मोपदेश करने का संकल्प किया। भगवान् के संकल्प करते ही वे पाँचो ब्राह्मण जटिल तपस्वी रूप से त्रिचीवरधारी मुंडित दिव्यरूप भिक्षु हो गए और उसी समय भगवान् के बैठने के लिये एक देवनिर्मित रत्नजटित बुद्धासन प्रकट हो गया, जिसपर भगवान् विराजमान हुए और उनके पाद-पद्मों में नमस्कार करके वे पाँचो शिष्य उनके सम्मुख बैठ गए।

धर्मचक्र-प्रवर्तन की तैयारी

उस समय भगवान् के शरीर से एक ऐसी आभा प्रकट हुई जिसने इस पृथ्वी और समस्त लोक-लोकांतरों को समालोकित कर दिया। जहाँ कभी भी सूर्य और चंद्र का प्रकाश नहीं जाता, ऐसे महांधकार-पूर्ण नरक भी आलोकित हो गए। उसी समय समस्त चराचर प्राणियों के दुःख शांत हो गए, यहाँ तक कि नरक के जीव

भी सुखी हो गए। समस्त प्राणी राग, द्वेष, ईर्ष्या, मात्सर्य, मान, मद, क्रोध, हिंसा इत्यादि का त्याग करके परस्पर मैत्री-भाव का प्रदर्शन करने लगे। भगवान् की अलौकिक प्रभा से उस समय यह नाद हुआ कि "हे समस्त लोक-लोकांतर-वासी सत्त्वगणों! जिसे तुम बहुत दिनों से ढूँढ़ रहे हो और जिसके बिना तुम अत्यंत व्याकुल हो, उस धर्मामृत का वितरण आरंभ होगा, तुम लोग आकर उसका पान करो।" इस नाद को सुनकर समस्त ब्रह्मा, देवता, मनुष्य, नाग, किन्नर, विद्याधर, यक्ष, योगी और बोधिसत्त्वगण भगवान् के निकट आ गए और उनके चरणों में नमस्कार करके यथास्थान बैठ गए। भगवान् रात्रि के प्रथम भाग में तूष्णीं भाव को धारण करके ध्यान में विहार करते रहे, मध्यम भाग में विविध प्रकार का धर्मालाप करते रहे, और रात्रि के शेष भाग में अपने पंचभद्रवर्गीय शिष्यों को संबोधन करके बोले—

धर्मचक्र का प्रवर्तन

"हे भिक्षुओ! जिन लोगों ने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली है, उन्हें अंत या सीमावाले दो मार्गों का सेवन करना उचित नहीं है। वे दोनो अंतवाले मार्ग क्या हैं? पहला अंतवाला मार्ग कामसेवन अर्थात् विषय-भोग में डूबे रहना है। यह अत्यंत हीन, ग्राम्य, साधारण(तुच्छ) लोगों के सेवन करने योग्य, अनार्य्य और अनर्थ करनेवाला है। दूसरा अंतवाला मार्ग क्लेश देकर शरीर को सुखाना है। यह भी दुःखजनक, अनार्य्य और अनर्थ करनेवाला है। हे भिक्षुओ! इन दोनो सीमावाले मार्गों को त्यागकर मैंने मध्यमा-प्रतिपदा अर्थात्

मध्यवर्ती मार्ग का आविष्कार कर लिया है। यह अश्रुतपूर्व माध्यमिक मार्ग चक्षु और ज्ञान का देनेवाला है। इससे उपशम, अभिज्ञा, संबोधि और निर्वाण लाभ होता है।"

"हे भिक्षुओ ! वह चक्षु और ज्ञान की देनेवाली तथा उपशम, अभिज्ञा, संबोधि और निर्वाण को लाभ करानेवाली मध्यमा-प्रतिपदा क्या है ? वह आर्य अष्टांगिक अर्थात् आठ श्रेष्ठ अंगों से युक्त मार्ग है। उन आठो अंगों का नाम है—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मांत, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि।"

"हे भिक्षुओ ! इस आर्य अष्टांगिक मार्ग को दूसरे प्रकार से चतुः आर्य-सत्य अर्थात् चार श्रेष्ठ सत्य भी कहते हैं। वे चारो सत्य ये हैं—(१) संसार में दुःख क्या है, इसका ठीक ज्ञान होना; (२) उस दुःख का समुदय अर्थात् उत्पत्ति कैसे होती है, इसका ठीक ज्ञान होना; (३) उस दुःख का निरोध अर्थात् मिट जाना क्या है, इसका ठीक ज्ञान होना; और (४) उन दुःखों के दूर करने का उपाय या मार्ग क्या है, इसका ठीक ज्ञान होना।"

"हे भिक्षुओ ! जाति अर्थात् जन्म, जरा, व्याधि, मरण, अप्रिय-मिलन, प्रिय-वियोग, जिसके लिये इच्छा की जाय उसका न मिलना और संक्षेप में पंचोपादान स्कंध दुःख हैं। यह दुःख-सत्य जानने योग्य है और इसे मैंने जान लिया है। यह पूर्ववर्ती धर्मों में नहीं सुना गया था। इसके जानने से मुझमें चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुआ है।"



सारनाथ में [illegible]

भगवान् बुद्धदेव ने पाँच भिक्षुओं को उपदेश देकर विभिन्न दिशाओं में बौद्धधर्मके प्रचारके लिए भेजा था। उन्होंने प्रचार का आदेश देते समय कहा थाः—

"भिक्षुओ ! बहु-जन-हितार्थ (=बहुत जनों के हित के लिए), बहु-जन-सुखार्थ (=बहुत जनों के सुख के लिए), लोक पर दया करने के लिए, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिए, हित के लिए, सुख के लिए, चारिका चरण (=विचरण) करो। एक साथ दो मत जाओ। हे भिक्षुओ ! आदि में कल्याण-(कारक), मध्य में कल्याण-(कारक), अन्त में कल्याण-(कारक) (इस) धर्म का उपदेश करो। अर्थ-सहित (=व्यंजन-सहित) केवल (=अमिश्र) परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो। अल्प दोष-वाले प्राणी (भी) हैं, धर्म के न श्रवण करने से उनकी हानि होगी। (सुनने से वह) धर्म के जाननेवाले होंगे। भिक्षुओ ! मैं भी जहाँ उरुवेला है, जहाँ सेनानी ग्राम है, वहां धर्म-देशना के लिए जाऊंगा...।"

संघका यहीं प्रादुर्भाव हुआ था। यह हमारे लिए कैसे सौभाग्य का विषय है। मान लो, यदि हमारे भगवान ने धर्म का प्रचार न किया होता ? संसारमें कितना भय, कैसा अंधकार फैला होता; और वह भी कैसा अंधकार ? संसार में सबसे गूढ़तम अन्धकार—अज्ञानता का अंधकार ! इसलिए हमें सारनाथ की—जहाँ संघ का प्रादुर्भाव हुआ था—पूजा करनी चाहिए। यदि हमारे भगवान ने धर्म का प्रचार न किया होता तो हमारा यह जीवन जीता-जागता नरक बन जाता; भगवान बुद्ध ने धर्म की शिक्षा दी, जिससे हमारा जीवन स्वर्गमय हो गया।

"हे भिक्षुओ ! इन सब दुःखों का समुदय या उत्पादन तृष्णा से होता है और तृष्णा ही पुनर्जन्म का कारण है। यह तृष्णा तीन प्रकार की है—काम-तृष्णा, भव-तृष्णा और विभव-तृष्णा *। यह दुःख-समुदय-सत्य त्यागने योग्य है, और इसे मैंने त्याग दिया है। यह पूर्व-कालीन धर्मों में नहीं सुना गया था। इसके त्यागने से मुझमें चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुए हैं।

"हे भिक्षुओ ! तृष्णा की अत्यंत निवृत्ति हो जाने से दुःखों का निरोध हो जाता है। यह दुःख-निरोध-सत्य प्रत्यक्ष करने योग्य है, और इसको मैंने प्रत्यक्ष कर लिया है। यह पूर्व के धर्मों में नहीं सुना गया था। इसके प्रत्यक्ष करने से मुझमें चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुए हैं।"

"हे भिक्षुओ ! पूर्वोक्त आर्य अष्टांगिक मार्ग ही दुःखों के निरोध का प्रशस्त उपाय है। यह दुःख-निरोध-उपाय-सत्य भावना करने योग्य है, और इसकी मैंने भावना कर ली है। यह पूर्व-प्रचलित धर्मों में नहीं सुना गया था। इसकी भावना करने से मुझमें चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुए हैं।"

"हे भिक्षुओ ! जब तक मुझे इन त्रिप्रवर्तित द्वादशाकार चारो आर्य-सत्यों का यथाभूत सुविशुद्ध ज्ञान-दर्शन नहीं हुआ था, तब तक

---

* काम-लोकों के भोगों को भोगने की प्रगाढ़ इच्छा 'काम-तृष्णा' कहलाती है; रूप ब्रह्मलोकों के भोगों को भोगने की प्रगाढ़ इच्छा 'भव-तृष्णा' कहलाती है; और अरूप ब्रह्मलोकों के भोगों को भोगने की प्रगाढ़ इच्छा को 'विभव-तृष्णा' कहते हैं। इन लोकों का वर्णन आगे किया जायगा।

मैंने देवलोक, मारलोक, ब्रह्मलोक, श्रमण और ब्राह्मणी प्रजा में अपने अनुत्तरा सम्यक् संबोधि लाभ करने की ज्ञापना नहीं की थी, जब मुझे इनका यथातथ्य सुविशुद्ध ज्ञान-दर्शन हुआ, तब मैंने पूर्वोक्त लोकों और देव-मनुष्यों में घोषणा कर दी कि मुझे अनुत्तरा सम्यक् संबोधि प्राप्त हुई है, मैं सम्यक् संबुद्ध हुआ और मुझमें सम्यक् ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुए, तथा मेरा चित्त निश्चल और विमुक्त हुआ। यह मेरा अंतिम जन्म है, और अब मेरा पुनर्जन्म न होगा।"

देवताओं की घोषणा

इस प्रकार वाराणसी में सर्वप्रथम भगवान् ने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया जिसे भगवान् के श्रीमुख से सुनकर पंच भद्रवर्गीय शिष्य भक्तिमान् होकर कृतकृत्य हुए। भगवान् बुद्ध के इस भाँति गंभीर, दुर्विज्ञेय, सूक्ष्म, अभेद्य, अप्रपंच्य, अप्रमेय, परम पवित्र, सर्वानुगत और लोकोत्तर धर्मचक्र को सुनकर समस्त लोक-लोकांतर और भूमंडल के ब्रह्मा, देव, मनुष्य, यक्ष, किन्नर और मार इत्यादि ने घोषणा की कि वाराणसी के निकट ऋषिपत्तन मृगदाव-वन में भगवान् ने जिस अनुत्तर धर्मचक्र का प्रवर्तन किया है, वह अब तक किसी श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा अथवा लोक में अन्य किसी के द्वारा प्रवर्तित नहीं हुआ था। इस लोकोत्तर धर्मचक्र के प्रवर्तन अथवा सार्वजनिक धर्मराज्य के मूल-तत्त्व की घोषणा करने के कारण ही भगवान् गौतम बुद्ध तथागत, सम्यक् संबुद्ध, नायक, विनायक, परिणायक, धर्मस्वामी, धर्मेश्वर, सिद्धव्रत, क्षेमङ्कर, तमोनुद और महावैद्यराज इत्यादि नामों से प्रख्यात हुए।

४—संघ-संगठन और धर्म-प्रचार

वाराणसी-वास और संघ-संगठन

धर्मचक्र-प्रवर्तन करने के बाद वर्षा-ऋतु आ जाने के कारण भगवान् ने प्रथम वर्षावास वाराणसी के ऋषिपत्तन मृगदाव-आश्रम में ही किया। इस तीन मास के वर्षावास में भगवान् अपने शिष्यों एवं अन्य धर्म-जिज्ञासुओं को अपने अश्रुतपूर्व लोकोत्तर-धर्म का उपदेश करते रहे। उस समय कौंडिन्य आदि पाँच शिष्य और भगवान्, सब छः उपदेष्टा इस पृथिवी पर थे। इनमें से तीन भिक्षा माँगकर लाते थे, उसे ही भोजन करके यह छोटा-सा संघ निर्वाह करता था। धीरे-धीरे जब भगवान् के बुद्धत्व-लाभ और धर्मचक्र-प्रवर्तन का समाचार फैला, तो कालदेवल असित ऋषि का भागिनेय नारद, जो अपने मामा की आज्ञानुसार इसी प्रतीक्षा में था कि कब भगवान् बुद्धत्व लाभ करके धर्म-प्रचार करें और कब मैं उनसे दीक्षा ग्रहण करूँ, भगवान् की शरण में आया, और धर्म श्रवण करके प्रव्रज्या ग्रहण की। इस प्रकार प्रथम वर्षावास में भगवान् ने वाराणसी में ही ६१ शिष्य करके उनका एक संघ स्थापित किया, और उन्हें धर्म के मूल-तत्त्वों को समझाकर वर्षा के अंत में आदेश किया—"हे भिक्षुओ! संसार के हित और प्राणियों के दुःख-मोचन के लिये तुम लोग आदि, मध्य और अंत में कल्याण करनेवाले मेरे इस अश्रुत-पूर्व निर्वाण-धर्म का

प्रचार करने के लिये चारो दिशाओं में जाओ।" भगवान् की आज्ञानुसार उनका यह नवीन उपदेशक-संघ धर्म-प्रचार के लिये भिन्न-भिन्न दिशाओं में अग्रसर हुआ।

श्रेष्ठी कुलपुत्त जस्स का संन्यास

उस समय वाराणसी में एक धनकुवेर श्रेष्ठी रहता था। श्रेष्ठी एक राजपदवी है जो उस धनिक व्यापारी को मिलती थी जो व्यापारियों में सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्रधान होता था। इसकी पत्नी का नाम 'जस्सो देवी' था, जो 'जस्सो माता' के नाम से भी प्रख्यात थी। जस्सो-माता के एक पुत्र था जिसका नाम 'कुलपुत्त यस्स' था। कुलपुत्त यस्स सुकुमार, सुंदर और माता-पिता का अत्यंत दुलारा था। श्रेष्ठी ने अपने प्रिय पुत्र यस्स के लिये तीन महल बनवा दिए थे—एक हेमंत के लिये, एक ग्रीष्म के लिये और एक वर्षा के लिये। इन सुरम्य महलों में विलास की समस्त सामग्री विद्यमान थी। कुलपुत्र यस्स सहस्रों सुंदरी रमणियों के साथ दिन-रात विलास करता था, कभी महल के नीचे भी न उतरता था। इन महलों में यश-कुमार की सेवा, मनोरंजन और विलास के लिये केवल तरुणी और सुंदरियाँ ही थीं, पुरुष कोई न था। एक दिन रात में नृत्य-वाद्य आदि के अनंतर जब सब सो रही थीं, अचानक कुमार यश की निद्रा खुल गई। वह उठा और दीपकों के शीतल प्रकाश में उसने देखा कि वे ही सुंदरियाँ, जो थोड़ी देर पहले वस्त्राभूषणों से सुसज्जित एवं नाना प्रकार के हाव-भाव और विलास-कौशल से उसे लुभा रही थीं, इस समय इधर-उधर अचेत पड़ी हैं, उनके केश बिखरे हैं, मुख से लार बह रही है, लज्जा-अंग खुले हैं,

खर्राटे भर रही हैं। इस श्मशान-जैसे वीभत्स दृश्य को देखकर कुमार यश के मन में तीव्र वैराग्य का उदय हुआ। वह "हा संतप्त ! हा पीड़ित !!" कहता हुआ अपना सोनहला जूता पहन व्याकुल-सा महल के बाहर हो ऋषिपत्तन मृगदावन की ओर चल दिया। यश "हा संतप्त! हा पीड़ित !!" ऐसा बार-बार कहता वन में उस ओर निकला जहाँ भगवान् गौतम बुद्ध विराजमान थे। भगवान् प्रातःकाल उठकर खुले स्थान में टहल रहे थे। यश की वाणी सुनकर भगवान् ने कहा—"हे यश ! तू असंतप्त है, अपीड़ित है। आ मेरे पास बैठ, मैं तुझे धर्म का तत्त्व सुनाऊँ।" तीव्र विराग से विक्षिप्त श्रेष्ठीकुमार भगवान् की अमृत-वाणी सुन और त्रिविधतापहारी दर्शन करके परमानंदित हो अपने सोनहले जूते उतार भगवान् को प्रणाम कर उनके निकट बैठ गया। भगवान् ने उसे दान, शील, स्वर्ग, काम आदि की कथा सुनाकर दुःख, दुःख का कारण, दुःख का नाश और दुःख-नाश के उपाय, इन चारो आर्य-सत्यों का उपदेश किया। जस्स के हृदय-नेत्र खुल गए, संसार का नग्न चित्र उसे दिखाई दिया।

उधर सवेरा होते ही यस्सो-माता ने अपने प्रिय पुत्र को महल में न देख यस्स के पिता को समाचार दिया। पिता ने उसे ढूँढ़ने के लिये चारो ओर सवार भेजे और जूतों के चिह्न देख आप स्वयं मृगदाव की ओर गया। जब वह भगवान् के निकट पहुँचा, तो भगवान् ने अपने ऋद्धिबल से निकट बैठे हुए यश को अदृश्य कर दिया। श्रेष्ठी ने भगवान् से पूछा—"भगवन् ! आपने मेरे प्रिय पुत्र जस्स को देखा है ?" भगवान् ने कहा—"गृहपति, बैठो। यहीं बैठे हुए यश कुलपुत्र

को तुम देखोगे।" यह सुन जस्सार-कुलपति श्रेष्ठी प्रसन्न होकर भगवान् के निकट बैठ गया। भगवान् ने उसे दान-शील आदि की कथा सुनाकर चारो आर्य-सत्यों की देशना की। भगवान् के मुख से धर्म श्रवण कर जस्सार-कुल-भूषण श्रेष्ठी को धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ। वह बोला--"हे भगवन्! जैसे घोर अंधकार में भटकते हुए के आगे कोई प्रकाशपुंज प्रदीप जला देता है, उसी प्रकार आपके धर्मोपदेश से मेरे नेत्र खुल गए, और मैं भगवान् की शरण में हूँ, धर्म की शरण में हूँ, और भगवान् के संघ की शरण में हूँ।" इस प्रकार बुद्ध, धर्म और संघ, इन तीनो की शरण लेनेवाला वह श्रेष्ठी भगवान् का प्रथम भक्त हुआ। जिस समय भगवान् यस्स-पिता को धर्मोपदेश कर रहे थे, उसी समय निकट बैठे हुए कुमार यश का चित्त आस्रव-रहित (मलहीन) होकर अलिप्त (विमुक्त) हो गया। यह देख सर्व-दर्शी भगवान् ने अपनी माया हटा ली, और श्रेष्ठी ने अपने पुत्र को पास ही बैठे देखकर कहा—"हे तात! तुम्हारी माता रोती-पीटती विलाप कर रही है। चलकर माता को जीवन-दान दो।" यह सुन यश भगवान् की ओर देखने लगा। तब भगवान् बोले—"हे श्रेष्ठी! जैसे मेरा धर्म सुनकर उसका तुमको अपूर्ण ज्ञान और अपूर्ण दर्शन हुआ है, वैसा ही तुम यस्स को मत समझो, यस्स का चित्त विकारों से रहित होकर अलिप्त हो गया है, वह अब पहले की तरह हीन स्थिति में रहकर कामोपभोग नहीं करेगा।"

यह सुन उस श्रेष्ठी ने गद्गद भाव से प्रार्थना की—"जय हो, जय हो। भगवान् ने यस्स-कुलपुत्र को आस्रवहीन और विमुक्त किया

है। भगवान् यस्स को लेकर अपने भिक्षुसंघ के साथ आज मेरे घर पधारकर मेरा भोजन स्वीकार करें।" भगवान् ने इस निमंत्रण को स्वीकार किया और यस्स को अनुगामी भिक्षु बना अपना भिक्षापात्र ले चीवर-वेष्टित हो श्रेष्ठी के घर जाकर भोजन किया। भोजन के पश्चात् यस्स की माता और पत्नी भगवान् का उपदेश सुनने आईं; और धर्म-दृष्टि पाकर "बुद्ध, धर्म और संघ" की शरण में आकर त्रिरत्न की शरण में आनेवाली प्रथम उपासिका हुईं।

यस्स ने प्रव्रज्या ग्रहण की है, यह सुनकर उसके विमल, सुबाहु, पूर्णजित् और गवांपति नामक चारो मित्रों ने विचारा, वह धर्म अवश्य ही महान् होगा, जिसे लाभ कर यस्स गृहत्यागी हो शिर मुंडा-कर संन्यासी हो गया है। वे चारो यस्स के निकट आए। यस्स उन्हें भगवान् के निकट ले गए। भगवान् ने धर्मोपदेश देकर उन्हें भी प्रव्रज्या दान की। फिर यस्स के अन्य ५० मित्रों ने यह समाचार सुना, और वह भी यस्स के पास आए। यस्स उन्हें भी भगवान् के निकट ले गए, और भगवान् ने उन्हें भी धर्मोपदेश दे प्रव्रजित कर ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करने का आदेश किया। इस प्रकार कौंडिन्य आदि पाँच कुलीन ब्राह्मण, नारद, जस्सार-श्रेष्ठीपुत्र जस्स और उसके ५४ मित्र, इन ६१ भिक्षुओं का भगवान् का एक संघ बन गया, जो भगवान् के आदेशानुसार भिन्न-भिन्न दिशाओं में धर्म-प्रचार करने गया।

३० कुलीन क्षत्रिय-राजकुमारों का संन्यास

भगवान् की कीर्ति-कथा सुनकर मगधाधिपति महाराज बिंबसार ने भगवान् को अपने यहाँ पधारने के लिये निमंत्रण भेजा। भगवान्

ने अपनी पूर्व-प्रतिज्ञा का स्मरण कर उनके निमंत्रण को स्वीकार करके काशी से मगध की ओर प्रस्थान किया। भगवान् उरुविल्व होकर मगध जाना चाहते थे। मार्ग में कापास्य-वन पड़ता था। जिस समय भगवान् कापास्य-वन में पहुँचे, वहाँ उन्हें तीस कुलीन क्षत्रिय-राजकुमार मिले, जो उस वन में अपनी-अपनी स्त्रियों को साथ लेकर क्रीड़ा करने आए थे। इनमें से एक राजकुमार के पास स्त्री नहीं थी, अतः वह वेश्या लाया था। रात को जब सब नशे में चूर होकर सो गए, तो उन लोगों का मूल्यवान् माल-असबाब लेकर वह वेश्या चंपत हुई। सबेरे जब राजकुमार होश में आए, तो अपना माल-असबाब न देखकर इधर-उधर वन में उस वेश्या को ढूँढ़ने लगे। उसी समय अकस्मात् भगवान् से उन लोगों की भेंट हुई। भगवान् के दिव्य तेजोमय रूप का दर्शन करके राजकुमारों ने श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया। भगवान् ने उनसे कहा—"हे राजकुमारो! थोड़ी-सी वस्तु के लिये तुम वेश्या को इतना ढूँढ़ रहे हो, क्या तुमने कभी अपने आपको भी ढूँढ़ा है?" राजकुमार भगवान् के मुख से धर्म श्रवण करने की जिज्ञासा करने लगे। भगवान् ने उन लोगों को नाना भाँति से धर्मोपदेश किया, जिससे उनके ज्ञान-नेत्र खुल गए, और वे प्रव्रज्या ग्रहण करके भगवान् के शिष्य हो गए।

काश्यप-बन्धुओं का शिष्यत्व-ग्रहण

कापास्य-वन से भगवान् निरंजना-नदी के तटवर्ती उरुविल्व वन में पहुँचे। वहाँ विल्व-काश्यप, नदी-काश्यप और गय-काश्यप नामक

तीन सुप्रसिद्ध अग्निहोत्री, दार्शनिक और विद्वान् ब्राह्मण रहते थे, जो आपस में तीनो भाई थे, जिनके निकट सब मिलाकर एक सहस्र जटिल (जटाधारी) ब्रह्मचारी अध्ययन करते थे। भगवान् अपने अभिनव धर्म का उपदेश करने की इच्छा से उनके पास गए। उस आश्रम में एक पुराना अग्न्यागार था, जिसमें एक विषधर सर्प रहता था, जिसके भय से लोग उसमें नहीं जाते थे। भगवान् ने उसी में रहने के लिये विल्व-काश्यप से अनुमति माँगी। विल्व-काश्यप ने यह चेतावनी देकर कि "उसमें एक विषधर सर्प रहता है, वह स्थान भयावह है" उन्हें रहने की अनुमति दे दी। भगवान् उसमें अपना आसन लगाकर बैठे। बैठते ही उनके शरीर से एक ऐसी आभा निकली जिससे वह अग्न्यागार आलोकित हो गया और सर्प भयभीत होकर भगवान् के भिक्षापात्र में बैठ गया। यह आश्चर्यजनक घटना देखकर काश्यपत्रय अपने शिष्यों-सहित भगवान् के प्रति भक्तिमान् होकर क्रमशः उनके शिष्य हो गए। और भगवान् ने उनको अपने परम पवित्र धर्म का उपदेश किया। भगवान् बोले—"हे काश्यप-बंधुओ ! जिसकी तृष्णा दूर नहीं हुई है, वह मनुष्य नग्न रहने, जटा रखाने, और शरीर में मट्टी लपेटने से पवित्र नहीं हो सकता। उस मनुष्य के लिये निराहार-व्रत, अग्निकुण्ड की सेवा, भूमि में शयन, शरीर में भस्म-लेपन और उकड़ूँ बैठकर तपस्या करना, ये सब व्यर्थ हैं।" यथा—

न नग्न चरिया न जटा न पंकं अनासका थंडिल सायिकावा।
रजो न क्षल्लं उक्कुट कप्प धानं सोधंति मिच्चं अवितीणि कंख॥

भगवान् के लोकोत्तर धर्म को सुनकर काश्यप-बंधुओं ने अपनी अरणी, स्रुवा आदि यज्ञीय वस्तुओं को निरंजना नदी में प्रवाहित कर दिया। इस प्रकार महाविद्वान् काश्यपत्रय के अपने एक सहस्र शिष्यों-सहित भगवान् के धर्म में दीक्षित हो जाने से भगवान् की कीर्ति विद्युत्-वेग से उस स्थान के चतुर्दिक् फैल गई।

गयशीर्ष पर्वत पर उपदेश

इसके पश्चात् भगवान् अपने इस नवदीक्षित शिष्य-संघ के साथ गयशीर्ष पर्वत पर गए। एक दिन भगवान् उस पर्वत पर विहार कर रहे थे कि सम्मुखस्थ गिरि-शिखर दावानल से प्रज्वलित हो उठा, जिसे देखकर भगवान् ने निम्न-लिखित उपदेश दिया—

"हे भिक्षुओ! जैसे अग्नि से यह गिरि-शिखर जल रहा है, इसी प्रकार यह संसार राग, द्वेष और मोह की अग्नि से निरंतर जल रहा है। चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक् आदि सब इंद्रियाँ, उनके विषय-समूह एवं उनके संयोग से जो उत्पन्न ज्ञान है, वह सब जल रहे हैं और जन्म, जरा, मरण, शोक, परिवेदना, दुःख, दौर्मनस्य इत्यादि इस दहन-क्रिया का परिणाम है। वासना और तृष्णा इस दह्यमान अग्नि की ज्वाला है। किंतु जिसने बोधि-मार्ग का अनुसरण किया है, जो रूप-रस आदि में आसक्त नहीं होता, जो राग, द्वेष और मोह से विमुक्त हो गया है, जिसने ब्रह्मचर्य का पूर्ण अनुष्ठान किया है, वह निर्वाण-पथ का पथिक होकर अभिज्ञा और संबोधि लाभ करता है, और जन्म-मरण के बंधन से छूट जाता है।"

मगधराज बिंबसार का शिष्यत्व-ग्रहण

गयशीर्ष-पर्वत से चलकर भगवान् अपने शिष्यों-सहित राजगृह पहुँचकर वहाँ के लट्ठीवन में विराजमान हुए। उनके आगमन का समाचार सुनकर मगधेश्वर महाराज बिंबसार सहस्रों विद्वान् ब्राह्मणों, मंत्रियों और श्रेष्ठी-महाजनों के साथ उनके दर्शन करने को आए और भक्ति-भाव-पूर्वक अभिवादन करके सब लोग यथास्थान बैठ गए। मगध के महाविद्वान् काश्यपत्रय को अपने शिष्यों-सहित प्रव्रजित रूप में भगवान् के निकट विराजमान देखकर महाराज बिंबसार के साथ पधारे हुए विद्वान् ब्राह्मणों के चित्त में बड़ा क्षोभ और कौतूहल हुआ। वे परस्पर कानाफूसी करने लगे कि इनमें कौन गुरु है और कौन शिष्य। जब उन्हें मालूम हुआ कि विद्वान् काश्यप-बंधुत्रय ही अपने अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्मकांड को त्यागकर भगवान् के इस अभिनव-धर्म में दीक्षित हुए हैं, तो वे अपने मन का वेग अपने भीतर न सँभाल सके। उन्होंने विद्वान् काश्यप-बंधुओं से पूछा—"हे उरुविल्ववासी काश्यप-महात्मन्! क्या आप कृपा-पूर्वक हम लोगों का कौतूहल निवारण करेंगे कि आपने वैदिक अग्नि-होत्रादि किस लिये त्याग दिया है ?" उरुविल्व काश्यप ने कहा—"हे ब्राह्मणो! यज्ञों का फल केवल स्वर्ग-मात्र है, जो काम-सुख भोगों का स्थान, परिवर्तनशील और अनित्य है; उससे जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि से छुटकारा नहीं मिलता; इसलिये मैं उसे त्यागकर अमृत-रूपी निर्वाण की प्राप्ति के लिये सम्यक् संबुद्ध की शरण में आया हूँ।" यह सुनकर ब्राह्मणों को परम संतोष हुआ, और भगवान् ने

उपस्थित दर्शक-मंडली को अपने परम पुनीत धर्म का उपदेश किया, जिससे सब लोग अत्यंत गद्गद् हुए और महाराज बिंबसार एवं सब दर्शकगण बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में आए। उस समय महाराज बिंबसार ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"हे भगवन्! मैंने पूर्वजन्म में पाँच कामनाएँ की थीं—(१) परजन्म में मैं राजा होऊँगा; (२) मेरे राज्य में सम्यक् संबुद्ध पधारेंगे; (३) मैं भगवान् सम्यक् संबुद्ध की पूजा करूँगा; (४) भगवान् सम्यक् संबुद्ध मुझे अपने लोकोत्तर धर्म का उपदेश करेंगे; और (५) मैं भगवान् बुद्ध के धर्म को सम्यक् रूप से धारण कर सकूँगा। सो आज आपकी कृपा से वे सब कामनाएँ पूरी हुईं। अब हे भगवन्! अनुग्रह करके अपने संघ-सहित मेरे भवन में पधारकर भिक्षा ग्रहण कीजिए।" भगवान् ने राजा के प्रेम-पूर्ण निमंत्रण को सादर स्वीकार किया।

दूसरे दिन भगवान् जिस समय अपने शिष्यों के साथ नगर के भीतर होकर भोजनार्थ राजाप्रसाद की ओर चले, तो नगर में कोलाहल हो गया, मार्ग में दोनो ओर दर्शक और दर्शिकाओं की भीड़ लग गई, किंतु सब लोग निस्तब्ध चित्र-लिखे-से दोनो पार्श्वों में खड़े भगवान् और उनकी शिष्य-मंडली के दर्शन करते थे। भगवान् की उज्ज्वल ज्योति, दिव्य लावण्य, सौम्य मूर्ति, प्रसन्न और करुणापूर्ण दृष्टि, पुण्योपेत मुखमंडल, आजानुलंबित बाहु, विशाल वक्षःस्थल, उन्नत ग्रीव, शांत विनीत गंभीर एवं पीत-चीवर-वेष्टित स्वरूप के दर्शन करके अलौकिक आनंद का उद्रेक होता था। आगे-आगे भगवान्, उनके पीछे उनके शांत गंभीर पीत-चीवर-वेष्टित शिष्यों की श्रेणी-

विन्यस्त पंक्ति। सब अवनत मस्तक, दृष्टि को भूमि की ओर जमाए, जीवों का निरीक्षण करते हुए जा रहे थे। इस प्रकार नगर-निवासियों को अपने दिव्य दर्शनों से कृतार्थ करते हुए भगवान् जिस समय राजप्रासाद के द्वार पर पहुँचे, तो महाराज बिंबसार ने राज-परिवार-सहित उनका भक्ति-गद्गद् और प्रेमविह्वल-भाव से स्वागत किया, और महलों में उत्तमोत्तम भोजन कराकर उन्हें अपना 'वेणुवन' नामक सुंदर उद्यान दान किया। भगवान् ने राजा का दान स्वीकार किया, और वे अपने संघ-सहित वेणुवन में वास करके धर्मोपदेश करते रहे।

राजगृह में प्रतिदिन अनेक मनुष्यों को भिक्षु होते देख नगर की स्त्रियों में बड़ी खलबली मच गई। वे जब कभी किसी भिक्षु को मार्ग में निकलते देखतीं, तो परस्पर कहतीं कि "राजगृह के इतने लोग तो संन्यासी हो गए, अब देखें यह भिक्षु किसे लेने आया है।" जब इस प्रकार स्त्रियों के भयभीत होने का समाचार भगवान् के निकट पहुँचा, तो भगवान् ने भिक्षुओं के द्वारा नगर में यह घोषणा कराई कि—

नयंति हि महावीरा सद्धम्मेन तथागता।
धम्मेन नीयमानानं का असूया विजानतं॥

अर्थ—तथागत सद्धर्म-पूर्वक उन्हीं लोगों को अपने धर्म में लेते हैं, जो महावीरों की तरह उनके धर्म में आते हैं। इस प्रकार धर्म-पूर्वक त्रिरत्न की शरण में आते देख किसी को दुःख न मानना चाहिए।

सारिपुत्र और मौद्गलायन का शिष्यत्व

उन दिनों राजगृह में 'संजय' नाम के एक परिव्राजक रहते थे जिनके साथ ढाई सौ शिष्य थे। इन शिष्यों में 'सारिपुत्र' और 'मौद्गलायन' प्रधान थे। ये दोनो ब्राह्मण थे, और इनमें परस्पर घनिष्ठ मित्रता थी। एक दिन ये दोनो मित्र नगर में भिक्षा कर रहे थे कि उसी समय भगवान् बुद्ध का 'अश्वजित' नामक शिष्य भी नगर में भिक्षा करने आया। अश्वजित की प्रशांत, गंभीर और प्रसन्न आकृति देखते ही प्रीतिमान् होकर सारिपुत्र ने उससे पूछा—"हे बंधु! आपके मुखमंडल पर शांति और पवित्र तेज विराजमान है। आप किसके शिष्य हैं, और किस धर्म का अनुसरण करते हैं?" अश्वजित ने उत्तर दिया—"मैं महाश्रमण भगवान् गौतम बुद्ध का शिष्य हूँ, उन्होंने मुझे संसार के सब हेतुप्रभव पदार्थ, उनकी उत्पत्ति के हेतु, और उनकी निवृत्ति का मार्ग बता दिया है।" अश्वजित की गंभीरोक्ति सुनकर दोनो परिव्राजक भक्तिमान् होकर, अनेक शिष्यों के साथ भगवान् के दर्शनार्थ वेणु-वन में आए। भगवान् ने प्रव्रज्या देकर उन्हें अपने प्रधान शिष्यों में सम्मिलित कर लिया।

महाकाश्यप का संन्यास

कश्यपगोत्रीय पिप्पली माणवक मगध के महातीर्थ ग्राम के कपिल नामक विद्वान् और धनवान् ब्राह्मण का एकलौता पुत्र था। यह आरंभ ही से विरक्त होने के कारण विवाह-बंधन में बँधना नहीं चाहता था। जब उसकी माता ने उससे विवाह के लिये आग्रह किया, तो उसने

एक हज़ार स्वर्णमुद्रा देकर एक कारीगर से एक महासुंदरी स्त्री की मूर्ति बनवाई और उसे वस्त्रालङ्कारों से विभूषित कर माता के सामने उपस्थित कर बोला—"यदि ऐसी सुंदरी स्त्री मुझे मिले, तो मैं विवाह करूँगा, नहीं तो प्रव्रजित हो जाऊँगा।"

माता ने प्रसन्न हो आठ ब्राह्मणों को बुलाया, और उन्हें मन-चाहा धन और वह स्वर्ण-प्रतिमा देकर कहा—"जाओ, हमारी जाति में ऐसी सुंदरी जहाँ मिले, पुत्र का विवाह पक्का कर आओ।" ब्राह्मण उस प्रतिमा को लेकर मद्र-देश को गए; और वहाँ के सागल नगर में स्नान-घाट पर उस स्वर्णमयी नारी-मूर्ति को सजाकर रख दिया। उस नगर के कौशिक-गोत्रीय एक धनाढ्य ब्राह्मण की 'भद्रा कापिलानी' नामक एक अत्यंत रूपवती कन्या थी। यह कन्या भी आरंभ ही से विरक्त थी और विवाह-बंधन में न बँधकर संन्यासिनी होना चाहती थी। भद्रा कापिलानी की धाई स्नानघाट आई और उस सुभूषित स्वर्ण-प्रतिमा को विनयहीन भाव से खड़ी देख उसे भद्रा समझकर सचेत करने के लिये उसकी पीठ पर थप्पड़ मारा। किंतु उसे मालूम हुआ कि यह उसकी स्वामिपुत्री नहीं, वरन् एक स्त्री-प्रतिमा है। वह लज्जित हुई। उस समय ब्राह्मणों ने उससे पूछा—"क्या तेरी स्वामि-पुत्री ऐसी सुंदर है?" धाई सगर्व बोली—"यह मेरी भद्रा की दासी के समान भी नहीं है।" ब्राह्मणों ने परिचय पूछा, तो मालूम हुआ वह कौशिक गोत्रीय धनाढ्य ब्राह्मण की महासुंदरी कन्या है। ब्राह्मणों ने उसके घर जा, बातचीत कर, विवाह पक्का कर लिया, और उस स्वर्ण-प्रतिमा को लड़की को उपहार स्वरूप दे आए।

जब विवाह-संबंध पक्का हुआ, तो पिप्पली माणवक ने भद्रा कापिलानी को और भद्रा ने पिप्पली को पत्र लिखे, जिनमें दोनो ने यह कहकर विवाह करने का निषेध किया कि हम शीघ्र ही संन्यास ग्रहण करेंगे। किंतु संयोग से दोनो के पत्र-वाहक पत्र ले जाते हुए रास्ते में मिले, और दोनो ने दोनो के पत्रों को खोलकर पढ़ लिया और उन्हें फाड़कर जंगल में फेंक दिया, तथा उसी प्रकार दूसरे पत्र लिखकर दोनो के पास पहुँचा दिए जिनमें दोनो ने दूसरे के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया था।

समय पाकर दोनो का विवाह हो गया। भद्रा कापिलानी की माता ने ५५ हज़ार गाड़ी धन दायज देकर पुत्री को विदा किया। उस समय पिप्पली माणवक २० वर्ष का और भद्रा कापिलानी १६ वर्ष की थी। इस प्रकार इच्छा न रखते भी यह जोड़ी पति-पत्नी-रूप में एक स्थान में एकत्रित हो गई। किंतु दोनो ने एक दूसरे का स्पर्श नहीं किया। संयोग-रात्रि को दोनो ने अपनी-अपनी पुष्पमालाएँ पुष्पशय्या के मध्य में रख दीं, और माणवक दाहिनी ओर एवं भद्रा बाईं ओर सोई किंतु शरीर-स्पर्श के भय से दोनो रात-भर जागते रहे। वे दिन में भी एक दूसरे से न बोलते थे। इस प्रकार संसार-सुख में अलिप्त रहकर दोनो एक स्थान में रहते थे।

माता-पिता का देहांत होने के बाद एक दिन माणवक ने अपने खेतों में जाकर देखा कि जोती हुई भूमि में अगणित चिड़ियाँ आदि बैठी हुई छोटे-छोटे कीड़े और केचुओं को खा रही हैं। उसने सोचा, इस हिंसा का पाप मेरे शिर है। दया-भाव से उसका शरीर काँपने लगा। उसने

संकल्प किया कि मैं संन्यास ग्रहण करूँगा। संयोग से उसी दिन भद्रा ने तीन घड़े तिल धूप में फैलवाए। और देखा कि तिलों में असंख्य कीड़े बिलबिलाकर धूप में मर रहे हैं। भद्रा ने सोचा, इस प्राणिहिंसा की पाप-भागिन मैं हूँ। दया से उसका हृदय काँपने लगा। उसने प्रतिज्ञा की कि मैं संन्यास ग्रहण करूँगी।

इस प्रकार विरक्त दंपति जब उस दिन भोजन करने बैठे, और चक्रवर्ती नरेशों के समान भोजन उनके सामने सजाया गया, तो भोजन कर चुकने के बाद माणवक ने अपनी पत्नी से कहा—"भद्रे! मैं अपना ६० चहबच्चों में बंद गड़ा हुआ ८७ करोड़ स्वर्णमुद्रा, १४ हाथियों के झुण्ड, १४ रथों के झुण्ड, १४ घोड़ों के झुंड, १४ दासों के गाँव और १२ योजन तक फैले हुए खेत, सब तुम्हें सौंपता हूँ।"

भद्रा ने पूछा—"और आप कहाँ जाते हो, आर्यपुत्र?"

"मैं संन्यास ग्रहण करूँगा।" माणवक ने कहा।

"मैं भी प्रव्रजित होऊँगी, आर्यपुत्र! यही कहने के लिये मैं आपकी प्रतीक्षा कर रही थी।" भद्रा ने कहा।

ऐसा कह दोनो ने एक दूसरे के केशों को काटकर काषाय वस्त्र पहन लिए और मिट्टी के पात्र हाथों में लेकर बोले—"इस पृथिवी पर जो अर्हत् हैं, उन्हीं के आदेश पर हम प्रव्रजित होते हैं।" ऐसा कह उस अपार संपत्ति को मल-मूत्र और थूक की तरह त्यागकर दंपति संन्यासी चक्रवर्तियों-जैसे महल से उतरकर बाहर हुए और उस ओर चले, जहाँ अर्हतशिरोमणि भगवान् सम्यक् संबुद्ध थे।

आह ! राग-द्वेष की भयङ्कर अग्नि में निरंतर जलनेवाले अरे भोगासक्त प्राणी ! क्या तू एक मुहूर्त के लिये भी सावधान होकर भगवान् की शरण में जाते हुए इन दंपति संन्यासियों के पवित्रतम रूप की कल्पना कर सकता है ? ब्राह्मणत्व का मिथ्या अहंकार करने-वाले किंतु स्वार्थी, लोभी, दंभी, जिह्वालोलुप, कपटाचारी, सूदखोर, दयाशून्य, दीन-दुखी प्रजा से डाकू महाजनों का जल्लाद की तरह तक़ाज़ा वसूल करनेवाले अरे शिश्नोदरपरायण पतित प्राणी ! क्या तू एक क्षण के लिये भी इन आदर्श ब्राह्मण दंपति की पावन दिव्य मूर्ति हृदय की आँखों के आगे करके अपनी छाती पर हाथ रखकर कह सकता है कि तू भी ब्राह्मण-पद-वाच्य है ? अपनी प्रतिभा-शक्ति से निरंतर कामाग्नि को प्रदीप्त करनेवाले अरे संसारी कवि ! क्या तू भग-वच्छरण में जाते हुए इन विशुद्ध त्यागी दंपति संन्यासियों के मान-सिक भावों का चित्रण कर सकता है ?

अपनी ज़िमींदारी की सीमा से बाहर निकल जाने पर मार्ग में चलते हुए माणवक ने सोचा—"समस्त जंबू द्वीप के मूल्य की स्त्री-रत्न इस भद्रा कापिलानी को मेरे साथ देखकर लोग कहेंगे, संन्यासी होकर भी स्त्री से अलग नहीं हो सके।" अतः पिप्पली माणवक उस स्थान पर खड़ा हो गया, जहाँ से वह रास्ता दो तरफ़ फटता था। भद्रा ने पूछा—"क्यों ठहर गए ?" माणवक ने कहा—"भद्रे ! तुझ स्त्री को मेरे साथ देखकर पाप-पूर्ण कल्पना करके लोग नरकगामी होंगे, इसलिये यह उचित है कि इन दो रास्तों में से एक पर तुम जाओ और एक पर मैं।"

"हाँ आर्य ! संन्यासी के साथ स्त्री न होना चाहिए। मुझमें भी लोग दोप देखकर मन में पाप-भावना करके नरकगामी होंगे, इसलिये हम दोनो को पृथक् होना ही उचित है।" ऐसा कह प्रव्रजित पति-देव की तीन प्रदक्षिणा कर, पाँच अंगों से चार वेर प्रणाम करके, दशों नखों के योग से शुभ्रगौर अंजली जोड़कर भद्रा वोली—"लाखों कल्पों से चला आया संबंध आज छूटता है। आर्य ! आप दक्षिण जाति के हैं, इसलिये आप दक्षिण-पथ पर जाइए; स्त्रियाँ वाम-जाति की हैं, इसलिये मैं वाम-मार्ग को जाती हूँ।" ऐसा कह दोनो एक दूसरे से पृथक् हो गए !

इस प्रकार यह कश्यप-गोत्रीय विरक्त ब्राह्मण जिस समय भगवान् की शरण में आ रहा था, उस समय भगवान् राजगृह के वेणुवन विहार में वर्षावास कर रहे थे। भगवान् ने गंधकुटी में बैठे हुए ध्यान में देखा कि पिप्पली माणवक और भद्रा कापिलानी अपनी अपार संपत्ति को त्यागकर प्रव्रजित हुए हैं, और माणवक मेरे पास उपसंपदा ग्रहण करने आ रहा है। मुझे उसका स्वागत करना चाहिए। ऐसा निश्चय कर भगवान् अपने सहवासी ८० महास्थविरों को विना कुछ कहे, पात्र चीवर ले, गंधकुटी से निकल, तीन कोस आगे वढ़कर राजगृह और नालंदा के बीच एक वटवृक्ष के नीचे अपना आसन जमा दिया। माणवक ने वहीं आकर भगवान् से उप-संपदा ग्रहण की, और भगवान् ने उसे 'महाकाश्यप' कहकर संबोधित किया। उपसंपदा ग्रहण कर आठवें दिन महाकाश्यप अर्हत-पद को प्राप्त हुआ। कुछ समय पीछे भद्रा कापिलानी भी भगवच्छरण में आकर भिक्षुणी हुई।

महाकात्यायन का संन्यास

महाकात्यायन उज्जैन-नगर के राजपुरोहित के पुत्र थे। इन्होंने तीनो वेदों को विधिवत् अध्ययन कर पिता के मरने पर पुरोहित-पद पाया। भगवान् के यश को सुनकर उज्जैन-नृपति महाराज चंड-प्रद्योत को कामना हुई कि भगवान् को अपने नगर में बुलावें। उन्होंने महाकात्यायन से अपनी इच्छा प्रकट की। महाकात्यायन अपने सात साथियों को लेकर भगवान् के निकट आए। भगवान् ने धर्मोपदेश देकर प्रव्रजित करने के लिये इनकी ओर अपना हाथ बढ़ाया। भगवान् के ऋद्धिबल से हाथ बढ़ाते ही उन सबके दाढ़ी और शिर के बाल लुप्त हो गए, और वह पात्र चीवर लिए सौ वर्ष के स्थविर के समान हो गए। इस प्रकार स्थविर होकर महाकात्यायन ने भगवान् से उज्जैन चलने की प्रार्थना की, किंतु भगवान् ने उज्जैन जाना स्वीकार न करके उन्हें ही उज्जैन में धर्म-प्रचार करने की आज्ञा दी। भगवान् की आज्ञा से स्थविर महाकात्यायन अपने साथियों-सहित उज्जैन चले। मार्ग में तेलप्पनाली नगर में भिक्षा के लिये निकले। उस नगर में दो सेठ-कन्याएँ थीं—एक धनिक घर की केशहीना थी, दूसरी ग़रीब घर की अति सुंदरी और प्रलंबकेशी। धनिक सेठ की कन्या ने कितने ही बार सहस्रों मुद्रा देकर इसके केश माँगे, किंतु इसने नहीं दिए। किंतु स्थविरों को भिक्षा करते देख इस निर्धन सेठ-कन्या ने उन्हें अपने यहाँ बुलाया, और अपने केश कतर अपनी दाई को दे बोली, अमुक सेठ-कन्या से इनका मूल्य ले आ। दाई जब केश लेकर धनिक कन्या के पास गई, तो उसने उनका मूल्य तिरस्कार-पूर्वक केवल आठ

ही मुद्रा दिया। दरिद्र सेठ-कन्या इस तिरस्कार से दुखित हुई, किंतु आठ ही मुद्रों से उसने स्थविरों को भोजन कराया। स्थविरों ने इस रहस्य को जान लिया, और भोजन के उपरांत सेठ-कन्या को बुलाया। कटेकेश सेठ-कन्या ने स्थविरों की आकर वंदना की। किंतु शिर झुकाते ही उसके बाल पूर्ववत् हो गए और स्थविर अपने ऋद्धिबल से उसके देखते-देखते आकाश में उड़कर उज्जैन के कांचन-वन में उतरे। महाराज उज्जैन ने उन्हें प्रणाम कर सब समाचार पूछा। महाकात्यायन ने राजा को सब समाचार सुनाया। राजा ने सेठ-कन्या की श्रद्धा को सुनकर उसे सम्मानपूर्वक बुलाकर अपनी पटरानी बनाया। सेठकन्या को अपने पुण्य का फल इसी जन्म में मिल गया। सेठ-कन्या ने एक पुत्र प्रसव किया जिसका नाम गोपालकुमार रक्खा गया, और वह गोपाल-माता के नाम से प्रसिद्ध हुई। गोपालमाता ने पुत्रोत्पत्ति की खुशी में राजा से कहकर स्थविरों के लिये उस कांचन-वन में कांचन-वन-विहार बनवा दिया। इस प्रकार उज्जैन में कुछ काल धर्म-प्रचार कर स्थविर महाकात्यायन भगवान के समीप चले गए।

संघ-नियम की घोषणा

इस प्रकार देश के सुविख्यात और सुप्रतिष्ठित विद्वान् और आचार्यों को भगवान् के निकट प्रव्रज्या ग्रहण करके उनके शिष्य होने के कारण अगणित लोग भगवान् के धर्म में सम्मिलित होने लगे। संसार में सभी प्रकार के पुरुष हैं, इन अभिनव भिक्षुओं में सभी आश्रवहीन न थे, इस कारण भिक्षु-समूह में उद्दंडता और उच्छृङ्खलता की शिकायत होने लगी। कुछ भिक्षुगण आपस ही में कलह करने लगे।

जब यह सब शिकायत भगवान् के पास पहुँची, तो भगवान् ने भिक्षु-संघ को सुव्यवस्थित और सुमर्यादित करने के लिये संघ के नियम बना दिए। इन नियमों में भगवान् ने उपाध्याय के बिना भिक्षुओं के रहने का निषेध किया। उपाध्याय और आचार्य के साथ भिक्षुओं को किस प्रकार विनयशील होकर रहना चाहिए, उपाध्याय को किस प्रकार भिक्षुओं के साथ प्रेमपूर्ण बर्ताव करना चाहिए, भगवान् ने इनके समस्त नियम बनाकर अंत में बताया—उपाध्याय और आचार्य को भिक्षुगण पिता के समान समझें, उपाध्याय भिक्षुओं को पुत्र के समान समझें। इसके अतिरिक्त भगवान् ने नए शिष्यों के लिये कितने ही नियम बनाए। उपसंपदा ग्रहण करने के नियम बनाए। भिक्षाचर्या, गृहस्थों से व्यवहार, भिक्षुओं की दिनचर्या आदि सभी आवश्यक नियमोपनियम बनाकर भिक्षुसंघ को एक सुव्यवस्थित और सुमर्यादित संस्था बना दिया। इस प्रकार शास्ता भगवान् ने कठोर संघ-नियमों का अनुशासन-विधान बनाकर अपनी शिष्यमंडली को एकत्रित करके अपने धर्म का निम्नलिखित सार-मर्म बतलाया—

सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसंपदा;
सचित्त परियोदपनं एतं बुद्धानुसासनम्।

अर्थ—समस्त पापों का त्याग करना, समस्त पुण्य-कर्मों का संचय करना, और अपने चित्तको निर्मल एवं पवित्र करना, यही बुद्ध का अनुशासन है।

५—कपिलवस्तु में गमन

महाराज शुद्धोदन का आह्वान्

भगवान् गौतम बुद्ध के धर्म-चक्र-प्रवर्तन का समाचार भारत में दूर-दूर तक पहुँच गया था। देश के प्रत्येक प्रांत और प्रत्येक नगर में भगवान् के धर्म-प्रचार की चर्चा थी, और धर्म-भीरु, धर्मपरायण एवं धर्म-तत्त्व के ज्ञाता विद्वान् सत्पुरुष दूर-दूर देशों से यात्रा करके भगवान के निकट धर्म-श्रवण करने आते थे। कपिलवस्तु में महाराज शुद्धोदन ने भी सुना कि राजकुमार गौतम ने अलौकिक जीवन लाभ किया है और उनके अमृतमय उपदेश को सुनकर सहस्र-सहस्र प्राणी पवित्र और प्रव्रजित हो रहे हैं; पापी लोग भी अपने पापमय जीवन को त्यागकर पवित्र जीवन लाभ कर रहे हैं, तो वह अपने अलौकिक प्राणप्रिय पुत्र को देखने की लालसा से अत्यंत व्याकुल हो उठे। उन्होंने भगवान् को कपिलवस्तु में बुलाने के लिये ९ बार एक-एक सहस्र सेना के साथ अपने मंत्रियों को भेजा, परंतु वे सब भगवान् के निकट पहुँचकर उनके उपदेश से प्रभावित हो उनके भिक्षु-संघ में मिल गए, कोई लौटकर महाराज शुद्धोदन के पास नहीं आया। तब महाराज शुद्धोदन ने अत्यंत व्याकुल होकर अपने महामात्य कालउदायिन् को एक सहस्र सेना देकर भेजा कि तुम किसी तरह मेरे नेत्रों के तारे जीवनाधार पुत्र को कपिलवस्तु ले आओ, और मरने से पहले मैं

उसे एक बार देख लूँ। मंत्री महाराज को बहुत प्रकार से ढाढ़स देकर भगवान् को लाने की प्रतिज्ञा करके चला, किंतु भगवान् के निकट जाकर वह भी प्रव्रज्या ग्रहण करके बुद्ध-संघ में मिल गया। किंतु एक दिन अवसर पाकर कालउदायिन् ने भगवान् से कपिलवस्तु के मार्ग की प्रशंसा करते हुए कहा—"भगवन्! यह बसंत-ऋतु का समय वहाँ जाने के लिये बहुत अच्छा है।" भगवान् ने पूछा—"उदायिन्! तुम कपिलवस्तु के मार्ग की इतनी प्रशंसा क्यों करते हो?" उसने कहा—"भगवन्! आपके पिताजी आपके दर्शन के लिये बहुत व्याकुल हैं। आप कृपा करके कपिलवस्तु चलकर उन्हें दर्शन दीजिए।" भगवान् ने "बहुत अच्छा" कहकर २० सहस्र भिक्षुओं के साथ कपिलवस्तु की ओर प्रस्थान किया। राजगृह से भगवान् एक-एक योजन पर विश्राम करते हुए दो मास में कपिल-वस्तु पहुँचे।

कपिलवस्तु में शुभागमन

उनके शुभागमन के लिये कपिलवस्तु अनेक प्रकार के राजकीय ठाठ से सुसज्जित किया गया था। जब भगवान् वहाँ पहुँचे, तो अनेक भाँति से उनका पूजन और स्वागत किया गया, और भगवान् ने न्यग्रोधाराम में अपने शिष्यों-समेत विश्राम लिया। जिस समय भगवान् न्यग्रोधाराम में अपने शिष्य-समूह के साथ विराजमान थे, शाक्य-वंश के कुछ लोग उनसे मिलने के लिये आए। किंतु उन लोगों ने भगवान् को अपना पुत्र-पौत्रादि समझकर स्वयं प्रणाम न करके, लड़कों को आगे करके प्रणाम करने के लिये कहा। भगवान् ने यह समझ

कर कि जब ये लोग अपना जाति-कुटुंबी समझकर मुझे प्रणाम करने में संकुचित होते हैं, तो मेरे मुख से धर्म-श्रवण करने में भी श्रद्धा न करेंगे, इसलिये अपने ऋद्धिबल से वह धरती से बहुत ऊपर आकाश में उठ गए। इस अद्‌भुत चमत्कार को देखकर सब लोग बड़े विस्मित हुए, और सब लोगों ने भगवान् को भक्तिभावपूर्वक अभिवादन किया। उस समय सबका श्रद्धापूर्ण चित्त देखकर भगवान् ने अपने पवित्र धर्म का उपदेश किया, जिसे सुनकर सबके भ्रम दूर हुए, और सब हर्षित हृदय से अपने स्थान को गए।

भिक्षाचर्या और पिता को उपदेश

दूसरे दिन भगवान् पीत चीवर धारण किए, भिक्षापात्र हाथ में लिए हुए, अपने शिष्यों-सहित भिक्षा माँगने के लिये कपिलवस्तु नगर के भीतर गए, और घर-घर भिक्षा माँगने लगे। इस प्रकार राजकुमार को साधु-वेश में घर-घर भीख माँगते देख नगर में हाहाकार मच गया। यह समाचार सुन दुखित हो महाराज शुद्धोदन उनके समीप आए और अत्यंत कातर-स्वर से बोले—"बेटा! तुम घर-घर भीख माँगकर मुझे लज्जित क्यों करते हो? क्या तुम समझते हो कि मैं तुम्हें और तुम्हारी शिष्यमंडली को भोजन नहीं दे सकता?" भगवान् ने कहा—"महाराज! भिक्षा माँगकर खाना हमारा कुल-धर्म है।" राजा ने विस्मित-भाव से कहा—"बेटा! हमारा जन्म क्षत्रिय राजवंश में हुआ है, हमारे कुल में कभी किसी ने भीख नहीं माँगी।" भगवान् ने उत्तर दिया-"महाराज! मैं अब राजवंश में नहीं हूँ, मेरे पूर्व-पुरुष बुद्ध लोग हैं। बुद्ध लोग सदा से भिक्षा करके ही

भोजन करते आए, इसलिये मैं भी अपने कुल-धर्म के अनुसार ही भिक्षा करता हूँ।"

यह बात सुनकर महाराज शुद्धोदन विकल हो उठे। पिता को धैर्य देने के लिये भगवान् बोले—"हे महाराज! यदि किसी का पुत्र कहीं कोई अलौकिक गुप्त निधि प्राप्त कर ले, तो उसका परम कर्तव्य है कि वह सबसे प्रथम उस निधि में से सर्वोत्कृष्ट वस्तु अपने पिता को अर्पण करे। अतः मैंने जिस अलौकिक धर्म-निधि को प्राप्त किया है, उसमें से कुछ आपके अर्पण करना चाहता हूँ।" इस तरह संबोधित करके भगवान् ने अपने पिता को निर्वाण-धर्म का उपदेश किया। उपदेश के अंत में भगवान् बोले—

उत्तिट्ठे नप्पमज्जेय्य धम्मं सुचरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेते अस्मिं लोके परम्हि च॥
धम्मं चरे सुचरितं न तं दुच्चरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेते अस्मिं लोके परम्हि च॥

अर्थ—हे पिता! उठो, आलस्य मत करो। सद्धर्म का आचरण करो। धर्म करनेवाला इस लोक और परलोक दोनो में सुख से रहता है। सद्धर्म का आचरण करो। भूलकर भी असद्धर्म का अनुष्ठान मत करो। सद्धर्म का पालन करनेवाला इस लोक और परलोक दोनो में सुख से रहता है।

राजमहल में निमंत्रण

उपदेश समाप्त होने पर महाराज शुद्धोदन भगवान् का भिक्षापात्र स्वयं हाथ में लेकर उन्हें भिक्षु-संघ-समेत राजमहल में ले गए, और

विविध भाँति के भोजन कराकर उनका और उनके संघ का सत्कार किया। भोजन के पश्चात् भगवान् अपनी शिष्य-मंडली के साथ एक सुन्दर स्थान पर विराजमान हुए, और उनके दर्शन तथा उपदेश श्रवण करने के लिये राज-परिवार की समस्त महिलाएँ और पुरुष गण भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुए। केवल यशोधरा नहीं आईं। बोली—"यदि मेरे में गुण है, तो आर्यपुत्र स्वयं मेरे पास आएँगे। आने पर ही वंदना करूँगी।" अहा! जो एक दिन राजकुमार के रूप में उस महल में निवास करते थे, वही आज भिक्षुरूप से उसमें विराज-मान हैं। कैसा मर्मस्पर्शी दृश्य है! उस समय भगवान् के शरीर से अलौकिक स्वर्गीय शोभा का विकास हो रहा था। उनका केश-रहित विशाल मस्तक, दीप्तमान मुखमंडल, अर्द्ध-निमीलित लोचन युगल, कषाय-वस्त्र-वेष्ठित गौर शरीर, भिक्षापात्र-युक्त हस्त और उपानह-हीन चरणद्वय, तथा धर्मरूपी अलङ्कार से विभूषित शरीर अलौकिक शोभा वितरण कर रहा था। उनकी अनुपम ज्योति और दिव्य लावण्य से दर्शक-मंडली मुग्ध हो रही थी। जिस समय भगवान् ने अपने श्रीमुख से धर्मामृत का वितरण करना आरंभ किया, राज-परिवार में एक अलौकिक शांति विराजमान हो गई और सब नर-नारीगण परम विह्वल और मुग्ध हो गए।

राहुलमाता यशोधरा को उपदेश

उपदेश समाप्त करने के पश्चात् भगवान् अपने दो प्रधान शिष्यों (सारिपुत्र और मौद्गलायन) के साथ यशोधरा के महल में गए। पति-वियोग में तपस्विनी यशोधरा अपने प्राणनाथ को मुंडित केश,

कषायवसनधारी, अनुपम कांति-पूर्ण संन्यासी-रूप में अपने महल में पधारते देख दौड़कर उनके चरणों में गिर पड़ी, और अपने नेत्र-जल से उनके चरणों को धो दिया। किंतु उसे प्रतीत हुआ कि जैसे वह एक प्रज्वलित अग्नि के निकट आई है, जिसका तेज असह्य है। उसे यह भी प्रतीत हुआ कि भगवान् उसके स्वजातीय पुरुष नहीं, अपितु कोई अलौकिक देवता हैं, इस कारण वह उनके चरणों से उठकर अलग खड़ी हो गई।

महाराज शुद्धोदन ने राजकुमारी के स्नेह की प्रशंसा की। कहा—"भगवन् ! जबसे इसने सुना कि आपने कषाय-वस्त्र पहने हैं, तभी से यह भी कषाय-वस्त्र-धारिणी हो गई। आप एक बार भोजन करते हैं, यह सुनकर यह भी एकाहारिणी हो गई। आप ऊँचे पलँग पर शयन नहीं करते, यह सुनकर यह भी भूमि पर शयन करती है। आप माला, गंध, चंदन आदि से विरत हो गए हैं, सुनकर यह भी माला, गंध, चंदन का स्पर्श नहीं करती। अहर्निश आप ही का ध्यान और आप ही की मंगल-कामना किया करती है। भगवन् ! हमारी बहू इस प्रकार तपस्विनी होकर जीवन यापन करती है। आप इसे उचित उपदेश देकर संतुष्ट कीजिए।"

इस प्रकार राहुलमाता यशोधरा की पवित्र चर्या सुनकर भगवान् संतुष्ट हुए और उसके पूर्वजन्म-संबंधी कई कथाएँ सुनाकर उसे शांति प्रदान की। यशोधरा को उपदेश देकर भगवान् अपने भिक्षु-संघ-समेत न्यग्रोधाराम को लौट आए।

भ्राता नंद को दीक्षा

अब तक महाराज शुद्धोदन को यह आशा थी कि राजकुमार सिद्धार्थ आकर राज्य-भार ग्रहण करके मुझे अवकाश देंगे, किंतु उनकी यह अवस्था देखकर उनकी यह आशा जाती रही, और उन्होंने अपने दूसरे पुत्र नंद को, जो सिद्धार्थ का समवयस्क वैमात्रिक भाई था, राज्य-भार देने की इच्छा से ज्योतिषियों से मुहूर्त पूछकर नंद को युवराज-पद देने का दिन निश्चय किया। उस दिन राज-भवन में विशेष उत्सव मनाया गया और भगवान् बुद्ध का उनकी भिक्षु-मंडली-सहित निमंत्रण किया गया। भगवान् ने राजमहल में पधारकर भोजन किया और चलते समय उन्होंने अपना भिक्षापात्र 'नंद' को दे दिया। नंद उनका भिक्षापात्र लेकर न्यग्रोधाराम में गए। भगवान् ने उनसे पूछा—"नंद! क्या तुम ब्रह्मचर्य-व्रत पालन नहीं कर सकते?" नंद ने गर्वपूर्वक कहा—"अवश्य।" भगवान् ने तत्काल उसका शिर मुड़वाकर उसे भिक्षु बनाकर संघ में सम्मिलित कर लिया। कुमार नंद के भिक्षु होने का समाचार सुन महाराज शुद्धोदन बड़े व्याकुल और बहुत दुखी हुए।

पुत्र राहुल को दीक्षा

इसके कुछ दिन बाद एक दिन भगवान् फिर राजमहल में निमंत्रित होकर गए। जब वह भोजन करके बाहर जा रहे थे, तो राहुल-माता यशोधरा ने अपने पुत्र राहुल को भगवान् की ओर संकेत करके सिखाया कि "हे पुत्र! वह जो दिव्य तेजोमय योगीराज भिक्षु-संघ के आगे-आगे जा रहे हैं, वह तुम्हारे पिता हैं, उनके निकट जा-

कर तुम अपना पैतृक सत्त्व माँगो।" राहुल ने वैसा ही किया। भगवान् उसे अपने साथ न्यग्रोधाराम में ले गए, और वहीं उसको प्रव्रजित करके, संघ में सम्मिलित कर लिया। राहुल के प्रव्रजित होने से महाराज शुद्धोदन और भी दुःखित और कातर हो उठे। वे भगवान् के पास गए और उनसे कहा—"भगवन्! आप हमारे पुत्र हो, जिस समय आपने संसार-त्याग किया, मैं अत्यंत दुखी हुआ; फिर नंद को जिस समय शिष्य किया, मैं और भी दुखी हुआ। अब आपने राहुल को भी भिक्षु बनाकर मुझे अत्यंत क्लेश पहुँचाया है। अतः मैं आपसे बहैसियत राजा के निवेदन करता हूँ कि आयंदा से आप किसी लड़के को बिना उसके माता-पिता या उसके किसी वारिस की सम्मति के प्रव्रज्या न दिया करें।" भगवान् ने महाराज के इस परामर्श को मान लिया, और उसी दिन से यह नियम बना दिया कि "भविष्य में जो कोई किसी व्यक्ति को उसके माता-पिता या वारिसों की आज्ञा के बिना प्रव्रजित करेगा, वह दुक्कट (दुष्कृत) अपराध में अपराधी होगा।" महाराज के इस अनुरोध की रक्षा होने से वह बहुत संतुष्ट हुए, और इसके बाद भगवान् जब तक उस स्थान पर रहे, पिता के साथ साक्षात करके धर्म-विषयक वार्तालाप करते रहे।

अनिरुद्ध आदि छः शाक्य-राजकुमारों और उपाली नापित का शिष्यत्व

इस प्रकार कपिलवस्तु में वसंत और ग्रीष्म दोनो ऋतुएँ व्यतीत करके भगवान् ने वहाँ से प्रस्थान किया। वहाँ से चलकर भगवान्

अंतमा नदी के किनारे अनुपीय-नामक आम्र-कानन में ठहरे। इसी समय अनिरुद्ध, आनंद, भद्रिय, किमिल, भगु और देवदत्त नामक छः कपिलवस्तु के शाक्य-वंशीय राजकुमार भगवान् के पास आए। इन राजकुमारों के साथ उपाली नामक एक नापित भी था। जिस समय ये राजकुमार भगवान् के निकट आ रहे थे, उन्होंने विचारा, हम लोग तो प्रव्रजित होंगे, तब इन सुंदर वस्त्रालंकारों को पहनकर भगवान् के निकट जाने से क्या लाभ ? यह सोचकर उन राजकुमारों ने अपने बहुमूल्य वस्त्र-आभूषण उतार डाले, और उनकी गठरी बाँध उपालि को देकर बोले—"इसे लेकर तुम घर लौट जाओ। यह तुम्हारे जीवन-भर के लिये काफ़ी है। हम लोग प्रव्रजित होंगे।" ऐसा कह गठरी दे राजकुमार आगे बढ़े। उपालि उस समय कुछ नहीं बोला। बाद में उसने सोचा—"जिन वस्त्र-आभूषणों को मल-मूत्र की तरह त्यागकर राजकुमार भगवान् के निकट महामूल्यवान् निर्वाण-धर्म को ग्रहण करने चले गए, उन्हें ग्रहण करके महानीच के समान मैं जीवन-यापन करूँ। छिः ! छिः ! मुझसे यह न होगा। सेवक जाति में जन्म लेने के कारण मैं समाज में वैसे ही नीच जीवन व्यतीत करता हूँ; अब प्रव्रज्या-रूपी महासंपत्ति से विमुख होकर यदि मैं इन मल-मूत्र के समान परित्यक्त वस्त्राभूषणों को संग्रह करूँ, तो मैं अवश्य ही लोक और परलोक, दोनो में नीच होने के कारण महानीच प्राणी हूँ।" ऐसा विचारकर उपाली ने उस बहुमूल्य गठरी को एक वृक्ष पर टाँगकर लिख दिया, जो इसे लेना चाहे, ले ले, इस पर किसी का स्वामित्व नहीं है। और आप

जल्दी-जल्दी चलकर भगवान् के निकट पहुँचा एवं शाक्य-राज-कुमारों के साथ प्रव्रजित होने की भगवान् से प्रार्थना की। समदर्शी भगवान् गौतम बुद्ध ने उपाली नापित को सबसे प्रथम दीक्षा प्रदान की, और राजकुमारों को उसके बाद। बुद्ध-धर्म की मर्यादा है कि धर्म ग्रहण करने में एक मुहूर्त भी जो प्रथम है, वह अपने परवर्ती से ज्येष्ठ होता है, अतः परवर्ती उसे "भंते" कहकर प्रणाम करेगा, और पूर्ववर्ती उसे "आयुष्मान्" कहकर आशीर्वाद देगा। अतएव भगवान् ने उपाली को इसलिये प्रथम दीक्षा दान की, ताकि शाक्य-वंशीय राजकुमार प्रव्रजित होने पर भी सेवक समझकर उसका अपमान न करें। वरन् उसे अपने से ज्येष्ठ समझकर उसका सम्मान करें। ये सातों शिष्य आगे चलकर भगवान् के प्रधान शिष्य हुए। इनमें अनिरुद्ध ने दिव्य चक्षु लाभ किया, उपाली 'विनयपिटक' के आचार्य हुए, आनंद त्रिपिटक के संग्रह करनेवाले हुए। बौद्धशास्त्र तीन भागों में विभक्त है—विनयपिटक, सूत्रपिटक और अभिधम्म-पिटक। इनमें विनयपिटक उस भाग को कहते हैं, जिसमें भिक्षुओं के धर्म-कर्म का विधान लिखा होता है।

वैशाली-गमन और लिच्छिवीराज

राजगृह में वर्षावास समाप्त करके भगवान् बुद्ध लिच्छिवी महाराज के अति आग्रहपूर्वक आवाहन करने पर वैशाली गए। यह वैशाली राजगृह के उत्तर दिशा में गंगा के बाएँ किनारे पर था। वैशाली उस समय लिच्छिवी राज-वंशियों की राजधानी थी। यद्यपि वैशाली सब प्रकार वैभव से पूर्ण थी, तथापि इस साल एक बहुत

बड़े दुर्भिक्ष के पड़ने से प्रजा बहुत ही पीड़ित और व्याकुल हो उठी थी। इस दुर्भिक्ष के कारण मनुष्य-घातक अहिवात रोग फैल गया था, जिसने प्रजा को और भी अत्यंत दुःखित और विकल कर डाला। लिच्छिवी-महाराज अपनी प्रजा की यह दशा देखकर बड़े दुःखित हुए। वह हर समय प्रजा के दुःख-निवारण की चिंता में रहते थे। अपने सब मंत्रियों को एकत्रित करके प्रजा के दुःख-मोचन करने का परामर्श करने लगे। मंत्रियों ने सम्मति दी कि किसी सिद्ध महात्मा पुरुष के आने से यह दुःख दूर हो सकेगा, और अपनी-अपनी समझ के अनुसार भिन्न-भिन्न महात्माओं के नाम बतलाए, जो उस समय देश में प्रसिद्ध थे। वह नाम यह हैं--निर्ग्रंथनाथपुत्र, पूर्णकश्यप, मस्करीगोशाल, अजितकेशकंबल, संजयवेलस्थि, ककुधकात्यायन। किंतु इन महात्माओं में से किसी का भी नाम सबको पसंद नहीं आया। इसी समय किसी ने भगवान् गौतम बुद्ध की चर्चा चलाई। कहा—"भगवान् गौतम बुद्ध के आने से अवश्य ही प्रजा का दुःख दूर होगा, क्योंकि उनसे बढ़कर कोई भी महापुरुष नहीं है, और इस समय वह राजगृह के वेणुवन में अपने भिक्षु-संघ-समेत विहार कर रहे हैं।" यह बात सबको पसंद आई और भगवान् बुद्ध को बुलाने के लिये महाराज ने अपने राज-मंत्री को भेजा। निमंत्रण स्वीकार करने पर जब भगवान् वैशाली जाने लगे, तो महाराज बिंबसार भी भगवान् को बड़ी तैयारी और सम्मान के साथ गंगा के किनारे तक स्वयं पहुँचाने गए। गंगा-पार होते ही लिच्छिवी-महाराज स्वयं आकर भगवान् को बड़ी धूम-धाम के साथ वैशाली ले आए।

भगवान् के चरण पड़ते ही वैशाली में बड़े वेग से वर्षा होने लगी और प्रजा के सब दुःख दूर हो गए। भगवान् ने वहाँ सबको रत्नसूत्र का उपदेश दिया, और एक पक्ष तक वैशाली में विहार करके पुनः राजगृह लौट आए, और वहीं अपना वर्षावास समाप्त किया।

राजगृह में वर्षावास समाप्त करके भगवान् अपने भिक्षु-संघ-समेत वैशाली नगर को ओर पधारे और वैशाली के निकटवर्ती कूटागार में विराजमान हुए। भगवान् के शुभागमन को सुनकर लिच्छिवी-महाराज अपने मंत्री और बंधुओं के साथ आए और भगवान् के दर्शन करके अभिवादन किया। भगवान् ने भी अपने धर्मोपदेश से उन लोगों के हृदय को तृप्त किया। लिच्छिवी-महाराज ने अगले वर्षावास में भगवान् से वैशाली में विहार करने के लिये निवेदन किया। भगवान् ने सहर्ष स्वीकार किया। कुछ दिन भगवान् कूटागार में ही विहार करते रहे।

पिता की बीमारी और कपिलवस्तु-प्रत्यागमन

जिस समय भगवान् कूटागार में विहार कर रहे थे उन्हें मालूम हुआ कि महाराज शुद्धोदन बहुत बीमार हैं, और उनकी प्रबल इच्छा है कि वह भगवान् को अंतिम बार अपनी आँखों से और देख लें। पिता की बीमारी का हाल सुनते ही भगवान् अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ कपिलवस्तु की ओर चल दिए और वहाँ पहुँच-कर न्यंग्रोधाराम में ठहरे। फिर महाराज शुद्धोदन को देखने के लिये कपिलवस्तु के राजमहल में गए। उस समय महाराज शुद्धोदन शोक, ताप और वृद्धावस्था के कारण मूर्च्छित-सी दशा में जीर्ण-शीर्ण

हो रहे थे। परंतु इस अंतिम अवस्था के समय अपने समस्त गुणनिधि और जगत्-पावनकारी पुत्र को देखकर हृदय में अत्यंत गद्गद् एवं पुलकित हुए और उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। महाराज को पीड़ित अवस्था में देखकर भगवान् ने अपने अलौकिक धर्म-उपदेशों से उनके हृदय को शांत किया।

महाराज शुद्धोदन का परलोक-गमन

भगवान् के पहुँचने के तीसरे दिन महाराज शुद्धोदन ने ९७ वर्ष की अवस्था में इस क्षणभंगुर शरीर को छोड़कर परलोक-गमन किया। भगवान् ने स्वयं अपने हाथों पिता की विधिवत् अंत्येष्टि-क्रिया की और शाक्य-परिवार को विविध भाँति से धर्मोपदेश देकर शांति प्रदान की। भगवान् का उपदेश सुनकर उनकी सौतेली माता महाप्रजावती और दूसरी बहुत-सी शाक्य-कुटुम्ब की स्त्रियों ने प्रव्रज्या ग्रहण करने की प्रार्थना की। उस समय भगवान् ने यह कह-कर उन्हें प्रव्रज्या देने से इनकार किया कि "स्त्रियों को गृहस्थी त्याग-कर भिक्षुणी-व्रतपालन करना बहुत कठिन है।" यह सुनकर सब स्त्रियाँ अत्यंत निराश हुईं। भगवान् कपिलवस्तु में रहकर कुछ काल अपने शाक्य-कुटुम्बियों को धर्मोपदेश के द्वारा शांति-प्रदान करते रहे, और बाद में वहाँ से वैशाली चले आए।

भिक्षुणी-संघ की स्थापना

भगवान् के वैशाली आने के कुछ ही समय बाद महाप्रजावती गौतमी शाक्य-कुटुम्ब की पाँच सौ स्त्रियों को साथ लेकर प्रव्रज्या

ग्रहण करने की इच्छा से कपिलवस्तु से पैदल चलकर मार्ग के कष्ट उठाती हुई वैशाली में आईं। किंतु भगवान् के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिये प्रार्थना करने की हिम्मत इस कारण न पड़ी कि कपिलवस्तु में वह प्रव्रज्या देने से इनकार कर चुके थे। इस कारण वे सब मार्ग में ही एक जगह उदास-भाव से बैठी चिंता कर रही थीं। इतने में अकस्मात् बुद्ध-शिष्य आनंद से भेंट हो गई। आनंद ने उनकी दुःख-कहानी सुनकर भगवान् के पास जाकर सुनाई, और निवेदन किया—"हे भगवन्! आप प्राणि-मात्र के कल्याण के लिये अवतीर्ण हुए हैं, तो क्या ये शाक्य-स्त्रियाँ उन प्राणियों से बाहर हैं, जिनको आप अपनी दया से वंचित करते हैं?" इस प्रकार आनंद के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर भगवान् ने कहा—"मैं उन्हें अपनी दया से वंचित नहीं करता हूँ, किंतु भिक्षु-व्रत अत्यंत कठिन होने के कारण उन लोगों से पालन हो सकेगा या नहीं, मैं इस विचार में था। परंतु तुम्हारा अनुरोध और उन लोगों की इतनी लगन और उत्साह देखकर आदेश करता हूँ कि यदि महाप्रजावती गौतमी एवं अन्य शाक्य-महिलाएँ आठ अनुलंघनीय कठोर नियमों का पालन करें, तो उन लोगों को दीक्षित करके उनका एक भिक्षुणी-संघ बना दिया जाय।" आनंद ने भगवान् के बताए आठो कठोर नियमों को महाप्रजावती गौतमी को सुनाया। गौतमी ने उन्हें सादर स्वीकार किया। तब भगवान् ने शाक्य-स्त्रियों को बुलवाया और उनको प्रव्रज्या तथा उपसंपदा देकर भिक्षुणी-संघ का निर्माण किया।

अहा ! पवित्रता का कैसा आश्चर्यमय और सर्वोत्तम आदर्श है कि भगवान् ने संसार के कोटि-कोटि मनुष्यों के पाप-मोचन के लिये जिस वंश में वह जन्मे थे, समस्त वंश को संन्यासी बना दिया। पहले वह राज-पाट त्यागकर स्वयं संन्यासी हुए, और घोर तप करके बुद्धत्व लाभ किया। फिर उन्होंने अपने भ्राता और पुत्र को प्रव्रजित किया। तदनंतर जितने शाक्य-वंशीय नवयुवक थे, क्रम-क्रम से सब को अपने भिक्षु-दल में सम्मिलित किया। महाराज शुद्धोदन के जीवन तक किसी प्रकार शाक्य-राज्य का कीर्ति-स्तंभ खड़ा रहा, किंतु उनके आँख मूंदते ही शाक्य-राज्य का स्तंभ गिरकर छिन्न-भिन्न हो गया। अब केवल शाक्य-वंश की महिलाएँ शेष थीं, सो उन्हें भी भगवान् ने भिक्षुणी बनाकर भिक्षुणी-संघ स्थापित कर दिया। त्याग और लोक-सेवा का इतना उत्तम उदाहरण संसार के इतिहास में नहीं है। भगवान् ने परिमित शाक्य-राज्य को एक अपरिमित और अमिट विश्व-व्यापी धर्म-राज्य में परिवर्तित कर दिया और स्वयं कपिलवस्तु के राजा न होकर त्रिलोक-पूज्य धर्मराज और धर्म-गुरु हुए। धन्य है भगवान् की अपार महिमा और अकथनीय लीला! इस प्रकार भिक्षुणी-संघ स्थापित कर भगवान् ने महाप्रजावती गौतमी और संघ को संबोधन करते हुए अपने धर्म का सार संक्षेप में इस प्रकार वर्णन किया—

"हे गौतमी ! जिस धर्म से राग, संयोग, संग्रह, इच्छाओं की वृद्धि, असंतोष, नर-नारियों की भीड़, उद्योगहीनता और दुर्भरता (कठिनाई) और प्रवृत्ति हो, वह तथागत का धर्म वा बुद्ध-शास्त्र कदापि

नहीं है; विरुद्ध इसके जिस धर्म से विराग, वियोग, त्याग, इच्छा-शून्यता, संतोप, एकांत, उद्योगशीलता और सुभरता की ओर प्रवृत्ति हो, उसे ही जानना कि यह धर्म है, यही विनय है, यही बुद्ध का अनुशासन है।"

महारानी क्षेमा का प्रव्रज्या-ग्रहण

इस वर्ष भगवान् वैशाली में अपना वर्षावास समाप्त करके राजगृह के वेणुवन में रहकर निकटवर्ती स्थानों में धर्मोपदेश करते रहे। महाराज बिंबसार की राजमहिषी क्षेमा को, जो साकल्य देश के राजा की बड़ी रूपवती और सद्गुणवती लड़की थीं, भगवान् का अलौकिक उपदेश सुनकर संसार से वैराग्य उत्पन्न हो गया, और महाराज बिंबसार की आज्ञा लेकर भगवान् से उपसंपदा ग्रहण कर भिक्षुणी-संघ में सम्मिलित हुईं। इस घटना का ऐसा प्रभाव पड़ा कि इस साल और बहुत-सी स्त्रियाँ उपसंपदा ग्रहण-कर भिक्षुणी-संघ में सम्मिलित हुईं।

भगवान् बुद्ध के उपदेश में इस प्रकार की मोहिनी शक्ति थी कि यदि कोई एक बार भी उनके मुख से निर्वाण-तत्त्व को सुनता, तो फिर उसे संसार के विषय अच्छे नहीं लगते, और वह गृह-त्यागी हो जाता। अब महाराज बिंबसार की स्त्री महारानी क्षेमा तथा अन्यान्य स्त्रियों के भिक्षुणी होजाने से राजगृह में लोग अत्यंत शंकित हुए और इस बात की चर्चा फैली कि कहीं भगवान् का उपदेश सुनकर सब स्त्रियाँ साधुनी न हो जायँ, तो संसार कैसे क़ायम रहेगा।

६—ऋद्धि अथवा दिव्य-शक्ति-प्रदर्शन

अनाथपिंडक श्रेष्ठी को दीक्षा

जिस समय भगवान् राजगृह के सीतवन-विहार में वास करते थे, श्रावस्ती (वलरामपुर, ज़िला गोंडा) का रहनेवाला अनाथपिंडक नामक एक धनवान् श्रेष्ठी राजगृह आया और अपने साले के यहाँ ठहरा, जो राजगृह का एक ऐश्वर्यवान् श्रेष्ठी था। पहले जव अनाथ-पिंडक आता था, तो उसका साला उसकी वड़ी आवभगत और खातिरदारी करता था, किंतु इस वार उसने वैसा नहीं किया। यह देखकर अनाथपिंडक अपने साले के पास गया और उससे पूछा—"इस वार तो तुम ऐसे व्यस्त हो कि मुझसे वात करने का भी अवकाश नहीं, क्या तुमने मगधराज को निमंत्रित किया है, जो ऐसी तैयारी कर रहे हो?" उसने उत्तर दिया—"मेरे यहाँ कल भगवान् वुद्ध अपने संघ-सहित भिक्षा के लिये पधारेंगे। इसीलिये मैं वहुत व्यस्त हूँ, और आपकी यथेष्ट अभ्यर्थना नहीं कर सका।"

यह वात सुनकर अनाथपिंडक को भी भगवान् के दर्शनों की अभिलाषा हुई। अनाथपिंडक ने भगवान् की महिमा और उनके अलौकिक कर्मों की वहुत प्रशंसा सुनी थी, किंतु इन सव वातों पर उसे पूर्ण विश्वास न था, अतः वह अपने मन में तर्क-वितर्क करने लगा कि यदि भगवान् उसके 'सुदत्त' नाम को विना वताए

जान जायँ, तो वह समझेगा कि भगवान् सर्वज्ञ हैं। अनाथपिंडक का असली नाम सुदत्त था, परंतु बाल्यावस्था से ही दानी और दीन, दुखी एवं अनाथों का पालक होने के कारण उसका नाम 'अनाथपिंडक' पड़ गया था, और इसी नाम से वह ऐसा प्रसिद्ध हो गया था कि उसका पहला नाम किसी को मालूम ही न था।

दूसरे दिन सवेरे जब भगवान् पात्र ले चीवर धारण किए अपने संघ के सहित पधारे, तो राजगृह के श्रेष्ठी ने भगवान् की भली भाँति पूजा और आदर-सत्कार किया। भोजन आदि से निवृत्त होकर जब भगवान् सभास्थल में विराजमान होकर धर्मोपदेश करने लगे, तो अनाथपिंडक को अपने से दूर श्रेष्ठि-समाज के बीच में बैठे देखकर भगवान् ने कहा—"हे सुदत्त! तुम हमारे निकट आकर धर्म-श्रवण करो। तुम अतिथि-रूप में आए हो।" यह सुनकर अनाथपिंडक अपनी मूर्खता पर बहुत लज्जित हुआ, और भगवान् को सर्वज्ञ सुगत समझकर भक्तिपूर्वक उनके चरणों में गिर पड़ा, और उन का शिष्य हो गया। धर्मोपदेश समाप्त करके जब भगवान् वहाँ से चलने को हुए, तो अनाथपिंडक ने उन के चरणों में गिरकर प्रार्थना की कि "भगवान् अनुग्रह करके आगामी वर्षावास श्रावस्ती में व्यतीत करें।" भगवान् ने इस विनय को स्वीकार कर लिया।

श्रावस्ती का जेतवन-विहार

भगवान् श्रावस्ती में वर्षावास करेंगे, यह आश्वासन पाकर श्रेष्ठी अनाथपिंडक बहुत प्रसन्न हुआ। वह राजगृह से श्रावस्ती जाकर भगवान् के संघ-सहित रहने योग्य विहार निर्माण करने

की चिंता करने लगा। उसने श्रावस्ती-नगरी के निकट जेत राजकुमार के उद्यान को पसंद करके राजकुमार से उसे लेने का प्रस्ताव किया। राजकुमार ने कहा—"हे श्रेष्ठी! यदि तुम उस उद्यान की भूमि को एक दूसरे से सटे हुए स्वर्णमुद्रा बिछाकर ढक दो, तो मैं अपना उद्यान तुम्हें दे सकता हूँ।" अनाथपिंडक ने इसे स्वीकार कर लिया, और अपने परिचारकों द्वारा १८ करोड़ स्वर्णमुद्रा मँगाकर उद्यान की भूमि पर एक दूसरे से सटाकर बिछवा दिए, फिर भी उद्यान का कुछ भाग खाली रह गया। तब उसने और मुद्रा मँगवाए। यह देखकर जेत राजकुमार बड़े विस्मित हुए। वह सोचने लगे, यह काम अत्यंत महत्त्वपूर्ण होगा, तभी अनाथपिंडक उसके लिये मिट्टी की तरह स्वर्णमुद्रा बहा रहा है। उन्होंने कहा—"हे श्रेष्ठिन्! बस करो, बस करो। शेष भूमि को मैंने तुम्हें यों ही दे दिया, जितनी भूमि तुम्हें विहार के लिये दरकार हो, ले सकते हो।" अनाथपिंडक ने इसे स्वीकार करते हुए कहा—"अच्छा, यदि ऐसा है, तो इस विहार का नाम 'जेतवन-विहार' होगा।" इस प्रकार भूमि लाभकर श्रेष्ठीप्रवर अनाथपिंडक ने विहार-निर्माण का कार्य आरंभ किया, और अत्यंत रमणीक विहार निर्माण कराकर उसका नाम "जेतवन-विहार" रक्खा। भगवान् के पधारने पर उसने वह विहार भिक्षु-संघ के लिये दान कर दिया।

श्रावस्ती-गमन और वर्षावास

इस प्रकार विहार तैयार हो जाने पर अनाथपिंडक ने भगवान् के स्वागत के लिये श्रावस्ती से राजगृह तक चार-चार कोस पर धर्म-

शालाएँ बनवाईं और प्याऊ बिठाए। इस तैयारी के बाद अनाथ-पिंडक भगवान् को लाने के लिये राजगृह आया। उस समय भगवान् वैशाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे। अतः कई महीने भगवान् के साथ रहकर आषाढ़ मास के अंत में वह संघ-समेत भगवान् को अपने साथ श्रावस्ती में ले आया और उसी जेतवन-विहार में भगवान् को ठहराया। श्रावस्ती* आकर जब भगवान् अपने संघ-सहित अनाथपिंडक श्रेष्ठी के घर भोजन करने गए, तो श्रेष्ठीप्रवर ने वह अत्यंत रमणीय विहार भिक्षु-संघ के लिये दान कर दिया। यह विहार भगवान् को इतना पसंद आया कि भगवान् ने इसमें २० वर्षावास किए। भगवान् जब तक इस विहार में रहे, तब तक स्वयं अनाथपिंडक तथा उसकी महासुभद्रा और चूलसुभद्रा नामक दोनो कन्याएं भगवान् की सेवा करती रहीं।

---

* बौद्ध-काल में श्रावस्ती एक अत्यंत समृद्धिशाली नगरी थी, जो बाद में ध्वंस कर दी गई। युक्तप्रांत के गोंडा-ज़िले में बलरामपुर-रियासत के पास यह नगरी थी। अब इस स्थान पर घोर वन है। सरकारी पुरातत्त्व-विभाग की ओर से यह जंगल सुरक्षित कर दिया गया है। समयांतर में यहाँ खोदाई का काम आरंभ होगा। जिस नगरी के विहार में २० वर्ष तक भिक्षु-संघ-सहित वर्षा-वास करके भगवान् ने धर्म-प्रचार किया, उस नगरी की श्री-समृद्धि और वहाँ के निवासियों के गौरव को क्या कहना है। मथुरा और अयोध्या-वासी हिंदू जिस प्रकार आज दिन अपने को अन्य स्थान-वासियों से श्रेष्ठ समझकर गर्व करते और अपनी जातियों के नामों के साथ माथुर,

भिक्षुओं को ऋद्धि-प्रदर्शन का निषेध

जिस समय भगवान् गौतम बुद्ध धर्म-प्रचार कर रहे थे, उस समय कई और आचार्य भी अपने-अपने धर्मों का प्रचार करते थे। इनके नाम बौद्ध-ग्रंथों में इस प्रकार लिखे हुए हैं—पूर्णकाश्यप, मस्करीगोशाल, निर्ग्रंथनाथपुत्र, संजय वेलिट्ठपुत्र, अजितकेश-कम्बल, ककुध कात्यायन। ये सभी धर्म-प्रचारक बड़े विद्वान् और ज्ञाता पुरुष थे, और इनके अनेकों शिष्य थे, किंतु जहाँ भगवान् गौतम बुद्ध अथवा उनके शिष्य पहुँच जाते थे, वहाँ लोग इनकी बात भी नहीं सुनते थे। इस प्रकार भगवान् की महिमा देखकर ये लोग अपने मन में बहुत खिन्न होते थे, और बारंबार अवमानित होने से ये लोग भगवान् और उनके शिष्यों से द्वेष रखकर उनकी निंदा करते थे। ये लोग अपने को तैर्थिक (तीर्थंकर) कहते थे। इनके शिष्यगण अपने गुरुओं की ऋद्धि की बड़ी तारीफ़ें करके जनता को यह कहकर बहकाते थे कि "बौद्ध-शिष्यों में किसी

मथुरिया, अयोध्यावासी आदि अल्लें लगाते हैं, उसी तरह प्राचीन काल में श्रावस्ती-निवासी अपने को अन्य स्थानवासियों से श्रेष्ठ समझकर गर्व करते और अपनी जातियों के नामों के साथ 'श्रावस्तीय' अल्ल लगाते थे। वर्तमान-कालिक अनेक हिंदू-जातियों की अल्लों का "श्रीवास्तव" या "श्रीवास्तव्य" शब्द वस्तुतः "श्रावस्तीय"-शब्द का अपभ्रंश मात्र है। "श्रीवास्तव" शब्द का शुद्ध सार्थक रूप "श्रावस्तीय" है।

प्रकार की ऋद्धि-शक्ति नहीं है।" इस प्रकार बौद्ध-भिक्षुओं की निंदा होने से भगवान् के शिष्य राजगृह के एक श्रेष्ठी ने एक अति उत्तम चंदन का पिंडिपात्र (भिक्षुओं के भोजन माँगने का बर्तन) बनवाकर उसे अपने ऋद्धि-बल से सात ताड़ ऊँचे आकाश में बिना किसी अवलंब के स्थिर कर दिया, और यह घोषणा कर दी कि "जो साधु ऋद्धि-संपन्न हो, वह इस पात्र को ले सकता है।" तीर्थंकर के अनुगामी साधुओं ने इस अति उत्तम पिंडिपात्र को लेने के लिये बड़े-बड़े बाँस और बल्ली आदि गाड़े और कई प्रकार की चेष्टाएँ कीं, परंतु सब असफल रहे। जब इस बात को भगवान् के शिष्य मौद्गलायन और पिंडोल भरद्वाज ने सुना, तो मौद्गलायन के कहने से पिंडोल भरद्वाज ने अपने अलौकिक ऋद्धि-बल से, बिना किसी बाँस-बल्ली के सहारे, उतने ऊँचे आकाश में उड़कर पिंडिपात्र को ले राजगृह के तीन चक्कर लगाए। इस दृश्य को देखकर तीर्थंकर-पक्षीय लोग बड़े लज्जित हुए, और भगवान् बुद्ध एवं उनके शिष्यों की महिमा की चर्चा चारो ओर वेग से होने लगी, जिसके प्रभाव से लोग अनायास ही बौद्ध-धर्म में दीक्षित होने लगे। इस समाचार को सुनकर भगवान् ने अपने शिष्यों को ऋद्धि दिखलाना वर्जित करके सदा के लिये यह नियम बना दिया कि "बौद्ध-भिक्षु ऋद्धि दिखलाकर लोगों पर अपना प्रभाव मत डालें। उन्हें चाहिए कि वह अपने धर्म और अपने आचरणों की पवित्रता के द्वारा ही लोगों को अपनी ओर आकर्षित करें।" इस प्रकार आदेश करके भगवान् ने उस चंदन के पिंडिपात्र को

तोड़वाकर भिक्षुओं को लकड़ी का वर्तन रखने का निषेध करके आज्ञा दी कि "भिक्षुओं को लोहे और मिट्टी का ही वर्तन रखना चाहिए।"

तीर्थंकरों का द्वेष और चिंचा की करतूत

इस घटना से तीर्थंकरों में बड़ी उत्तेजना फैल गई, और वह लोग खुल्लमखुल्ला भगवान् की निंदा करने लगे। इधर जब से भगवान् श्रावस्ती के जेतवनविहार में विराजमान होकर धर्मोपदेश करने लगे, तो सहस्रों नर-नारी प्रतिदिन धर्मामृत पान करने लगे। इस प्रकार भगवान् के पापमोचन और पतित-पावन धर्म के बढ़ते हुए अति वेगशाली प्रवाह को देखकर तीर्थंकरों का डाह और भी बढ़ गया। इसका कारण यह था कि भगवान् के इस अभूतपूर्व लोकोत्तर धर्म के प्रचार से उन लोगों की पूजा-प्रतिष्ठा बहुत घट गई थी, इसलिये वे भगवान् से निरंतर डाह और ईर्ष्या रखते थे। पहले तो ये लोग भगवान् के विरुद्ध यह कहकर कि "वह कुछ नहीं जानते, उनमें कुछ ऋद्धिबल नहीं है, वह तप-भीरु हैं।" निंदा करके जनता को बहकाते रहे। परंतु इससे जब भगवान् की महिमा में कोई कमी नहीं हुई, तो अब उन्होंने एक और नया षड्यंत्र रचा। उन लोगों ने 'चिंचा' नाम की एक तरुणी स्त्री को भगवान् के पास धर्मोपदेश सुनने के लिये भेजा। वह कुछ दिन तक बराबर भगवान् के पास धर्मोपदेश सुनने जाती रही। कई महीने बाद एक दिन उन लोगों ने चिंचा को धन का प्रलोभन दे यह सिखाकर भेजा कि तुम एक लकड़ी का नक़ली पेट अपने पेट पर बाँधकर जहाँ गौतम अपना धर्मोपदेश करते हों, उस भरी सभा में जाकर कहो कि "हे गौतम !

तुम वड़े चरित्र-हीन हो, तुम्हारे अत्याचार से ही हमारे यह गर्भ रह गया है, अव हम कहाँ जायँ ? हमारी रक्षा करो।" लोभ में आकर उस दुष्टा ने उनकी वात मान ली, और ऐसा ही किया। एक दिन जव भगवान् कोशलराज-प्रमुख जनसाधारण की विराट् सभा में अपना धर्मोपदेश कर रहे थे, उसी समय यह पापिनी चिंचा गर्भिणी का वेष वनाकर वहाँ पहुँची और पूर्वोक्त षड्यंत्र के अनुसार कहने लगी—"हे गौतम ! तुम वड़े चरित्र-हीन हो, तुम्हारे अत्याचार से ही हमारे यह गर्भ रह गया है, अव हम कहाँ जायँ ? हमारी रक्षा करो।" भगवान् को चिंचा की वात से उद्वेग नहीं हुआ। उन्होंने कहा—"हे चिंचा ! तू क्यों झूठ कह रही है ? सत्य का परित्याग करके मिथ्या वोलनेवाला, जिसे परलोक का भय नहीं है, कौन-सा पाप नहीं कर सकता।" इतना कहकर भगवान् शांत सौम्य भाव से मौन हो गए। कुछ ही क्षण के भीतर हठात् चिंचा का वह काठ का नक़ली पेट, जो उसने बाँध रक्खा था, खिसककर ज़मीन में गिर पड़ा, और उसकी झूठी चालाकी सबके सामने प्रकट हो गई, तथा तीर्थंकरों का भी भेद खुल गया। चिंचा वहुत पछताई और लज्जित हुई, उधर तीर्थंकर लोग भी अपनी करनी पर अति लज्जित होकर मर्माहत हुए। इस घटना से भगवान् बुद्ध की महिमा प्रतिष्ठा और भी अधिक वढ़ गई।

भगवान् का ऋद्धि-प्रदर्शन

जिस समय भगवान् अपनी शिष्य-मंडली को छोड़कर स्वयं एकांत-सेवन के लिये मंकुल-पर्वत पर जाकर वर्षावास किया और वर्षावास समाप्त करके पुनः राजगृह के वेणुवन में पधारे, तो महाराज

बिंबसार भगवान् के दर्शनों के लिये आए, और अभिवादन करके प्रार्थना की—"हे भगवन्! आपने अपने शिष्यों को ऋद्धि-प्रदर्शन का निषेध कर दिया है, किंतु पूर्णकाश्यप और मस्करीगोशाल आदि तीर्थंकर लोग, जो आपसे प्रतिस्पर्द्धा करते हैं; आपकी अनेक प्रकार से निंदा करके अपकीर्ति फैलाते हैं, इसलिये हे भगवन्! आप कृपा करके एक बार अपने ऋद्धिबल को दिखाकर तीर्थंकरों के फैलाए हुए भ्रम और मोह को दूर कीजिए।" भगवान् ने राजा की इस प्रार्थना पर वचन दिया कि "यदि आपका इतना आग्रह है, तो मैं अगले आषाढ़ की पूर्णिमा को उत्तर-कोशल में ऋद्धिबल का प्रदर्शन करूँगा।" यह खबर सुनकर तीर्थंकर भयभीत हुए, किंतु उन्होंने भगवान् का पीछा नहीं छोड़ा।

भगवान् ने कहा था, मैं श्रावस्ती में आम के पेड़ के नीचे ऋद्धि-प्रदर्शन करूँगा, यह मालूम करके तीर्थंकरों ने अपने भक्तों से कहकर एक योजन के भीतर के सारे आम्रवृक्ष उखड़वा डाले। आषाढ़ पूर्णिमा को भिक्षापात्र लेकर भगवान् अपने प्रमुख शिष्यों के साथ श्रावस्ती नगरी में भिक्षा के लिये गए। लौटते समय जब वह नगर के द्वार पर पहुँचे, तो राजा के उद्यानपाल ने झाल की आड़ में लगे हुए एक आम को तोड़कर उसका मधुर रस निचोड़कर भगवान् को अर्पण किया। भगवान् ने रस पान करके वाटिका-रक्षक से गुठली भूमि में गाड़ देने को कहा। भगवान् ने उस पर हाथ धोया। जल पड़ते ही उससे अंकुर निकलकर देखते-देखते पचास हाथ का लंबा-चौड़ा-ऊँचा वृक्ष हो गया, और उसी समय पके हुए सुंदर आमों से

लद् गया। अतः भगवान् के पीछे आनेवाली भिक्षुमंडली और तीर्थंकरों ने भी फलों को खाया। इस चमत्कार से तीर्थंकर बड़े लज्जित हुए। राजा प्रसेनजित ने यह समाचार पाकर उस आम के चारो ओर पहरा बिठा दिया।

भगवान् की इच्छा देखकर देवराज इंद्र ने आकाश में एक रत्नमय चबूतरा बनवाया जिसका एक सिरा पूर्व में और दूसरा पश्चिम में था। उस पर छत्तीस योजन की एक परिषद् बैठी। भगवान् ने इस परिषद् में यमक-प्रतिहार्य किया। त्रिपिटक में लिखा है—उस समय भगवान् के ऊपर के शरीर से अग्निपुंज निकलता था, नीचे के शरीर से जलधारा प्रवाहित थी; आगे के शरीर से अग्निपुंज निकलता था, पीछे के शरीर से जलधारा प्रवाहित थी; दाहिनी आँख से आग निकलती थी, बाईं से जलधारा; दाहिने कान से आग निकलती थी, बाएँ से जलधारा; दाहिने नासिका-रंध्र से अग्नि, बाएँ से जलधारा; दाहिने कंधे से अग्नि, बाएँ से जलधारा; दाहिने हाथ से अग्नि, बाएँ से जलधारा; दाहिने पैर से अग्नि, बाएँ से जलधारा; अँगुलियों से अग्नि, अँगुलियों के बीच से जलधारा; एक-एक रोम से अग्नि और एक-एक रोम से जलधारा प्रवाहित हो रही थी। भगवान् ने इस यमक प्रतिहार्य को तेजःकृत्स्न और आपःकृत्स्न समाधि-ध्यान में अवस्थित होकर किया। भगवान् के इस अद्भुत योग-चमत्कार को देखकर तीर्थंकरगण लज्जित होकर भाग गए।

त्रयस्त्रिंश-लोक में गमन और माता को धर्मोपदेश

इस प्रकार विभूति-प्रदर्शन के बाद महायोगेश्वर भगवान् बुद्ध ने

अपना विराट् रूप दिखलाया। अर्थात् अपना दाहिना चरण युगंधर-पर्वत पर और बायाँ चरण सुमेरु-पर्वत पर रखकर तीसरे पग से त्रयस्त्रिंश-देवलोक में जा पहुँचे। इस प्रकार अड़सठ लाख योजन स्थान तीन ही पग में पार कर गए। वहाँ देवराज इंद्र ने उनका स्वागत किया, और भगवान् ने वहाँ पांडुकंबल शिला पर वर्षावास करके अपनी माता मायादेवी तथा देवताओं को अभिधर्मपिटक का उपदेश किया। भगवान् के जन्म के सातवें दिन उनकी माता मायादेवी ने शरीर त्यागकर तूषित-नामक देवलोक में जन्म ग्रहण किया था; जिस समय भगवान् त्रयत्रिंश-देवलोक में पहुँचे, तो उनकी माता तूषित-लोक से देव-विमान पर बैठकर धर्मोपदेश सुनने के लिये त्रयत्रिंश-लोक में आईं। इस प्रकार तीन मास तक अभि-धर्म श्रवण करके वह स्रोतापन्न-फल* में प्रतिष्ठित हुई।

भगवान् के देवलोक में चले जाने से यहाँ सब चिंतित एवं

---

* स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हंत—ये चार भिक्षुओं की श्रेणियाँ हैं। बुद्ध-प्रदर्शित आर्य-अष्टांगिक धर्म में पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाने से स्रोतापन्न होता है, अर्थात् यह समझा जाता है कि वह धर्म-स्रोत के प्रवाह में पड़ गया है, सात जन्म तक निर्वाण अवश्य प्राप्त कर लेगा। सकृदागामी को केवल एक बार निर्वाण लाभ के लिये संसार में और आना पड़ता है। अनागामी वह अवस्था है, जिसे लाभ कर लेने पर उसी शरीर से निर्वाण प्राप्त हो जाता है। अर्हंत सर्वोपरि अवस्था है। अर्हंत-अवस्था लाभ करके भिक्षु सत्यकाम और सत्यसंकल्प हो जाता है। अर्हंत-पुरुष जीवनमुक्त होते हैं, चाहे वह संसार में विचरण करें, चाहे देवलोक में, और जब चाहे तब निर्वाण में चले जायँ।

दुखित होने लगे। किंतु भिक्षुसंघ में जो अर्हत् थे, वे इस रहस्य को जानते थे। उन लोगों ने सबको धैर्य देकर समझाया कि "भगवान् त्रयत्रिंश-देवलोक में देवताओं और अपनी माता को धर्म सुनाने गए हैं, वर्षा समाप्त होने पर फिर आवेंगे।" अतः वर्षा समाप्त होने पर सारिपुत्र और मौद्गलायन भगवान् को लेने के लिये त्रयत्रिंश-लोक गए और अभिवादन-पूर्वक भगवान् से मनुष्य-लोक में रहने की प्रार्थना की। भगवान् ने इस विनती को स्वीकार किया और आश्विन शुक्ला पूर्णिमा को संकाश्य (वसंतपुर, ज़िला फ़र्रुख़ाबाद) नगर के दक्षिण द्वार के समीप देवलोक से उतरे, तथा संकाश्य से श्रावस्ती के जेतवन विहार में पधारे।

शिशुमार-गिरि का वर्षा-वास

श्रावस्ती से भगवान् शिशुमार-गिरि पर पधारे। वहाँ एक ब्राह्मण दंपति रहते थे, जो नकुल-पिता और नकुल-माता के नाम से प्रसिद्ध थे। यह दोनो भगवान् को देखकर उन्हें पकड़कर अति विलाप करने लगे, और भगवान् को अपना ज्येष्ठ पुत्र कहकर बड़े प्रेम से अपने घर लाए तथा उनकी अनेक प्रकार से सेवा की। जब भगवान् के आगमन का समाचार शिशुमार के राजा को मालूम हुआ, तो उसने भी भगवान् को अपने यहाँ पदार्पण करने के लिये निमंत्रित किया। भगवान् निमंत्रण पाकर राजा के यहाँ गए। भगवान् के पधारने के दिन ही राजा का अपने उस गृह में प्रवेश करने का शुभ मुहूर्त था, जिसे उसने अपने यहाँ के एक वास्तु-विद्या-विशारद बढ़ई से बनवाया था। इस बढ़ई का नाम वर्धकी था, इसने ऐसा विचित्र एवं सुंदर काष्ठ का

भवन निर्माण किया था, जिसकी शोभा का वर्णन सुनकर दूर दूर से लोग देखने के लिये आते थे। इस नवीन गृह में राजा ने पहले-पहल भगवान् बुद्ध की पधरानी की। भगवान् जब इस राज-भवन के भीतर गए, तो रानियों ने संतान होने की अभिलाषा से भगवान् के आने के मार्ग में सब जगह अपने-अपने कपड़े इसलिये बिछा दिए कि भगवान् उन वस्त्रों पर चरण रखकर आवेंगे, और उनके प्रसाद से उन लोगों को इच्छित संतान लाभ होगी। परंतु भगवान् उन वस्त्रों पर चरण न रख उन्हें हटवाकर भीतर गए, और राजा और रानियों ने विविध प्रकार के भोजनादि से उनका सेवा-सत्कार किया। भोजनादि से निवृत्त हो भगवान् ने अपने धर्म-उपदेश को पान कराकर राज-परिवार को तृप्त किया, और राजा के अत्यंत अनुरोध से भगवान् इस वर्ष अपनी शिष्य-मंडली-समेत वहीं वर्षा-वास करके लोगों को धर्मोपदेश करते रहे। समयांतर में भगवान् के प्रसाद से रानियों को उत्तम संतान लाभ हुई। इस प्रकार इस वर्ष शिशुमार-गिरि पर वर्षा-वास करके भगवान् फिर श्रावस्ती चले आए।

७—कौशांबी-वास और कागंधी के कुकृत्य

कौशांबी के तीन श्रेष्ठी

राजा उदयन के राज्य-काल में कौशांबी नगरी में कुक्कुट, गोशित और पावरिक नामक तीन अत्यंत धार्मिक, दानवीर, उदार-चरित और साधु-सेवी वणिक् रहते थे। ये तीनो श्रेष्ठी साधु-महात्माओं की बड़ी सेवा और भक्ति किया करते थे, इसी कारण इन लोगों के यहाँ बहुत-से साधु-महात्मा लोग वर्षा व्यतीत किया करते थे। एक समय कुछ साधु-महात्मा लोग भगवान् बुद्ध का सुयश सुनकर उनके दर्शन के लिये श्रावस्ती जाना चाहते थे, किंतु वर्षा आ जाने के कारण श्रावस्ती न जा सके और कौशांबी में इन्हीं वणिकों के यहाँ ठहरे। इन महात्माओं ने उक्त तीनो श्रेष्ठियों से भगवान् के सुयश का वर्णन किया, जिसे सुनकर इन श्रेष्ठियों को भी भगवान् के दर्शन की अत्यंत प्रबल उत्कंठा हुई, और उन लोगों ने आपस में यह परामर्श किया कि किसी प्रकार भगवान् को अब की वर्षा में यहाँ लाना चाहिए। भगवान् के रहने के लिये कौशांबी में इन तीनो श्रेष्ठियों ने अपने-अपने नाम से कुक्कुटाराम, गोशिताराम और पावरिकाराम् नामक तीन आश्रम बनवाए और अनेक प्रकार की तैयारियाँ करने के बाद खाने-पीने की वस्तुएँ छकड़ों में लादकर श्रावस्ती की ओर चले।

मागंधिय को उपदेश

इधर भगवान् बुद्ध ने श्रावस्ती से कुरु पांचाल देश की ओर गमन किया। मार्ग में एक दिन वे कर्मासदंभ-नामक ग्राम में पहुँचे। उस ग्राम में मागंधिय-नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहता था। उसकी एक अति रूपवती और गुणवती कन्या थी, जिसका नाम मागंधी था। ब्राह्मण सदा इस चिंता में रहा करता था कि कोई रूप-गुण-संपन्न योग्य ब्राह्मण या क्षत्रिय-कुमार मिले, तो उसके साथ वह अपनी कन्या का विवाह कर दे। इस ब्राह्मण ने भगवान् बुद्ध को अपने कर्मासदंभ ग्राम में प्रातःकाल आते देखा। भगवान् के दीप्तमान, परम सुंदर, सौम्य रूप को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ, और उन्हें स्नातक समझकर अभिवादन किया, तथा ग्राम के बाहर एक वाटिका में ठहराकर मन में यह चिंता करता हुआ कि "मागंधी के योग्य यह वर अति सुंदर है" जल्दी से घर पहुँचा, और अपनी स्त्री से बोला—"आज एक अति सुंदर स्नातक गाँव में आया है, जो मागंधी के लिये उपयुक्त वर है, भगवान् ने घर-बैठे ही ऐसा योग्य वर भेज दिया। तुम और मागंधी भी चलकर देख लो। यदि तुम लोगों को पसंद आ जाय, तो आज ही कुशोदक ले कन्या को उसके अर्पण कर दें, विलंब करने की क्या आवश्यकता है।" यह बात सुनकर उसकी स्त्री बहुत प्रसन्न हुई, और मागंधी को साथ ले, ब्राह्मण के संग वहाँ पहुँची, जहाँ वह भगवान् बुद्ध को ठहरा गया था। परंतु भगवान् वहाँ नहीं मिले, क्योंकि वह उस स्थान से कुछ आगे जाकर बैठ गए थे। इन तीनो ने उस स्थान पर

भगवान् को नहीं देखा, किंतु उनके पद-चिह्न देखे। ब्राह्मणी सामुद्रिक विद्या को थोड़ा-सा जानती थी, उसने भगवान् के पद-चिह्न देखकर ब्राह्मण से कहा कि "यह चरण-चिह्न तो चक्रवर्ती राजा के लक्षणों से युक्त हैं, और तुम तो स्नातक बतलाते थे। भला हमारे भाग्य में ऐसा दामाद मिलना कहाँ बदा है? हमने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है, जिससे हमें ऐसा दामाद मिले।" वे आपस में इसी प्रकार बातचीत करते और पद-चिह्नों को देखते हुए वहाँ पहुँचे, जहाँ भगवान् बैठे थे। भगवान् को देखकर तीनो अति हर्षित हुए। ब्राह्मग बोला—"हे भगवन्! मैं अपनी इस कन्या को आपके अर्पण करता हूँ, आप इसे स्वीकार कीजिए। क्योंकि मुझे आप-ऐसा योग्य वर फिर कहाँ मिलेगा। जो लोग केवल धन की योग्यता देखकर कन्या ब्याहते हैं, वह मूर्ख हैं। मेरे विचार में ज्ञान, विवेक, संयम आदि सद्गुण ही की योग्यता देखनी चाहिए। इसलिये हे भगवन्! आप मेरी इस कन्या का पाणि-ग्रहण कीजिए।" ब्राह्मण की यह बात सुनकर भगवान् मुसकिराकर बोले—"हे ब्राह्मण! मार की तृष्णा, अरति और रति नाम की तीनो परम सुंदरी दिव्य कन्याओं को देखकर जब मेरा चित्त विचलित नहीं हुआ, तो मूत्र-पुरीष से पूर्ण तुम्हारी इस मागंधी को तो मैं पैर से भी छूना पसंद नहीं करता।" भगवान् की यह बात मागंधी को बहुत बुरी लगी, और वह भीतर ही भीतर बहुत चिढ़ गई। परंतु भगवान् के इस तिरस्कृत-वाक्य से ब्राह्मण पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। वह मन ही मन समझ गया कि यह कोई बहुत बड़े वीतराग महात्मा हैं, नहीं तो ऐसा कौन है, जो कामिनी

और कंचन के लोभ में न आवे। और बोला---"हे श्रमण! आप इस भाँति शुभ गुण और सब लक्षणों से पूर्ण होते हुए भी स्त्री-रत्न का तिरस्कार करते हैं, यह आपको उचित नहीं है। शास्त्रों में स्त्री-रत्न का तिरस्कार करना पाप लिखा है, और स्त्री का आदर करना शास्त्र-सम्मत है। यह तो बतलाइए कि आप कौन-से धर्म और दर्शन को मानते हैं? आप कौन शील, व्रत और कर्म का अनुष्ठान करते हैं? क्या आप पुनर्जन्म को स्वीकार करते हैं?"

भगवान् बोले—"हे मागंधिय! मैं जिस धर्म पर चलता हूँ, उस धर्म के विचार में यह त्रिभुवन कुछ नहीं है। हम किसी दार्शनिक विवाद में पड़ना पसंद नहीं करते, इसीलिये किसी दर्शन के मत की पुष्टि भी नहीं करते। हमने यथार्थ तत्त्व को प्रत्यक्ष करके आध्यात्मिक शांति और पवित्रता को लाभ कर लिया है।"

मागंधिय बोला—"हे भगवन्! आपने जिस आध्यात्मिक शांति की बात कही है, उसकी प्रशंसा तो सब दर्शनों में है। फिर आश्चर्य है कि आप किसी दर्शन के मत को क्यों पोषण नहीं करते?"

भगवान् बोले—"हे मागंधिय! जिस आध्यात्मिक शांति और पवित्रता को मैंने लाभ किया है, वह शांति और पवित्रता न दर्शन से प्राप्त होती है, न श्रुति से प्राप्त होती है, न ज्ञान से प्राप्त होती है, न शील-व्रत से प्राप्त होती है, और न इनके त्यागने ही से प्राप्त होती है।"

मागंधिय ने कहा---"आपकी यह बात तो उन्मत्तों के प्रलाप-सी है। आध्यात्मिक शांति की व्याख्या सभी दर्शन और मत करते हैं, परंतु आपकी-सी अनोखी बात कोई नहीं कहता।"

भगवान् बोले,—"हे मागंधिय ! मनुष्यों की धर्म की ओर रुचि नहीं है, इसीसे वह सच्ची शांति प्राप्त नहीं कर सकते। संसार में कुछ मनुष्य तो मूढ़ता में फँसे हुए हैं, और कुछ दार्शनिक-विवाद में रत हैं। ऐसी स्थिति में धर्म के वास्तविक रूप को जानना बहुत कठिन है। लोग घोर विवाद में अंध होकर अशांति और कलह में पड़े रहते हैं। जब तक मनुष्य में सम, विशेष और हीन-भाव मौजूद हैं, तभी तक विवाद होना संभव है; परंतु जिसको ऊँच, नीच और समान भाव विचलित नहीं कर सकते, जिसने सम्यक् ज्ञान लाभ कर लिया है, वह भला किससे विवाद करेगा ? भेद-भाव से मुक्त, तृष्णा-रहित, वीतराग पुरुष ही इस संसार में सच्चे योग्य अधिकारी हैं। जैसे कमल-पुष्प जल और पंक से उत्पन्न होकर भी जल और पंक में लिप्त नहीं होता, ऐसे ही वे पुरुष भी निर्लिप्त रहकर निर्मनस्क विचरते हैं।"

इस प्रकार मागंधिय को उपदेश देकर भगवान् उस स्थान से आगे चले। इस घटना के कुछ काल बाद ही दैवात् कौशांबी के राजा महाराज उदयन उस ग्राम में आए। वह मागंधी के रूप-लावण्य को देखकर मुग्ध और विमोहित हो उसे ब्याहकर अपने यहाँ ले गए।

इधर भगवान् अपना देश-परिभ्रमण समाप्तकर श्रावस्ती पहुँचे और उधर कौशांबी के कुक्कुट, गोषित और पावरिक-नामक तीनों श्रेष्ठी साधुओं के साथ अपनी भेंट-सामग्री लिए हुए भगवान् के पास आ गए। उन्होंने भगवान् का दर्शन-पूजन करके कई दिन तक उनकी सेवा में रहकर उनका धर्मोपदेश श्रवण किया और एक दिन

अवसर पाकर उन्होंने भगवान् से कौशांवी चलने की विनय की। भगवान् ने उनके आग्रह-पूर्वक निमंत्रण को सुनकर आगामी वर्षावास कौशांवी में करना स्वीकार किया। इस पर वे लोग भगवान् को अभिवादन कर कौशांवी चले गए। भगवान् ने भी वर्षा के निकट आ जाने पर अपने संघ-समेत कौशांवी की ओर गमन किया, और वहाँ पहुँचकर उन श्रेष्ठियों के वनवाए हुए कुक्कुटाराम आदि विहारों में विराजे और एक मास तक तीनो श्रेष्ठियों का आतिथ्य स्वीकार करके फिर नगर में जाकर सवके यहाँ भिक्षा ग्रहण करने लगे।

राजा उदयन की जन्म-कथा

कौशांवी में परंतप नाम का एक राजा राज्य करता था। उसकी गर्भवती रानी एक दिन एक लाल कंवल ओढ़े महल की सबसे ऊँची छत पर वैठी धूप ले रही थी कि आकाश में उड़ता हुआ महागिद्ध-पक्षी उसे मांस-पिंड समझ अपने पंजों में दवाकर आकाश में उड़ गया। रानी इस डर से चुप रही कि वोलने से कहीं वह उसे छोड़ न दे। महागिद्ध ने उसे वहुत दूर महावन में ले जाकर पर्वत की जड़ में उगे एक महावृक्ष पर रक्खा। रानी ने हाथ की ताली वजाकर ज़ोर से हल्ला मचाया। पक्षी भाग गया। रानी को वहीं प्रसव-वेदना होने लगी और उसी समय जल भी वरसने लगा। रानी सारी रात उसी पेड़ पर वैठी कराहती रही। रात्रि के अवसान में अरुणोदय के समय, एक तपस्वी, जो पास ही रहता था, क्रंदन सुनकर आया, और सीढ़ी लगा रानी को उतारकर अपनी कुटी में ले गया। सूर्योदय-काल में रानी ने पुत्र प्रसव किया। तापस ने उसका नाम 'उदयन'

रक्खा। तपस्वी ने अपने ही आश्रम में दोनो का पालन-पोषण किया। कुछ काल में तपस्वी तपभ्रष्ट हो रानी का पति बन गया। बड़ा होने पर तपस्वी ने बालक उदयन को 'हस्तिग्रंथि-विद्या' सिखाई, जिससे हाथी उसके वशीभूत हो गए। काल पाकर राजा परंतप मर गया। तपस्वी ने रानी से पूछा—"तेरा राजा मर गया, क्या तेरा पुत्र उदयन पिता का राज्य चाहता है ?" रानी ने पुत्र से उसकी उत्पत्ति की सारी कथा सुनाकर उसकी इच्छा पूछी। पुत्र ने 'राजा' होने की इच्छा प्रकट की। तपस्वी ने उसे कंबल और रानी की अँगूठी देकर कौशांबी भेजा। उदयन कौशांबी पहुँच राज-हस्तिशाला के निकट एक बर्गद के पेड़ पर चढ़कर बैठ गया, और हाथियों को भगाने के लिये मंत्र-संपुटित वीणा बजाने लगा। वीणा-रव सुनते ही हस्तिशाला के सारे हाथी भाग गए। फिर उसने विपरीत प्रयोग से वीणा बजाई, जिससे सारे हाथी उसके निकट आकर नत हो गए। उसने एक उत्तम हाथी पर सवार हो, शेप हाथियों की सेना बना राज्य पर यह घोषणा करके चढ़ाई की कि "मैं राजा परंतप का पुत्र और राज्य का स्वामी हूँ। मंत्रियों ने कंबल और अँगूठी से उसे राजपुत्र निश्चय करके उसको कौशांबी का राजा बनाया।

रानी श्यामावती और खज्जुहारा

राजा उदयन कौशांबी के महाप्रतापी राजा हुए। उनके तीन रानियाँ थीं—वासवदत्ता, श्यामावती और मागंधी। इनमें वासवदत्ता पांचाल-नरेश की लड़की थी, श्यामावती वैश्य-कन्या थी, मागंधी ब्राह्मण-तनया थी और यह सब में छोटी रानी थी। इन तीनो

रानियों में महाराज श्यामावती से अधिक स्नेह रखते थे। श्यामावती की एक दासी थी, उसका नाम खज्जुहारा था, वह श्यामावती के लिये माली के यहाँ से नित्य फूल इत्यादि लाया करती थी। एक दिन भगवान् उस माली के यहाँ अपने संघ-समेत निमंत्रित होकर भोजन के लिये गए। माली ने भगवान् को उनके संघ-सहित बड़े भक्ति-भाव-पूर्वक भोजन कराया। भोजन करने के बाद भगवान् अपना धर्मोपदेश करने लगे। जिस समय भगवान् धर्मोपदेश कर रहे थे, उसी समय श्यामावती की दासी खज्जुहारा फूल लेने के लिये वहाँ पहुँची, और वह भी भगवान् का उपदेश सुनने लगी। उपदेश समाप्त होने पर खज्जुहारा फूल लेकर जब राजमहल में पहुँची, तो श्यामावती ने उससे देर में आने का कारण पूछा। खज्जुहारा ने उत्तर दिया--"हे महारानी! आज जब मैं माली के यहाँ गई, तो वहाँ भगवान् बुद्ध धर्मोपदेश कर रहे थे, मैं भी उनका उपदेश सुनने लगी, इससे देर हो गई।" जब रानी ने फूल देखे, तो आज के फूल नित्य के फूलों से दूने थे। रानी ने इसका कारण पूछा।

खज्जुहारा ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"हे महारानी! अपराध क्षमा हो, रोज़ फूल लाने के लिये जो दाम मुझे मिलते थे, उसमें से आधे मैं स्वयं ले लेती थी और आधे के फूल लाती थी; परंतु आज मैं कुल दामों के फूल ले आई हूँ। इसका कारण यह है कि मैंने भगवान् का धर्मोपदेश सुनकर यह प्रतिज्ञा कर ली है कि आज से जीव-हिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ बोलना, नशीली चीज़ें खाना तथा जुआ खेलना, इन कर्मों को न करूँगी।"

दासी की बात सुनकर श्यामावती बहुत विस्मित हुई और भगवान् के चरणों में उसकी अत्यंत श्रद्धा हो गई। वह सोचने लगी, जिसके उपदेश से मनुष्य के जीवन में इतनी जल्दी अद्भुत परिवर्तन हो जाता है, उस महापुरुष का दर्शन करके अवश्य कृतार्थ होना चाहिए। उसने अपनी दासी से पूछा—"हे खज्जुहारा! भला मुझे भी भगवान् के दर्शन हो सकते हैं? मेरी उत्कट इच्छा है कि मैं उनका दर्शनकर अपने को कृतार्थ करूँ।" दासी ने कहा—"हे महारानी! भगवान् नगर में भिक्षा करने के लिये नित्य आपके इस महल के नीचे से ही जाया करते हैं।" श्यामावती को जब यह बात मालूम हुई, तो उसने अपने महल की दीवार में एक सूराख़ बनवाया, और उसके द्वारा वह प्रति दिन भगवान् का दर्शन करने लगी।

मागंधी की द्वेषाग्नि और कुचक्र

एक दिन मागंधी श्यामावती के महल में गई, अचानक उसकी दृष्टि उस छिद्र पर पड़ी जिसके द्वारा श्यामावती भगवान् का दर्शन किया करती थी। मागंधी ने पूछा—"बहन! यह छेद कैसा है?" श्यामावती ने कहा—"मैंने इसे भगवान् गौतम बुद्ध के दर्शनों के लिये बनवाया है। वह इसी मार्ग से नित्य नगर में भिक्षार्थ जाते हैं, और इसके द्वारा मैं उनके दर्शन किया करती हूँ। यदि तुम किसी दिन ठीक समय से आओ, तो तुम्हें भी भगवान् के दर्शन हो जायँ।" भगवान् बुद्ध का नाम सुनते ही मागंधी मन ही मन क्रुद्ध गई, क्योंकि भगवान् ने उसके रूप-यौवन का तिरस्कार किया था। इसके सिवा वह श्यामावती से सवतिया-डाह भी रखती थी, इसलिये उसे सव-

त्रिया-डाह निकालने और भगवान् बुद्ध को अपने तिरस्कार का मज़ा चखाने का यह एक अच्छा अवसर मिला। किंतु हृदय के वेग को भीतर ही रोककर वह चुप हो वहाँ से चल दी।

महाराज उदयन जब मागंधी के यहाँ गए, तो उसने महाराज से श्यामावती की बहुत निंदा की। बोली—"जिस श्यामावती की आप बहुत प्रशंसा किया करते हैं और जिस पर आप मरते हैं, वह कुल्टा है। आपको न विश्वास हो, तो उसके महल में जाकर देख लीजिए। अमुक स्थान में उसने एक छेद बनवाया है, जिसके द्वारा वह अपने जार से बातचीत करती है। मैंने उस मोखे को अपनी आँखों देखा है।" राजा को यह बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। मागंधी मन में बहुत प्रसन्न हुई, और समझा कि श्यामावती को तो मैंने आज साफ़ कर दिया, अब रह गई वासवदत्ता, सो उसके लिये भी कोई यत्न करूँगी।

दूसरे दिन राजा जब श्यामावती के भवन में गए, तो उन्होंने मागंधी के बताए हुए मोखे को ठीक उसी स्थान पर पाया। राजा ने श्यामावती से पूछा—"यह मोखा क्यों बनाया गया है?" श्यामावती ने कहा—"महाराज! यह झरोखा मैंने भगवान् बुद्ध के दर्शनों के लिये बनवाया है, वह नित्य इधर से निकलते हैं। और आपसे विनय करती हूँ कि आप भी भगवान् के दर्शन अवश्य करें, और मुझे आज्ञा दें, तो मैं एक दिन भगवान् को निमंत्रित कर भोजन जिमाऊँ।" राजा उदयन श्यामावती की यह सत्य और सरल बात सुनकर बड़े प्रसन्न हुए, और बोले—"तुम अवश्य भगवान् बुद्ध को ससंघ निमंत्रित करके भोजन जिमाओ। यह बड़े भाग्य की बात है

कि भगवान् हमारे घर पधारेंगे।" महाराज ने उसी समय राजमिस्त्री को बुलाकर आज्ञा दी कि "उस स्थान पर बहुत जल्द एक सुंदर खिड़की बना दी जाय।"

महाराज की अनुमति पाकर श्यामावती ने भगवान् को ससंघ निमंत्रित करके बड़े समारोह के साथ भोजन जिमाया। महाराज उदयन भी श्यामावती के इस पुण्य-कार्य में सम्मिलित हुए, और राजा-रानी दोनो ने भगवान् की सेवा करके धर्मोपदेश श्रवण किया।

भगवान् और उनके संघ को गालियाँ

जब मागंधी को यह समाचार मालूम हुआ, तो वह जलकर खाक हो गई। उसने भगवान् को दुःखित और अपमानित करने के लिये कुछ लड़कों को लोभ देकर भगवान् और उनके संघ को गाली दिलवाना आरंभ किया। जब कभी भगवान् या उनके शिष्य भिक्षा के लिये निकलते, तो रास्ते में मागंधी के सिखाए हुए लड़के और गुंडे भगवान् और भिक्षुसंघ को अनेक प्रकार की गालियाँ देते। भगवान् ने इन गालियों को कभी ग्रहण नहीं किया, जिससे न वे दुःखित हुए और न उनकी कुछ परवाह की; परंतु उनके संघ के लोगों को इससे दुःख हुआ, जिनके दुःख से दुखी होकर महास्थविर आनंद ने भगवान् से प्रार्थना की—"हे भगवन्! यहाँ के लोग गाली देकर आपके शिष्यों को दुखित और अपमानित करते हैं, इसलिये इस स्थान को त्यागकर दूसरे स्थान को चलना चाहिए, और वर्षा-वास भी अब समाप्त हो गया है।"

महास्थविर आनंद की यह बात सुनकर भगवान् बोले—"हे आनंद ! युद्ध-क्षेत्र में जैसे हाथी धनुष के द्वारा छोड़े हुए बाणों को अपने शरीर में सहिष्णुता के साथ सहते हैं; उसी प्रकार हम भी दुष्ट पुरुषों के वाक्य सहिष्णुता के साथ सहन करेंगे। क्योंकि इस जगत् में दुःशील (दुष्ट) व्यक्ति ही अधिक हैं।" मूल श्लोक—

अहं नागोव संगामे चपतो पतितं सरं ।
अति वाक्यं तितिक्खिस्सं दुस्सीलो हि बहुज्जनो ॥

मागंधी का दूसरा कुचक्र

जब मागंधी के गाली दिलवाने पर भी भगवान् और उनके शिष्य नहीं भागे, और उधर राजा श्यामावती का पहले से अधिक प्यार करने लगे, तो मागंधी और भी अधिक कुढ़ी, उसने एक और नए कुचक्र की रचना की। उसने श्यामावती को बदनाम करने के लिये कि वह भगवान् बुद्ध की भक्त होने का ढोंग करके जीव-हिंसा करती और मांस खाती है, कुछ जंगली मुर्ग़े मँगवाकर राजा को दिखाए, और कहा—"महाराज ! श्यामावती इनका मांस बहुत उत्तम बनाना जानती है।" राजा ने मागंधी की बात सुनकर मुर्ग़ों को श्यामावती के महल में बनाने लिये भेज दिया। भोजन करने के समय जब महाराज गए, तो श्यामावती ने नाना प्रकार के व्यंजन, जो बनाए थे, महाराज के सामने परसकर रक्खे। महाराज ने इन व्यंजनों के साथ मुर्ग़े का मांस न देखकर श्यामावती से इसका कारण पूछा। श्यामावती ने हाथ जोड़कर विनय की—"महाराज ! मैंने आपके भेजे हुए सब मुर्ग़ों को छोड़ दिया।

क्योंकि भगवान् के उपदेश से मैं जीव-हिंसा करना, चोरी करना, व्यभिचार करना, झूठ बोलना, किसी प्रकार के नशे का सेवन करना, और जुआ खेलना अतिपाप समझती हूँ। जैसे हमें दुःख होता है, ऐसे ही सब प्राणियों को भी दुःख होता होगा; फिर किसी स्वार्थ या अपनी जीभ के स्वाद के लिये किसी प्राणी का संहार करना कैसे न्याय-संगत और उचित हो सकता है?"

श्यामावती की बात सुनकर महाराज बड़े संतुष्ट हुए, और जो व्यंजन रानी ने उनके सामने रक्खे थे, उन्हें बड़े आनंद से भोजन कर तृप्त हुए।

मागंधी का तीसरा कुचक्र

अपने दो प्रयत्नों को व्यर्थ होते देख मागंधी और अधिक जल-भुन गई, और चिंता करने लगी कि किस तरह महाराज को श्यामावती के विरुद्ध बनाऊँ? सोचते-सोचते उसने यह युक्ति निकाली कि श्यामावती पर महाराज के प्राण लेने का दोष मढ़ना चाहिए। यह दोष सिद्ध हो जाने पर राजा उसको अवश्य मार डालेंगे। यह सोचकर उसने एक सर्प का बच्चा मँगवाया, और जिस दिन महाराज श्यामावती के महल में जानेवाले थे, उस दिन उनके हस्तिस्कंध-वीणा में, जिसे बजाकर महाराज हाथियों को यथेच्छ नचाते थे, मागंधी ने उस साँप के बच्चे को रखकर चतुराई से श्यामावती के महल में भिजवा दिया। जब महाराज श्यामावती के महल में गए, तो मागंधी भी उनके साथ गई। महाराज के वहाँ बैठने पर मागंधी ने उस वीणा को उठा लिया और उसको ठीक करने के मिस से

उसकी खूँटी मरोड़ने लगी। मरोड़ते ही वह साँप का बच्चा उस वीणा के भीतर से निकल पड़ा। मागंधी चट वीणा फेंककर खड़ी हो गई, और बड़े रोष के साथ श्यामावती को डाटकर बोली—"अरी कुल्टा! तूने यह कौन-सी माया रची? अरी पापिनी! जिस महाराज की बदौलत तू इतना सुख करती है, उन्हीं अपने प्राणपति के प्राण लेने का तूने यह यत्न किया था! सरल स्वभाव महाराज तेरी चिकनी-चुपड़ी बातों में आ जाते हैं। मैं तेरे कुल्टापन को ख़ूब जानती हूँ और महाराज को बहुत दिन से सतर्क कर रही हूँ। किंतु महाराज तेरे इस त्रिया-चरित्र की पहेली को नहीं समझ सके।" महाराज भी उस साँप के बच्चे को देखकर अति विस्मित हो उठे। इधर मागंधी ने अनेक प्रकार के कौशल-पूर्ण वाक्यों द्वारा उनके क्रोध को और भी प्रज्वलित कर दिया। श्यामावती ने बहुत कुछ प्रार्थना की कि "मैं इस रहस्य को कुछ भी नहीं जानती।" किंतु उसकी बात को उस समय किसी ने नहीं सुना। महाराज क्रोध से लाल हो उठे, और श्यामावती को मारने के लिये बाणों की वर्षा करने लगे। परंतु भगवान् बुद्ध के अहिंसा-धर्म के प्रताप से श्यामावती के शरीर में एक बाण भी न लगा। यह अद्भुत चमत्कार देखकर महाराज उदयन बड़े विस्मित हुए, और उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि श्यामावती निर्दोष और सच्ची है। मैंने वृथा उस पर बाण-प्रहार किया। उन्होंने पश्चात्ताप करते हुए रानी से कहा—"मुझसे भूल हुई, मैं तुम्हारी शरण हूँ।" श्यामावती ने कहा—"महाराज! मेरी शरण से क्या लाभ है, आप भगवान् बुद्ध की शरण लें, जिनके अहिंसा-धर्म

के प्रताप से मेरी प्राण-रक्षा हुई।" महाराज ने कहा—"श्यामावती ! मैं तेरी और भगवान् बुद्ध दोनो की शरण लेता हूँ।"

मागंधा का चौथा कुचक्र और विनाश

मागंधी इस दैवी घटना को देख भयभीत हो यद्यपि उस दिन भाग गई, परंतु उसके मन की कसक नहीं गई। वह श्यामावती के विनाश की रात-दिन चिंता करती रही। इस घटना के कुछ दिन बाद महाराज कई दिन के लिये नगर से कहीं दूर गए थे। उस समय अच्छा अवसर पाकर मागंधी ने श्यामावती के महल का फाटक बंद कराकर चारो ओर से आग लगवा दी, जिससे वह अपनी सहेलियों-सहित जलकर मर गई। कई दिनों के बाद जब महाराज कौशांबी नगर में लौटकर आए, तो उन्होंने श्यामावती के जल जाने का समाचार सुना। इस शोक-समाचार से महाराज अत्यंत दुखित और मर्माहत हुए। उन्होंने मागंधी को मूर्तिमान पिशाचिन और हत्यारिन समझ उसके हितैषी और अनुचरों-सहित उसका विनाश करा दिया।

८—सात वर्षों का अद्भुत प्रचार

पारिलेयक वन में वर्षा-वास

कौशांबी में रहते समय भगवान् के संघ में मतभेद हो गया था। मतभेद का कारण यह था कि भिक्षु के विनय (नियम) के अनुसार शौच के पश्चात् जलपात्र को उलटा रखना चाहिए, परंतु एक दिन किसी भिक्षु ने जलपात्र को उलटा न रखकर सीधा रख दिया था। इस साधारण विनय की बात को लेकर भिक्षुओं में विरोध बढ़ गया, और वह दो दल हो गए; एक सौत्रांतिक, दूसरा विनयांतिक। इनमें यह विरोधानल इतना प्रचंड हो गया कि भगवान् के शांत करने पर भी शांत न हुआ। विवश होकर भगवान् कौशांबी से श्रावस्ती गए। परंतु वहाँ भी शांति नहीं देख पड़ी, क्योंकि मौद्गली के लगाए हुए विरोधानल की ज्वाला वहाँ भी धधक रही थी। इस कारण भगवान् ने वहाँ भी न ठहरकर मगध की ओर गमन किया, और अपने साथ किसी को नहीं लिया। भगवान् राजगृह भी न जाकर पारिलेयक वन की ओर गए, और इस वर्ष भगवान् ने इस अत्यंत निर्जन वन में मौन धारण कर एक पेड़ के नीचे बैठकर अपना वर्षावास किया। इस वनखंड में एक हाथी और एक बंदर फल-फूलों द्वारा भगवान् की सेवा करते रहे।

जब भगवान् कौशांबी में विराजमान थे, उसी समय देवदत्त आनंद, सारिपुत्र और मौद्गलायन की प्रधानता में रहना पसंद न करके बुद्ध-संघ से अप्रसन्न होकर राजगृह चला गया था और राजगृह में रहकर भगवान् के विरुद्ध उद्योग करने लगा था। देवदत्त के विद्रोह की कथा हम अगले अध्याय में सविस्तार लिखेंगे।

नंदोपनंद और बकब्रह्मा को उपदेश

वर्षा-वास समाप्त होने के बाद, संघ के दोनो दलों में कुछ मेल-जोल का विचार उत्पन्न हुआ देख, सारिपुत्र और मौद्गलायन भगवान् की खोज में मगध की ओर चले। मार्ग में आनंद से भेंट हुई। आनंद ने कहा—"भगवान् पारिलेयक वन-खंड में एकांत-वास कर रहे हैं।" बातचीत होने के बाद तीनो मिलकर भगवान् के पास पहुँचे और श्रावस्ती चलने के लिये उनसे सविनय अनुरोध करने लगे। बहुत अनुरोध किए जाने पर भगवान् ने एक दिन उस वन में सबके साथ और रहकर वहाँ से श्रावस्ती की ओर गमन किया। भगवान् जब श्रावस्ती पहुँचे, तब भंडनकारी भिक्षु-मंडली के लोग, जिन्हें आपस में विरोध करने के कारण भगवान् ने त्याग दिया था, श्रावस्ती की ओर चले। मार्ग में महाराज प्रसेनजित ने उन्हें श्रावस्ती जाने से रोकना चाहा, क्योंकि महाराज ने सोचा कि यह विरोधी-मंडली फिर श्रावस्ती में जाकर आपस का विरोध बढ़ाकर भगवान् को कष्ट पहुँचावेगी। किंतु मर्मज्ञ भगवान् ने महाराज प्रसेनजित को रोकने से मना किया और कहा कि यदि भिक्षु लोग मेरे पास आना चाहते हैं, तो आवें। भगवान् की आज्ञा पाकर राजा ने भिक्षु-

संघ को नहीं रोका। उन लोगों ने भगवान् के पास जाकर अभिवादन-पूर्वक क्षमा-प्रार्थना की, भगवान् ने उन्हें क्षमा किया। श्रावस्ती में कुछ काल रहकर भगवान् ने नंदोपनंद-नामक नागराज को अपने शिष्य महामोग्गलायन स्थविर के द्वारा ऋद्धि-उपदेश दिलाकर उसका कल्याण किया। इसी समय श्रावस्ती में भगवान् ने महाऋद्धिमान् और ज्योति-संपन्न 'वक' नामक ब्रह्मा को, जो मिथ्या-दृष्टि के वशीभूत हो गए थे, ज्ञान उपदेश करके उनकी मिथ्या-दृष्टि दूर की।

भगवान् की खेती

इसके बाद भगवान् श्रावस्ती से चलकर राजगृह को गए और गर्मी-भर रहकर वहाँ से नाड़क-ग्राम में गए, जो यहाँ से दक्षिण दिशा की ओर छः गव्यूती दूरी पर पर्वत पर बसा हुआ था। यह प्रायः ब्राह्मणों की बस्ती थी। इस ग्राम में एक कृषक भरद्वाज-नामक ब्राह्मण रहता था, जो खेती द्वारा अपने जीवन को सुख-पूर्वक व्यतीत कर रहा था। एक दिन भगवान् प्रातःकाल चीवर-वेष्टित होकर कृषक भरद्वाज ब्राह्मण के घर भिक्षा के लिये गए। उस दिन उस ब्राह्मण के यहाँ कर्षण-आरंभोत्सव था, इस कारण उसके घर में खाना-पीना और बड़ी धूम-धाम थी। उस दिन ब्राह्मण ने पाँच सौ हल ले जाकर खेत में कृषि आरंभ की थी। यह कृषक भरद्वाज बुद्ध को भिक्षा के लिये आते देख बोला—"हे श्रवण! मैं तो जोत और बोकर कृषि करता हूँ, तब मेरा निर्वाह होता है, आप भी ऐसा क्यों नहीं करते?"

भगवान् ने कहा—"हे ब्राह्मण ! मैं भी तो जोत-बोकर खेती करता हूँ, यह तुमको नहीं मालूम ?"

यह सुनकर ब्राह्मण बहुत विस्मित हुआ और भगवान् से बोला—"हे गौतम ! मेरे पास तो जुआ, हल, फाल और बैल इत्यादि खेती की जितनी सामग्री है सब मौजूद है, परंतु आपके पास तो कुछ नहीं देखता हूँ, फिर मैं कैसे विश्वास करूँ कि आप भी मेरी ही भाँति जोत-बोकर खाते हैं ?"

भरद्वाज की बात सुनकर भगवान् बोले—"हे भरद्वाज ! मैं किस प्रकार कृषि करता हूँ, सुनो। मेरे कृषि-कार्य में श्रद्धा-रूपी बीज है। तप, इंद्रिय-संयम, शील-रूपी वृष्टि है, प्रज्ञा-रूपी जुआ और हल है, लज्जा-रूपी हल की मूठ (हलीश) है, एकाग्र मन-रूपी जोत (जोतने की रस्सी या तस्मा या नाधा) है, स्मृति-रूपी फाल और हाँकने का डंडा है। हिंसा, चोरी, व्यभिचार, तीन प्रकार के कायिक पापों से संयम तथा मिथ्या, पिशुन, कटु और वृथा-वाद-त्याग इन चार प्रकार के वाचनिक पापों से संयम और परिमित आहार करना-रूप खेती की सीमा और रक्षा की मेड़ है। सत्य की खुरपी से सतकाय आदि ६२ प्रकार की मिथ्या-दृष्टियों का दूर करना-रूप निराना है। सोरंच (सौवर्च) अर्थात् निर्वाण-प्राप्त अर्हत्-फल-लाभ करना-रूप स्वच्छ अन्न रखकर कूड़ा-कर्कट आदि का ओसावना है। वीर्य (पराक्रम) रूपी मेरे बैल हैं। योग अर्थात् काम-योग, भव-योग, दृष्ट-योग और अविद्या-योग इन चार प्रकार के योगों का क्षय करके निर्वाण की ओर गमन करना-रूप ही हमारा बैलों का हाँकना है।

मैं अपने इस कृषि के हल को अविराम चलाता रहता हूँ, जिससे मुझे किसी प्रकार की चिंता और दुःख नहीं प्राप्त होते। हे भरद्वाज ! इस प्रकार की बोधि-पक्षीय सामग्री से कृषि को करने पर अमृत-फल अर्थात् निर्वाण प्राप्त होता है, और इस प्रकार कृषि करनेवाला सब प्रकार के दुखों से छूट जाता है।" यथा—

सद्धा बीजं तपो बुद्धि पञ्जामे युगलंगलं।
हिरिईसा मनोयोत्तं सति मे फाल पाचनं॥
काय गुत्तो वची गुत्तो आहारे उदरे यतो।
सच्चं करोति निद्दानं सोरचं मे पमोचनं॥
वीरियं में धुर धोरह्यं योगक्खेमाधिवाहणं।
गच्छंति अनिवत्ततं यत्थ गत्वा न सोचति॥
एव मेसा कसी कट्ठा सा होति अमतप्फला।
एतं कसी कसित्वान सब्ब दुक्खापमुच्चति॥

कृषकभरद्वाज भगवान् की इस अलौकिक कृषि की बात सुन अति पुलकित हो उनके चरणों पर गिर पड़ा और भगवान् से प्रव्रज्या ग्रहण करके भिक्षु-संघ में सम्मिलित हो गया। इस साल भगवान् नाड़क ग्राम में ही अपना वर्षावास व्यतीत करके राजगृह चले गए।

वेरुंजर में वर्षावास और दुर्भिक्ष

राजगृह में कुछ काल वास करने के बाद भगवान् अपने शिष्यों-समेत परिभ्रमण के लिये निकले। भ्रमण करते हुए आप वेरुंजर नामक ग्राम में पहुँचे। वहाँ के ब्राह्मणों ने भगवान् की विधिवत् पूजा और सत्कार करके उनके धर्मोपदेश सुने, और आगामी वर्षावास यहीं

करने के लिये भगवान् से प्रार्थना की। भगवान् उनकी प्रार्थना स्वीकार कर वहाँ से आगे बढ़े और इधर-उधर घूम-फिरकर धर्मोपदेश करते हुए वर्षा-ऋतु के आरंभ में अपने संघ-समेत वेरुंजर-ग्राम में फिर आ गए। परंतु इस साल वहाँ अनावृष्टि के कारण घोर दुर्भिक्ष पड़ा, जिसके कारण वहाँ के ब्राह्मण लोग अपने पूर्व-निमंत्रण के अनुसार भगवान् और उनके संघ की यथोचित सेवा-सत्कार न कर सके। दुर्भिक्ष के कारण संघ को भिक्षा के लिये बड़ी कठिनता पड़ने लगी। दैवयोग से उत्तर की ओर से वहाँ घोड़े के कुछ व्यापारी आ गए। वे लोग भिक्षुओं का अन्नकष्ट देखकर घोड़ों के दाने में से कुछ भाग उनको देने लगे, जिसे खाकर संघ के लोग अपना निर्वाह करते रहे। आनंद भी इसी दाने को लेकर साफ़ कर और पीस कर भगवान् को खिलाते और स्वयं भी खाते थे। इस दुर्भिक्ष के कारण संघ के कुछ भिक्षु बासी रखकर दूसरे दिन भी खाने लगे। भगवान् को भिक्षुओं की यह बात अच्छी न लगी। इसलिये उस समय से उन्होंने यह नियम बना दिया कि "भिक्षुओं को बासी अन्न न खाना चाहिए। और न अन्न को कूटना चाहिए।" बरसात बाद जब नवीन अन्न उपजे, तब ब्राह्मणों ने अपनी पूर्व-प्रतिज्ञा के अनुसार भगवान् और उनके संघ का यथोचित सेवा-सत्कार करके उनसे क्षमा-प्रार्थना की।

दो यक्ष—सूचीलोम और खरलोम

वेरुंजर-ग्राम में वर्षावास समाप्त करके भगवान् राजगृह पधारे और अपने भिक्षु-संघ को वहीं छोड़ आप राजगृह से गया की ओर

चल दिए। गया में पहुँचकर भगवान् एक दिन सूचीलोम और खर-लोम नामक दो यक्षों के घर पहुँचे। परंतु यक्ष लोग घर में मौजूद नहीं थे, उस समय कहीं बाहर से आ रहे थे। दूर से ही भगवान् को बैठे देखकर खरलोम ने सूचीलोम से कहा—"जाकर देखो तो, वह कौन बैठा है ? कोई श्रमण है या कोई बना हुआ पाखंडी ?" सूची-लोम ने कहा—"श्रमण तो नहीं मालूम होता, कोई पाखंडी ही है।" इस प्रकार दोनो में बातचीत होने लगी। तब सूचीलोम ने कहा—"अच्छा मैं इससे मिलकर अभी इसका निर्णय किए लेता हूँ।" इतना कहकर सूचीलोम भगवान् के पास आकर बैठ गया और कहने लगा—"हे श्रमण! तुम बड़े तेजस्वी मालूम होते हो, यहाँ क्यों आए हो? अच्छा, मैं तुमसे कुछ प्रश्न करता हूँ, यदि तुमने उनका ठीक उत्तर न दिया, तो मैं अभी तुम्हारा कलेजा फाड़ डालूँगा और तुम्हारी टाँग पकड़कर ऐसा फेकूँगा कि तुम गंगा पार जाकर गिरोगे।"

भगवान् बोले—"हे यक्ष! मेरा कलेजा फाड़नेवाला और टाँग पकड़कर फेंकनेवाला अब तक कोई उत्पन्न नहीं हुआ। तुम व्यर्थ ऐसी धृष्टता की बात मत करो। तुमको जो पूछना है, वह पूछो।"

यक्ष ने कहा—"हे श्रमण! राग और द्वेष कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? अरति, रति और लोमहर्ष कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? मन में वितर्क* अर्थात् संशय कहाँ से पैदा होते हैं, जो मन को इधर-उधर ऐसे उड़ाए-उड़ाए फिरते हैं जैसे बालक कौवे को इधर-उधर उड़ाया करते हैं?"

---

* वितर्क तीन प्रकारके हैं। यथा—१ काम-वितर्क, २ व्यापाद-वितर्क, ३ विहिंसा-वितर्क।

भगवान् ने कहा—"हे यक्ष ! राग और द्वेष, अपने आत्मा ही से उत्पन्न होते हैं; इसी से रति, अरति और लोमहर्ष भी उत्पन्न होते हैं; इसी से मन में वितर्क भी उत्पन्न होता है, जो मन को इधर-उधर ऐसे उड़ाता फिरता है, जैसे बालक लोग कौवे को इधर-उधर उड़ाते फिरते हैं। यह राग-द्वेषादि तृष्णा के कारण अपने आत्मा में ऐसे उत्पन्न होते हैं, जैसे वट-वृक्ष में जटाएँ उत्पन्न होती हैं और वह काम-भोगों में मालू लता की भांति ताने-बाने की तरह लपेटती हैं। जो लोग इस प्रकार पापोदय के कारण को जानते हैं, वे परम आनंद को प्राप्त करते हैं। हे यक्ष ! वे ही लोग इस अति दुस्तर दुःख-सागर को पार करके उस निर्वाण-पद को प्राप्त करते हैं, जिसे प्राप्त करके फिर कभी जन्म-मरण के चक्र में नहीं आना होता।"

भगवान् के इस भाँति के उत्तर को सुन यक्ष बहुत गद्गद् हो गया और भगवान् की विधिवत् पूजा-सत्कार करके कृतकृत्य हुआ। भगवान् यक्ष को कृतार्थ करके गया से राजगृह लौट आए और ग्रीष्म-काल भर वहाँ रहकर चालीय पर्वत के बकुल-वन में जाकर इस साल अपना वर्षावास किया। वर्षावास समाप्त करके भगवान् चालीय पर्वत से फिर राजगृह आ गए। और जाड़े भर यहाँ रहकर यहाँ से श्रावस्ती की ओर प्रस्थान किया।

मल्लिका की कथा

मार्ग में महाराज प्रसेनजित की एक सुंदर वाटिका थी, जिसकी रक्षिका एक मालिन की लड़की थी। इसका नाम मल्लिका था। मल्लिका बड़ी सुंदरी थी। जब भगवान् अपने शिष्यों-सहित उस

वाटिका के भीतर से निकले, तो मल्लिका ने एक पिष्टक भगवान् के भिक्षा-पात्र में दान किया। दीनबंधु भगवान् मल्लिका की ओर देख मुसकिराकर कहने लगे कि "इस उद्यान-पालिका के द्वारा हमारे धर्म को बहुत बड़ी सहायता मिलेगी।" इस बात के रहस्य को मल्लिका ने उस समय नहीं समझा, परंतु आनंद ने उसी समय यह समझ लिया कि यह बालिका इस पिष्टक-दान के पुण्य-प्रभाव से भविष्य में कोशल-राजा की राज-महिषी होगी। इस पिष्टक-दान के फल से मल्लिका महाराज प्रसेनजित की राजमहिषी होकर 'मल्लिका' से 'कोशलमल्लिका देवी' हुई। कथा इस प्रकार है—

प्रसेनजित कोशल के राजा थे, और श्रावस्ती में इनकी राज-धानी थी। इनके पिता का नाम महाकोशल था। महाकोशल के यद्यपि कई रानियाँ थीं, तथापि शाक्य-वंश से संबंध स्थापन करने के लिये उन्होंने महाराज शुद्धोदन के भतीजे महानाम की, जो कपिल-वस्तु के अंतिम राजा थे, कुमारी से व्याह किया था। इस विवाह-संबंध के बाद राजा बौद्ध-धर्म के अधिक भक्त हो गए थे। वह पाँच सौ बौद्ध-भिक्षुओं को नित्य भोजन दिया करते थे, किंतु भिक्षु लोग भोजन करके संतुष्ट नहीं होते थे। राजा ने एक दिन पूछा—"हे भिक्षुओ! आप लोग ग़रीब आदमियों के घर भोजन करके तो बहुत संतुष्ट होते हो, किंतु हमारे यहाँ भोजन करके आप लोग उस प्रकार संतुष्ट क्यों नहीं होते?" भिक्षुओं ने कहा—"महाराज! श्रद्धा ही भोजन को मधुर बना देती है, यदि कोई दाता श्रद्धा-पूर्वक दान करता है, तो सामान्य भोजनादि पदार्थ भी बहुत स्वादिष्ठ और

तृप्तिकारक हो जाते हैं।" भिक्षुओं की इस स्पष्ट-वादिता को सुनकर राजा लज्जित हुए और उस दिन से बौद्ध-धर्म और बौद्ध-भिक्षुओं पर बड़ी श्रद्धा करने लगे।

ऊपर कह आए हैं कि प्रसेनजित महाराज महाकोशल के पुत्र थे। प्रसेनजित की बहन के साथ मगध-सम्राट् महाराज बिंबसार का विवाह हुआ था, और श्रावस्ती को महाराज बिंबसार ने दहेज़ में पाया था। आगे चलकर जब अजातशत्रु महाराज बिंबसार को मारकर स्वयं मगध-राज्य का अधिकारी बन बैठा, तो महाराज प्रसेनजित ने इस अनुचित व्यवहारसे असंतुष्ट होकर श्रावस्ती को मगध-राज्य से लौटा लिया जिसके कारण अजातशत्रु और महाराज प्रसेनजित में एक बार घोर संग्राम हुआ। इस संग्राम में जब महाराज प्रसेनजित पराजित होकर लौटे, तो इसी मनोरम वाटिका के अंदर गए। जिस समय महाराज वाटिका में गए, तो वाटिका की रक्षिका इस परम सुंदरी मालिनकुमारी मल्लिका के रूप-लावण्य को देखकर महाराज मुग्ध हो गए, और उसे अपने संग लाकर, उसके साथ विवाह कर, उसे अपनी राज-महिषी बनाया। तबसे इस मल्लिका का नाम 'कोशलमल्लिका देवी' पड़ा।

अंगुलिमाल की कथा

श्रावस्ती में एक ब्राह्मण नवयुवक रहता था, जिसका नाम अंगुलिमाल था। यह कोशलराज महाराज प्रसेनजित के पुरोहित का लड़का था, और किसी तांत्रिक प्रयोग के लिये, अपने तांत्रिक-गुरु के आदेशानुसार, एक हज़ार मनुष्यों को मारकर उनकी एक हज़ार

दाहिनी कनिष्ठिका उँगली की माला गूँधने की तैयारी कर रहा था, इसी कारण इसका नाम 'अंगुलिमाल' पड़ गया था। अंगुलिमाल के अत्याचार के कारण श्रावस्ती के लोग बड़े दुःखित और बहुत घबरा उठे थे, बहुत-सी प्रजा भयभीत हो राज्य छोड़कर भागने लगी। महाराज प्रसेनजित भी प्रजा के दुःख से उद्विग्न हो उठे थे। उन्होंने अंगुलिमाल के पकड़ने के लिये अपनी सेना को हुक्म दिया, पर वह पकड़ने में नहीं आता था, क्योंकि उसके शरीर में हाथी से भी अधिक बल था, वह दौड़ने में इतना तेज़ था कि वेग से दौड़नेवाले हाथी, घोड़ा और रथ भी उसे पकड़ न सकते थे।

जब भगवान् श्रावस्ती पहुँचे, तो अंगुलिमाल के इस लोमहर्षण अत्याचार की चर्चा चारो ओर सुनकर बड़े दुखित हुए। जनता के इस दुःख को दूर करने की इच्छा से भगवान् पात्र-चीवर धारणकर श्रावस्ती से उसी रास्ते चले जिधर अंगुलिमाल रहता था। अंगुलिमाल ने भगवान् को आते देख ललकारकर कहा—"हे भिक्षु! ठहर जाओ, भागना नहीं।" "ठहरा हूँ"—कहकर भगवान् जिस तरह चल रहे थे, उसी तरह चलते रहे। अंगुलिमाल हाथ में तलवार लिए उनको पकड़ने दौड़ा और तीन योजन तक भगवान् का पीछा करता रहा। भगवान् साधारण चाल से ही चल रहे थे, और अंगुलिमाल अपनी पूर्ण शक्ति से दौड़ रहा था, पर भगवान् को पकड़ न पाता था। कुछ निकट पहुँचकर उसने जोर से अपनी तलवार भगवान् पर फेंकी, परंतु तलवार भगवान् के न लगकर बहुत दूर जाकर गिरी। आखिर जब वह भगवान् को न पकड़ सका, तो

किटकिटाकर बोला—"मैं तुमसे ठहरो-ठहरो कहता हूँ, पर तुम भागे ही जाते हो और मुझसे झूठ बोलते हो कि मैं ठहरा हूँ। यही तुम्हारा ठहरना है?" भगवान् बोले—"हे अंगुलिमाल! मैं तुमसे सच कहता हूँ कि इस संसार के भीतर एक मैं ही स्थिर हूँ, और सब संसार चल रहा है; और तुम तो सबसे अधिक चल रहे हो, फिर भी तुम्हारी आँखें नहीं खुलतीं?" भगवान् के इतना कहते ही अंगुलिमाल के ज्ञान-पटल खुल गए। वह भगवान् के पाद-पद्मों में गिरकर क्षमा माँगने लगा। भगवान् ने उसका अपराध क्षमा कर उसे अपने संग जेतवन विहार में ले आए और प्रव्रज्या देकर उसे अपने भिक्षु-संघ में मिला लिया।

सायंकाल के समय महाराज प्रसेनजित भगवान् के दर्शनों के लिये आए और अंगुलिमाल के अत्याचार की बात कहकर, उसे पकड़ने के लिये स्वयं जाने की इच्छा प्रकट की, और इसकी सफलता के लिये भगवान् से आशीर्वाद माँगा। भगवान् अंगुलिमाल की ओर अँगुली उठाकर मुसकिराकर बोले—"महाराज! आप जिस अंगुलिमाल के पकड़ने के लिये इतने विकल है, वह तो आपके निकट ही बैठा है।" राजा ने अंगुलिमाल की ओर देखा, तो उसे शांत, सौम्य भिक्षु-रूप में पाकर वह बहुत विस्मित हुए और भगवान् की अगाध महिमा को समझकर अत्यंत पुलकित और गद्गद् होकर चरणों पर गिर पड़े। इस वर्ष भगवान् ने अपना वर्षावास श्रावती के जेतवन विहार में ही समाप्त किया।

शाक्य-राज्य का अंत

श्रावस्ती से भगवान् भिक्षु-संघ-समेत देश-परिभ्रमण को निकले और धर्म-प्रचार करते हुए कपिलवस्तु पहुँचे। वहाँ न्यग्रोधाराम में रहकर भगवान् ने इस साल अपना वर्षावास वहीं व्यतीत किया। इस समय महानाम-नामक भगवान् बुद्ध के चचेरे भाई महाराज शुद्धोदन के राज्य के अधिकारी होकर कपिलवस्तु का राज्य करते थे। भगवान् ने इस बचे-बचाए शाक्य-वंश के राजा को भी अपना अलौकिक उपदेश देकर मुग्ध कर लिया, और शाक्य-वंश का अंतिम राजा भी भगवान् का शिष्य होकर भिक्षु-संघ में मिल गया। अब शाक्य-राज्य एकदम ध्वंस हो गया, क्योंकि शाक्य-वंश में कोई राज्य का उत्तराधिकारी नहीं रहा।

आलवक-यक्ष की कथा

कपिलवस्तु से चलकर भगवान् श्रावस्ती होते हुए आड़विक-नामक ग्राम में पहुँचे। यह आड़विक-ग्राम श्रावस्ती से तीस योजन दूरी पर हिमालय-पर्वत पर बसा था। इस ग्राम से कुछ दूर पर एक पीपल का पेड़ था, जिसके नीचे एक आलवक-नामक यक्ष रहता था। एक दिन आड़विक-ग्राम का राजा वन में शिकार खेलने गया था, और शिकार से लौटते समय थक जाने के कारण वह उस पीपल के पेड़ के नीचे ठहर गया। जब वह कुछ देर सुस्ताकर वहाँ से चलने लगे, तो आलवक राजा का संहार करने के लिये राह रोककर उनके सामने खड़ा हो गया। राजा डर गए, और यह प्रतिज्ञा कर बड़ी कठिनता से अपनी जान बचाई कि वह

एक हँडिया भात और एक मनुष्य प्रतिदिन उसके लिये भेज दिया करेंगे। और उस दिन से राजा यक्ष के लिये निरंतर प्रतिज्ञा किया हुआ सामान भेजने लगे। पहले तो राजा ने मंत्रियों की सम्मति से अपने यहाँ के प्राणदंड-प्राप्त अभियुक्तों को भेजना आरंभ किया; जब वह न रहे, तो दंड-प्राप्त क़ैदियों को भेजा करते थे; पर जब जेलखानों में एक भी क़ैदी न रहे, तो राजा ने अपने राज्य के चोरों को ढूँढ़-ढूँढ़कर भेजना आरंभ किया; जब चोर भी न रहे, तो बूढ़े-वृद्धों को भेजना आरंभ किया; जब वृद्ध भी न रहे, तो बारी-बारी से नए पैदा हुए बच्चों को भेजना आरंभ किया। इतने में राजा के यहाँ भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ और नियमानुसार दूसरे दिन उसको भी यक्ष के यहाँ भेजने की बारी थी। जिस दिन राजा के इस नवजात कुमार के भेजने की बारी थी, दैवयोग से उसके एक दिन पहले भगवान् बुद्ध उस नगर में पहुँचे, और उसी आलक-यक्ष के घर गए। परंतु उस समय यक्ष घर में नहीं था। भगवान् उसके दरवाज़े पर जा एक उत्तम आसन देखकर बैठ गए। जब आलवक घर आया, तो उसने भगवान् को अपने उस आसन पर बैठा देखा जिस पर वह स्वयं बैठा करता था। आलवक झुँझला-कर भगवान् से बोला— "तुम क्यों यहाँ आकर बैठे हो ? निकल जाओ।" भगवान् उसके कथनानुसार बाहर निकलकर खड़े हो गए। उसने कहा—"अच्छा आओ।" भगवान् फिर भीतर जा-कर बैठ गए। उसने फिर कहा—"निकल जाइए।" भगवान् फिर निकल गए। फिर उसने कहा—"अच्छा श्रमण ! आओ।"

इस प्रकार भगवान् उसके कहने के अनुसार तीन वार वाहर निकले और तीन वार भीतर जाकर वैठे। चौथी वार जव उसने फिर निकलने को कहा, तो भगवान् वोले—"अव तो मैं नहीं निकलूंगा, जो तेरे जी में आवे, वह कर।" यक्ष ने कहा—"अच्छा, पहले मैं तुमसे कुछ प्रश्न करता हूँ, यदि तुम उनका ठीक उत्तर न दे सके, तो मैं तुम्हारा हृदय चीरकर तुम्हें मार डालूँगा।" भगवान् वोले—"हे यक्ष! तुमने जो मारने की वात कही है, यह तुम्हारी भूल है; हमको मारनेवाला संसार में कोई पैदा नहीं हुआ है; तुम ऐसी वात न कहकर जो कुछ प्रश्न करना चाहते हो, करो। मैं तुम्हारा समाधान करूँगा।" यक्ष वोला—"हे श्रमण! मनुष्य के लिये कौन धन सवसे श्रेष्ठ है? इस संसार में मनुष्य को सुचीर्ण (सुंदर) सुख देनेवाला कौन है? इस संसार में सवसे अधिक स्वादिष्ठ वस्तु कौन है? और इस संसार में किस प्रकार का जीवन वितानेवाला मनुष्य जीवित है?"

भगवान् ने उत्तर दिया—"हे यक्ष! श्रद्धा मनुष्य के लिये सर्वोत्तम धन है। धर्म मनुष्य को सुचीर्ण (सुंदर) सुख देनेवाला है। सत्य इस संसार में सर्वोत्तम स्वादिष्ठ पदार्थ है। और प्रज्ञा से जीवन निर्वाह करनेवाला ही इस संसार में श्रेष्ठ जीवन वितानेवाला है।"

यक्ष ने कहा—"दुःख-रूपी ओघ अर्थात् नदी कैसे उतर सकते हैं? संसार-रूपी अर्णव अर्थात् समुद्र को कैसे पार कर सकते हैं? दुःख का नाश कैसे हो सकता है? और मनुष्य परिशुद्धि अर्थात् वास्तविक पवित्रता कैसे प्राप्त कर सकता है?"

भगवान् ने कहा—"श्रद्धा से दुःख-रूपी ओघ (नदी) को उतर सकते हैं। अप्रमाद के द्वारा संसार-रूपी अर्णव (समुद्र) को पार कर सकते हैं। वीर्य (पराक्रम) के द्वारा दुःख का नाश हो सकता है। और प्रज्ञा के द्वारा परिशुद्धि अर्थात् वास्तविक पवित्रता प्राप्त हो सकती है।"

यक्ष बोला—"प्रज्ञा किससे प्राप्त होती है? धन किससे मिलता है? कीर्ति किससे मिलती है? मित्र किससे मिलते हैं? और किससे इस लोक से परलोक को प्राप्त होकर फिर मनुष्य शोच नहीं करता?"

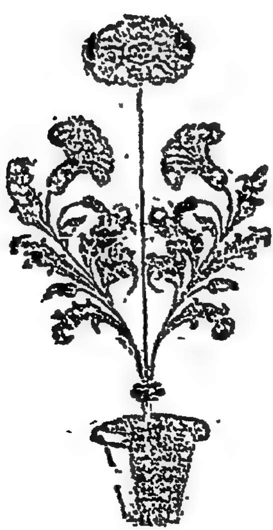
भगवान् ने उत्तर दिया—"श्रद्धावान्, अप्रमादी मनुष्य ही निर्वाण की प्राप्ति के लिये अर्हत्-धर्म सेवन करके प्रज्ञा लाभ करता है। प्रत्युपकारी सहनशील मनुष्य आलस्य-त्याग के द्वारा धन प्राप्त करता है। मनुष्य सत्य के द्वारा कीर्ति प्राप्त करता है। दान करने से मित्र मिलते हैं? जिस मनुष्य में सत्य, धर्म, धृति और त्याग, ये चारो विद्यमान होते हैं, वही मरकर इस लोक से परलोक को प्राप्त होकर फिर शोच नहीं करता।"

यक्ष भगवान् के इस प्रकार उत्तर को सुन गद्‌गद् होकर बोला—"हे भगवन्! आपके इस अमृतोपदेश को सुनकर मैं आज कृतार्थ हो गया, मेरे ज्ञान-पटल खुल गए। आपने मेरे हृदय में ज्ञान की ज्योति जला दी, अब मैं आपकी शरण में हूँ। आप मुझे अपनाइए।" भगवान् ने उसे अपनाकर उस रात यक्ष के घर में ही विश्राम किया।

सवेरा होते ही राजा ने अपने कुमार और भात की हाँड़ी को मंत्री के साथ भेजा। यक्ष राजकुमार को देखकर अपने मन में हँसा और सोचने लगा—"अब तो मैंने हिंसा, चोरी, व्यभिचार, मिथ्या वचन, और मादक-द्रव्य-सेवन तथा जुआ आदि बुराइयों का त्याग कर दिया है, अब राजकुमार को लेकर क्या करूँगा? अच्छा इसे लेकर भगवान् के अर्पण कर देना ही उत्तम होगा।" यह स्थिर करके यक्ष ने राजकुमार को मंत्री की गोद से लेकर भगवान् के चरणों में अर्पण कर दिया। भगवान् ने राजकुमार को दीर्घायु होने का आशीर्वाद देकर मंत्री की गोद में दे दिया। मंत्री राजकुमार को लिए हुए बड़े हर्ष के साथ राजा के पास पहुँचा। राजा और रानी कुमार को सकुशल पाकर और भगवान् की महिमा जानकर हर्ष और आनंद से अत्यंत प्रफुल्लित हो उठे। राजमहल में नाना भाँति के आनंद के बाजे बजने लगे। इधर मंत्री के चले जाने के बाद भगवान् यक्ष को अनेक भाँति से प्रबोध करके और आशीर्वाद देकर नगर में भिक्षा के लिये गए। राजा को जब यह बात मालूम हुई कि भगवान् बुद्ध, जिनके प्रसाद से राजकुमार की प्राण-रक्षा हुई, भिक्षा के लिये नगर में पधारे हैं, तो स्वयं आकर भगवान् को अपने राजभवन में ले गए और वहाँ राजा और रानी, दोनो ने भगवान् की अत्यंत भक्तिभाव-पूर्वक पूजा की। भोजन के पश्चात् भगवान् ने राज-परिवार को अपने धर्मोपदेश के द्वारा तृप्त किया। राजा और रानी ने भगवान् को इस वर्ष का वर्षावास अपने आलवी-ग्राम में बिताने के लिये बहुत अनुरोध और विनय की। उनकी

प्रार्थना स्वीकार करके भगवान् वहाँ से धर्म-प्रचार करते हुए श्रावस्ती गए।

श्रावस्ती में कुछ काल रहकर भगवान् अपने भिक्षु-संघ-समेत भिन्न-भिन्न स्थानों में धर्म-प्रचार करते हुए, वर्षा-ऋतु के प्रारंभ में आलवी-ग्राम में पधारे, और राजा के बनवाए हुए आराम में ठहरकर धर्मोपदेश करते हुए इस साल वहीं अपना वर्षावास किया। वर्षा बीतने पर आलवी-ग्राम से श्रावस्ती होते हुए राजगृह पहुँचे, और वहाँ गृद्धकूट पर्वत पर दो वर्ष विराजमान रहकर वहीं वर्षावास करते रहे।



९—देवदत्त का विद्रोह-कांड

देवदत्त क्यों विद्रोही बना ?

आठवें अध्याय में हम कह आए हैं कि देवदत्त भगवान् से विरोध करने लगा था। यह देवदत्त देवदह के राजा सुप्रबुद्ध का लड़का था। इसकी सगी बहन गोपा से शाक्यसिंह भगवान् गौतम बुद्ध का विवाह हुआ था, अतः यह भगवान् का साला था। देवदत्त जब भगवान् का शिष्य होकर भिक्षु बना, तो उसकी इच्छा हुई कि वह भगवान् का प्रधान शिष्य होकर समस्त भिक्षु-संघ पर शासन करे, और इसी भावना से प्रेरित होकर उसने भगवान् से एक दिन यह प्रार्थना की—"हे भगवन् ! राजा लोगों के उत्तराधिकारी युवराज होते हैं। आप धर्मराज हैं, आपको भी चाहिए कि आप अपना उत्तराधिकारी बनावें। आप कृपा करके मुझे ही अपना उत्तराधिकारी बनाकर युव-राज-पद पर अभिषिक्त कीजिए।" भगवान् ने उसके इस प्रस्ताव को बिल्कुल अस्वीकृत कर दिया। भगवान् ने स्पष्ट कह दिया—"हे देवदत्त ! सारिपुत्र * और मौद्गलायन * के रहते हम दूसरे किसी

---

* सारिपुत्र और मौद्गलायन पहले राजगृह में 'संजय'-नामक परिव्राजक के शिष्य थे। परिव्राजकाचार्य संजय के ढाई सौ परिव्राजक-शिष्य थे, उनमें सारिपुत्र और मौद्गलायन प्रधान थे। बाद में भगवान् की अमित महिमा को जानकर ये दोनो उनके अनन्य भक्त और प्रधान शिष्य हो गए। इनके शिष्यत्व की कथा पाठक चौथे अध्याय में पढ़ आए हैं।

को उस पद पर नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं समझते।" भगवान् के इस उत्तर से देवदत्त निराश और खिन्न होकर चला गया, और उसी दिन से वह भगवान् के साथ द्रोह करने लगा। देवदत्त ने महाराज बिंबसार के पुत्र युवराज अजातशत्रु को नाना भाँति के मायाजाल में फँसाकर अपने वश में कर लिया। अजातशत्रु देवदत्त का ऐसा अनन्य भक्त और अनुयायी हो गया कि वह जिस तरह उसे नचाता, उसी प्रकार वह नाचता था। अजातशत्रु ने देवदत्त के रहने के लिये गया के निकट एक अति सुन्दर विहार (मठ) बनवा दिया। देवदत्त उस मठ में रहने लगा, और अपने पाँच सौ शिष्य बनाकर भगवान् से प्रतिद्वंद्विता करने लगा। देवदत्त और उसके शिष्यों को भोजन युवराज अजातशत्रु देते थे।

संघ में भेद डालने की चेष्टा

एक दिन देवदत्त अपने कोकालिक, कतमोरतिष्य, खंडदेव और समुद्रदत्त-नामक चार प्रधान शिष्यों को साथ लेकर भगवान् के पास आया और कहने लगा कि "मैं भिक्षुओं के नियम में कुछ परिवर्तन करना चाहता हूँ। अतः आप मेरी इन पाँच बातों को स्वीकार कीजिए—

१—भिक्षु लोग जीवन भर वन में ही रहें, केवल भिक्षा के लिये ग्राम या नगर में आया करें। इसके अतिरिक्त ग्राम या नगर में भिक्षुओं के आने की कोई आवश्यकता नहीं।

२—भिक्षु लोग सदा पेड़ के नीचे या श्मशान में ही वास करें। जाड़ा, गर्मी या बरसात कभी भी कुटी या मठ में न रहें।

३—भिक्षु लोग सदा पुराने चीथड़ों को ही संग्रह करके पहनें, किसी मनुष्य का दिया हुआ नवीन वस्त्र न धारण करें।

४—भिक्षु लोग सदा घर-घर से भिक्षा माँगकर ही खाया करें, किसी एक ही दाता के घर भोजन न किया करें।

५—भिक्षु लोग सदा निरामिष भोजन करें। और भिक्षा-पात्र में कभी आमिष पदार्थ को न ग्रहण करें।"

देवदत्त के इन प्रस्तावों को सुनकर भगवान् ने कहा—"हे देवदत्त! मैं तुम्हारी इन बातों की श्रेष्ठता स्वीकार करते हुए भी इन्हें भिक्षुओं के लिये अनिवार्य नियम नहीं बना सकता कि जिनके त्याग करने से वे लोग प्रायश्चित्तीय ठहरें। मेरे माध्यमिक मार्ग में कृत, दृश्य और उद्दिष्ट हिंसा-जनित आमिष का ही त्याग है।"

भगवान् के इस स्पष्ट उत्तर को सुनकर देवदत्त यह कहकर उनके पास से उठकर चलने लगा—"चाहे आप मेरे प्रस्तावों को स्वीकार करें या न करें, परंतु मैं और मेरे अनुयायी भिक्षु लोग इन पाँच नियमों का पालन अवश्य करेंगे।"

भगवान् देवदत्त के इस प्रकार व्यवहार को देख बोले—"देवदत्त! तुमने तो संघ में भेद उपस्थित कर दिया, यह काम अच्छा नहीं किया। संघ में भेद डालनेवाला मनुष्य संसार में सबसे बढ़कर पापी कहलाता है। साधु (अच्छे आदमी) के लिये अच्छा काम करना सुगम है, परंतु दुष्ट (पापिष्ठ) मनुष्यों के लिये अच्छा काम कठिन है; उसी प्रकार दुष्ट (पापी) मनुष्यों के लिये बुरा काम

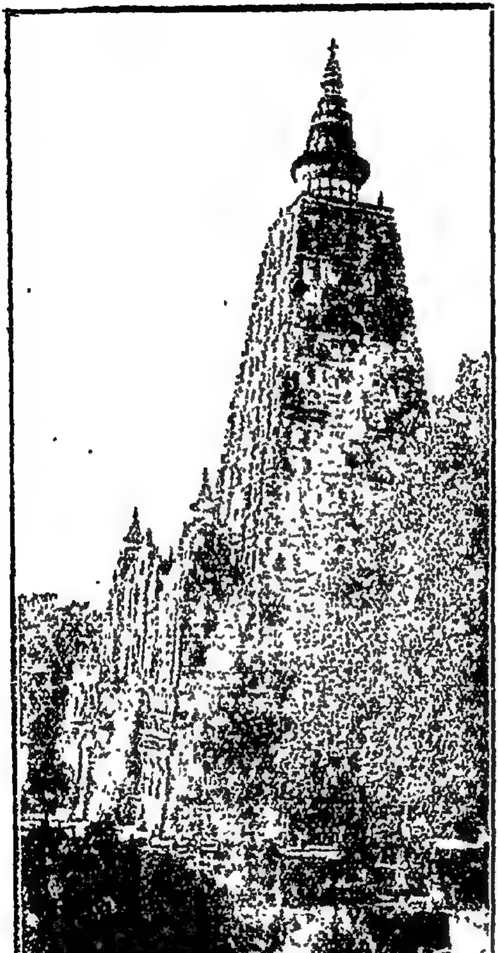
करना सुगम है, परंतु साधु (अच्छे) पुरुषों के लिये बुरे काम का करना अति कठिन है।

सुकरं साधुना साधुं, साधुं पापेन दुक्करं।
पापी पापेन सुकरं, पापमयेहि दुक्करं॥

सारिपुत्र और मौद्गलायन का प्रतिकार

भगवान् के यहाँ से निराश होकर देवदत्त अपने अल्प हृदय-वाले शिष्यों के सहित गया को चला गया। और वहाँ रहकर अपना उपदेश करता रहा। देवदत्त के चले जाने के बाद भगवान् ने उसे लौटाने के लिये उसके पास सारिपुत्र और मौद्गलायन को राजगृह से गया में भेजा। देवदत्त ने प्रसिद्ध कर दिया कि "देखो, गौतम बुद्ध के प्रधान शिष्य मेरे शिष्य होने आए हैं।" और उसने उन्हें अपने विहार में सादर ठहरने को स्थान दिया। किंतु देवदत्त प्रमत्त होकर आलस्य में पड़ गया, और सारिपुत्र तथा मौद्गलायन ने भिक्षु-संघ को मध्यमा-प्रतिपदा अर्थात् बुद्ध-आविष्कृत माध्यमिक मार्ग का उपदेश देना आरंभ किया। उन्होंने सबको स्पष्ट रूप से भली भाँति लिखा दिया कि "निर्वाण न तो दुःख सहने से लाभ हो सकता है, और न सुख में लिप्त होने से उसकी प्राप्ति हो सकती है।"

इस प्रकार सब भिक्षुओं को भली भाँति प्रबोध करके सारिपुत्र और मौद्गलायन जब गया से राजगृह चलने लगे, तो देवदत्त के साथ के सभी भिक्षु लोग उसे छोड़कर उनके साथ राजगृह चले आए। अब देवदत्त वहाँ अकेला रह गया। जब भिक्षुओं ने देवदत्त का साथ छोड़ दिया, तो देवदत्त की क्रोधाग्नि प्रचंड होकर और भी भड़क उठी,



बोधगया का मन्दिर

बुद्ध भगवान को यहीं महान ज्ञान प्राप्त हुआ था यह हमारी द्वितीय विजय है। भगवान ने माया, सत्य और अज्ञानता पर विजय पाई थी; यह हमारे लिए कैसी सौभाग्य की बात है। मान लो, यदि उन्होंने यह ज्ञान न पाया होता? संसार में कितना भय, कैसा अंधकार फैला होता? और वह अंधकार—अज्ञानता का अंधकार! पर हमारे भगवान ने ज्ञान प्राप्त किया, जिससे हमें सुख और प्रकाश—संसार का सर्वोत्तम प्रकाश, यानी सत्य का प्रकाश—मिला। हमारे भगवान ने हमें निर्वाण का मार्ग बताने ही के लिए उसे प्राप्त किया था; यह संसार के लिए कैसे हर्ष, कैसे प्रकाश, कैसे सौभाग्य की बात है। आइये, इस उद्धारक को, प्रतिदिन और हमेशा, सहस्र बार—नहीं, कोटि बार—प्रणाम करें।

अब वह भगवान् के प्राण लेने के उपाय करने लगा। और इस कुमंत्रणा के लिये वह अजातशत्रु के पास गया।

अजातशत्रु की जन्म-कथा

मगध के राजा महाराज बिंबसार का विवाह कोशलराज महाराज प्रसेनजित की बहन के साथ हुआ था। इस रानी को जब गर्भ था, तो गर्भावस्था में उसे अपने स्वामी का रक्त पान करने की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न हुई। महाराज बिंबसार ने किसी तीक्ष्ण अस्त्र के द्वारा अपने कंधे से रक्त निकालकर रानी को पान करने के लिये दिया। इस घटना को सुनकर ज्योतिषी विद्वानों ने कहा कि "इस रानी के गर्भ से जो लड़का उत्पन्न होगा, वह अपने पिता को मारनेवाला होगा और अपना प्रतिद्वंद्वी किसी को नहीं रक्खेगा।" ज्योतिषियों की यह बात सुनकर रानी गर्भपात करने के लिये प्रयत्न करने लगीं, परंतु राजा के सावधान रहने और उपदेश करते रहने के कारण रानी अपने गर्भपात के संकल्प को पूरा न कर सकीं। यथासमय रानी के पुत्र उत्पन्न हुआ। इस पुत्र के गर्भ में आने के समय से ही लोग इसे "पिता को मारकर प्रतिद्वंद्वी-रहित होगा" ऐसा समझते थे, इसी कारण इसका नाम 'अजातशत्रु' पड़ा। जब अजातशत्रु सोलह वर्ष का हुआ, तो युवराज-पद पर अभिषिक्त हुआ, और देवदत्त ने उसे अपने मायाजाल में फाँसकर अपना आज्ञानुवर्ती बना लिया।

जब देवदत्त ने अपने आप को भगवान् के मार डालने में असमर्थ देखा, तो इस दुष्कर्म में सहायता लेने के लिये वह अजातशत्रु के पास गया। उसने अजातशत्रु को समझाया—"हे युवराज!

मनुष्य का जीवन बहुत थोड़ा है, अब कोई पहले की तरह दीर्घजीवी नहीं होता, इसलिये यदि तुम कुछ काल राज्य-सुख भोग करना चाहते हो, तो तुमको उचित है कि तुम अपने पिता बिंबसार को मारकर निर्द्वंद्व हो राज्य-सुख भोग करो, और हम भी तथागत को मार बुद्ध बनकर निष्कंटक हो बुद्ध की तरह मान-प्रतिष्ठा प्राप्त करें।"

इस प्रकार देवदत्त की कुमंत्रणा में पड़कर अजातशत्रु उधर अपने पिता महाराज बिंबसार को मार डालने के लिये तरह-तरह की चालें चलने लगा, और इधर देवदत्त अपने गुरु भगवान् बुद्ध के मार डालने का कौशल करने लगा।

देवदत्त की भगवान् के प्राण लेने की चेष्टा

इस प्रकार अजातशत्रु से कुमंत्रणा करके देवदत्त ने नालागिरि-नामक उन्मत्त हाथी को नौ मन मदिरा पिलाकर जिधर से भगवान् आ रहे थे, उसी रास्ते पर छुड़वा दिया। वह बंधन-मुक्त उन्मत्त हाथी उस रास्ते में जो कुछ मिलता, उसे ध्वंस करता हुआ भीषण वेग से दौड़ रहा था। लोग भयभीत, शंकित और त्रस्त थे। आज नालागिरि के पदाघात से मर्दित होकर भगवान् की मृत्यु हो जायगी, इस आशंका से व्याकुल होकर लोग दौड़े हुए भगवान् के पास गए और उनसे उस मार्ग से हट जाने की प्रार्थना की। भगवान् ने कहा—"डरो मत, हाथी हमारा मित्र है।" भगवान् ने मैत्री-भावना से हाथी को आप्लावित कर दिया, और आश्चर्य है कि वह मनुष्यघातक उन्मत्त हाथी भगवान् के आगे अति सौम्य-भाव से आकर अपनी सूँड़ नीची करके खड़ा हो गया, और

सूँड़ से भगवान् की चरण-धूलि लेकर अपने शिर पर डालने लगा। भगवान् ने भी प्यार से अपने दाहिने हाथ से नालागिरि के कुंभ को स्पर्श किया। नालागिरि सूँड़ से भगवान् के चरण चाटकर अपने हयसाल को लौट गया। इस घटना से देवदत्त अपने मन में बड़ा लज्जित हुआ, किंतु दुष्टता नहीं छोड़ी। अब उसने अजातशत्रु की सहायता से ३० धनुर्धारी सैनिकों को भगवान् को मार डालने के लिये एक-एक करके भेजा, किंतु कोई भी सैनिक भगवान् के निकट पहुँचकर उनपर शस्त्र-प्रहार न कर सका। उल्टे सब उनके शिष्य हो गए। इस घटना से देवदत्त और भी लज्जित हुआ। किंतु दुष्ट जन बार-बार लज्जित होने पर भी दुष्टता नहीं छोड़ते। देवदत्त सब उपाय करके हार गया, तो एक दिन जब भगवान् गृद्धकूट पर्वत के नीचे से जा रहे थे, तो उनको मार डालने के लिये उसने पहाड़ पर से एक बड़ा-सा पत्थर लुढ़का दिया; परंतु भगवान् उससे बाल-बाल बच गए, केवल उनके बाएँ पैर के अँगूठे में चोट आ गई। भगवान् को इससे अधिक पीड़ा हुई, और इसकी चिकित्सा के लिये राज-चिकित्सक 'जीवककुमार' बुलाए गए।

जीवककुमार की कथा

जीवककुमार राजा बिंबसार के पुत्र अभयकुमार से किसी वेश्या के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। बड़े होने पर जीवक के मन में आया कि मैं वेश्या के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण पिता की संपत्ति का उत्तराधिकारी नहीं हो सकता, अतः मुझे अठारह विद्या और चौंसठ कलाओं में से किसी में निपुणता प्राप्त करके मान-प्रतिष्ठा-पूर्वक

स्वाधीन जीवन व्यतीत करना चाहिए। यह सोचकर मन में दृढ़ संकल्प करके जीवक उस समय के सुप्रसिद्ध तक्षशिला के विश्व-विद्यालय की ओर चले गए और सुदूरवर्ती तक्षशिला के विश्व-विद्यालय में पहुँचकर वहाँ के आयुर्वेदाध्यापक से, जिनका नाम आत्रेय था, मिलकर सविनय अपना अभिप्राय प्रकट किया। अध्यापक आत्रेय ने जीवक से कहा—"हम तुम्हें अच्छी तरह से आयुर्वेद का अध्ययन कराकर निपुण कर देंगे, परंतु यह बताओ कि तुम हमें कितना वेतन दिया करोगे ?" जीवक ने कहा—"मैं किसी से बिना कहे घर से भागकर चला आया हूँ, इस अवस्था में मैं आपको कुछ भी नहीं दे सकता, हाँ यदि आप मुझे शिक्षित बना देंगे, तो मैं आपका चिरऋणी और सेवक बना रहूँगा।" जीवक की बात सुन-कर अध्यापक आत्रेय संतुष्ट हुए, और उन्हें चिकित्सा-शास्त्र पढ़ाने लगे। जीवककुमारने अपनी तीव्र बुद्धि के कारण केवल सात वर्ष उस विद्यालय में अध्ययन करके अन्यान्य विद्याओं के साथ चिकित्सा-शास्त्रमें अच्छी दक्षता प्राप्त कर ली। तब आत्रेय अध्यापक ने उनकी परीक्षा लेने के लिये एक दिन कहा—"इस विश्वविद्यालय के चारो ओर सोलह मील के बीच में जो गुल्म, लता, वृक्ष आदि लगे हैं, उनमें ओषधि के काम की कौन-सी चीज़ नहीं है, इसका अनुसंधान करके हमसे बतलाओ।" अध्यापक की आज्ञानुसार जीवककुमार ने कई दिन तक अनुसंधान करने के बाद अध्यापक से आकर कहा—"हे आचार्य ! मैंने आपकी आज्ञानुसार सब गुल्म, लता वृक्ष आदि को देख डाला, परंतु मेरी समझ में उनमें से एक भी ऐसी न निकली जो ओषधि-प्रयोग में न आती

हो।" अध्यापक यह बात सुनकर जीवककुमार पर बड़े प्रसन्न हुए, और आशीर्वाद देकर बोले—"जीवक! अब तुम अपने घर जाओ।" आचार्य की आज्ञानुसार जीवककुमार ने तक्षशिला से अपने घर राजगृह की ओर प्रस्थान किया, और रास्ते में वह साकेत (अयोध्या) और वाराणसी (बनारस) आदि स्थानों में ठहरते बहुत-से रोगियों की चिकित्सा करके सफलता और प्रसिद्धि प्राप्त करते हुए राजगृह आए। राजगृह में एक वार महाराज बिंबसार असाध्य अर्श-रोग से ऐसे ग्रस्त हो गए थे कि सभी चिकित्सक चिकित्सा करके हार गए, और महाराज अच्छे न हुए। अंत में जीवककुमार ने राजा की चिकित्सा करके उन्हें अच्छा किया। तबसे महाराज बिंबसार जीवककुमार को बहुत प्यार करने लगे और अपने यहाँ उन्हें 'राज-चिकित्सक' के पद पर नियुक्त किया। आगे चलकर जीवककुमार ने अपनी चिकित्सा में इतनी प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा प्राप्त की कि दूर-दूर के बड़े-बड़े राजा लोग महाराज बिंबसार को आवेदन-पत्र भेजकर चिकित्सक जीवककुमार को अपने यहाँ बुलाकर आरोग्यता प्राप्त करते थे। एक वार उज्जयिनी के राजा चंद्रप्रद्योत उत्कट पांडु-रोग से ग्रसित हुए, उन्होंने भी जीवककुमार की सुख्याति सुनकर महाराज बिंबसार के पास प्रार्थना-पत्र भेजा, और राज-चिकित्सक जीवककुमार को बुलाकर आरोग्यता लाभ की। जीवककुमार परम साहसी, बुद्धि-कुशल, अठारह विद्या और चौंसठ कलाओं के ज्ञाता, आयुर्वेदाचार्य और सुचिकित्सक होते हुए भी हम लोगों के विशेष श्रद्धा और धन्यवाद के पात्र इसलिये हैं कि वह विश्व-व्याधि-

विनाशक, परम चिकित्सक भगवान् बुद्ध के भी चिकित्सक थे। यही नहीं, वह भगवान् के बड़े भक्त भी थे, आवश्यकता पड़ने पर भगवान् और उनके भिक्षु-संघ की चिकित्सा किया करते थे।

भगवान् के चोट लगने का समाचार सुनकर जीवककुमार तुरंत दौड़े हुए आए। और देखा कि भगवान् का बायाँ अँगूठा बहुत चोट खा गया है, उसमें बहुत पीड़ा है। यह देखकर वह दुखी हुए और बहुत सावधानी के साथ मलहम-पट्टी करके भगवान् से बोले—"हे भगवन्! आपको लोग रोग-हीन, शोक-हीन, सर्वज्ञ और भव-बंधन-विमुक्त कहते हैं, फिर आपको कष्ट कैसा?" भगवान् बोले—"हे जीवक! रोग-हीन, शोक-हीन, सर्वज्ञ और विमुक्त पुरुष को भी, जिसकी सब ग्रंथियाँ छूट गई हैं, कष्ट तो होता ही है; परंतु उस कष्ट से उन्हें संसार-रत जीवों की तरह राग और द्वेष उत्पन्न नहीं होता, वह "संसार का यही धर्म है" ऐसा समझकर उसे सह लेते हैं; सुख-दुःख से उनके चित्त में चंचलता नहीं उत्पन्न होती। यही मुक्त और बद्ध पुरुषों में अंतर है।" जीवककुमार भगवान् के इस उपदेश को सुनकर अत्यंत पुलकित हो उनके चरणों पर गिर पड़े और उनके धर्म में दीक्षित होकर भगवान् के अनन्य भक्त गृहस्थ-शिष्य हो गए। आगे चलकर जीवककुमार ने भगवान् और उनके संघ की चिकित्सा और अनेक प्रकार की सेवा करने के अतिरिक्त अपने उद्यान में एक विहार बनवाकर भगवान् को भिक्षु-संघ-सहित रहने के लिये अर्पण कर दिया, और वह प्रतिदिन तीन बार भगवान् के दर्शन किया करते थे।

अजातशत्रु का अपने पिता के प्राण लेना

राजगृह में देवदत्त का भी प्रभाव बहुत बढ़ गया था, वह राजकुमार अजातशत्रु का गुरु बना हुआ था, इसलिये उसकी बहुत बड़ी धाक बँध गई थी और राजकुमार अजातशत्रु उसके हाथ की कठपुतली बना हुआ था। देवदत्त की कुमंत्रणा में पड़कर राजकुमार अजातशत्रु अपने बूढ़े पिता को मारने गया। महामंत्रियों ने उसे रोककर कारण पूछा। उसने कहा—"मैं राज्य चाहता हूँ।" यह खबर सुनकर महाराज ने उसे राज्य दे दिया। तब देवदत्त ने कुमंत्रणा करके महाराज बिंबसार को क़ैद करा दिया। और क़ैद में सिवाय महारानी के कोई उनसे मिल नहीं सकता था। महाराज बिंबसार अजातशत्रु के इस दौरात्म्य से बहुत दुःखित थे।

भगवान् बुद्ध कुमार अजातशत्रु की इस क्रूरता को देखकर बड़े खेदित हुए और किसी तरह अपना वर्षावास बिताकर राजगृह से श्रावस्ती को चले गए। राजगृह में उनका यह अंतिम वर्षावास था, आगे के लिये उन्होंने निश्चय किया कि अब श्रावस्ती में ही वर्षावास करेंगे। अतः अब से भगवान् जब तक जीवित रहे, प्रायः श्रावस्ती में ही वर्षावास करते रहे। अन्य ऋतुओं में कोशल, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा, कौशांबी, काशी, वैशाली, राजगृह इत्यादि स्थानों में परिभ्रमण करके अपना धर्मोपदेश करते थे और वर्षा में श्रावस्ती आ जाते थे। इस प्रकार श्रावस्ती के जेतवन विहार में भगवान् ने सब २५ वर्षावास किए।

भगवान् बुद्ध के राजगृह त्यागकर चले जाने से अजातशत्रु तथा

देवदत्त और भी निःशंक हो गए। राजकुमार अजातशत्रु ने देवदत्त के परामर्श के अनुसार बूढ़े महाराज बिंबसार का भोजन बंद कर दिया। तब महारानी छिपाकर उन्हें भोजन पहुँचाती रहीं। अजातशत्रु ने अपने गुप्तचरों से खबर पाकर महारानी को एकवसना होकर जाने की आज्ञा दी। तब वह अपने शरीर में भोजन-पदार्थ का लेपन करके जाने लगीं, और राजा बंदीगृह में उनका शरीर चाटकर जीते रहे। अंत में उसने पानी भी बंद कर दिया, और महाराज ने क्षुधा-पिपासा से तड़पकर प्राण विसर्जन कर दिए।

जिस दिन महाराज बिंबसार ने कारागृह में अपने प्राण त्याग किए, उसी दिन अजातशत्रु की रानी को पुत्र उत्पन्न हुआ। इधर महाराज की मृत्यु-समाचार का पत्र लेकर कारागृह से आदमी आया और उधर घर से पुत्र-जन्म का समाचार आया। चतुर राजकर्मचारियों ने इन दोनो समाचारों में से पहले पुत्र-जन्म का मंगल-समाचार राजा को सुनाया, जिसे सुनकर राजा आनंद के मारे विह्वल हो उठा। मंत्रियों से कहने लगा—"अहह ! मेरे जन्म के समय मेरे पिता भी ऐसे ही आनंद से आह्लादित और विह्वल हो उठे होंगे।" मंत्रियों ने यह ठीक अवसर समझकर महाराज बिंबसार की मृत्यु का पत्र, जो कारागार के प्रधान कर्मचारी ने भेजा था, उसी समय अजातशत्रु के हाथ में दे दिया। पिता की मृत्यु का समाचार पढ़कर अजातशत्रु व्याकुल होकर अत्यंत विलाप करने लगा, और अपने कुकर्मों पर अत्यंत पश्चात्ताप करता हुआ श्मशान पर जाकर अपने पिता की अंत्येष्टि-क्रिया की।

अजातशत्रु का विरक्त-भाव

पिता की मृत्यु से राजा अजातशत्रु के चित्त को बहुत चोट पहुँची। अब उनके चित्त में पहले के-से भाव नहीं रहे। जिस स्वाधीन राज-सुख के लिये वह इतना लालायित थे, वह उन्हें फीका मालूम होने लगा। सांसारिक सुख और ऐश्वर्य उनके लिये नीरस हो गए। पिता की मृत्यु के दिन से राजा अजातशत्रु को किसी दिन रात्रि को सुख-पूर्वक निद्रा नहीं आई। अब राजा अजातशत्रु को देवदत्त और उसके उपदेश दुःखद और भयावने प्रतीत होने लगे। 'राज-कार्य में राजा का चित्त नहीं लगता है, वह हर समय अन्यमनस्क रहते हैं, रात्रि में सुखपूर्वक किसी दिन नहीं सोते', यह अवस्था देखकर मंत्री लोग अत्यंत चिंतित हो राज्यवैद्य जीवककुमार से इसके उपाय के लिये सलाह करने लगे।

एक समय शरद्-ऋतु में पूर्णिमा तिथि को राजगृह में श्येनकेलि-महोत्सव के उपलक्ष्य में सब लोग बड़े समारोह के साथ एकत्र होकर आनंद-प्रमोद मना रहे थे। सबों की यह अभिलाषा थी कि महाराज अजातशत्रु भी इस आनंद में सम्मिलित होकर मग्न हों और उनका शोक-संतप्त हृदय शीतल हो। सबके निमंत्रण से महाराज अजातशत्रु उस महोत्सव में पधारे, किंतु वह उसी भाँति निस्तब्ध भाव से बैठे रहे, उनको यह कुछ अच्छा नहीं लगा। उन्होंने आह भरकर कहा—"क्या कोई ऐसा भी योग्य महापुरुष है जिसके पास जाकर हम अपने हृदय की ज्वाला को शीतल कर सकें?" महाराज के शोका-कुल हृदय की बात सुनकर मंत्री लोगों में से किसी ने पूर्णकाश्यप को

बताया, किसी ने मस्करीगोशाल को बताया, किसी ने निर्ग्रंथनाथ-पुत्र को बताया, इसी प्रकार सबने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार अपने-अपने गुरुओं और उस समय के प्रसिद्ध महात्माओं के नाम लिए। किंतु राजा इन लोगों की बात सुनकर ज्यों-के-त्यों चुपचाप बैठे रहे। इस आनंदोत्सव में राज-चिकित्सक जीवककुमार भी मौजूद थे, महाराज अजातशत्रु उनकी ओर देखकर बोले—"सुहृद्वर जीवक! तुमने कुछ नहीं कहा।" जीवककुमार ने कहा—"महाराज! सौभाग्य से आजकल हमारे आम्रोद्यान में एक हज़ार दो सौ पचास भिक्षुओं की शिष्य-मंडली के सहित सर्वोत्तम मुनिपुंगव भगवान् बुद्ध विराजमान हैं। वह ज्ञान, पवित्रता और शांति के भंडार, करुणा की मूर्ति और मुमुक्षुओं के एकमात्र पथ-प्रदर्शक हैं। आप उनके पास चलिए, तो अवश्य शांति पाइएगा।" जीवक की बात महाराज को पसंद आई। और उन्होंने उसी समय भगवान् के निकट चलने की इच्छा प्रकट की।

अजातशत्रु का भगवान् के पास गमन

राजा की आज्ञा से उसी रात्रि में पाँच सौ हाथी बहुत जल्द सुसज्जित करके तैयार किए गए। उन हाथियों पर उत्तमोत्तम वेष-भूषा से सुसज्जित अस्त्र-शस्त्र और मशालें हाथ में लिए हुए परम सुंदरी रमणियाँ सवार हुईं, तथा एक सुसज्जित हाथी पर महाराज और जीवककुमार सवार हुए और वह हस्ती-आरूढ़ रमणियाँ महाराज को वेष्टित करके चलीं। इस प्रकार समारोह के साथ राजा अजातशत्रु जीवक के आम्रोद्यान की ओर भगवान् बुद्ध के दर्शन के लिये जा रहे थे। जब राजा उस विशाल आम्रोद्यान के निकट पहुँचे, तो अचानक

भय से काँप उठे, उनके पाप ने अपना भीषण आतंक दिखाकर एक बार उन्हें फिर भयभीत कर दिया और आशंकाओं से उनके शरीर के रोएँ खड़े हो गए। वह भयभीत हो अवरुद्ध कंठ से जीवककुमार से कहने लगे—"जीवक! क्या तुमने हमारे साथ छल किया है? क्या धोके से यहाँ लाकर तुम हमें शत्रु के हाथ में अर्पण करोगे? तुम्हारे कथनानुसार एक हज़ार दो सौ पचास आदमी जिस स्थान में इकट्ठे हों, उस स्थान पर इस प्रकार की निस्तब्धता कैसे हो सकती है? यहाँ तो एक खाँसी या एक छींक तक की भी आवाज़ नहीं सुनाई देती।"

घबराए हुए राजा की बात सुनकर जीवककुमार बोले—"महाराज! हमने आपके साथ छल नहीं किया है। हम आपको शत्रु के हाथ में अर्पण करने की नीयत से कपट करके नहीं लाए। हम इस तरह के पाषण-हृदय और पापी नहीं हैं। वह जो कपड़े के पंडाल में दीपक जलता हुआ दिखाई पड़ता है, आप उसी ओर चलिए। वहाँ भगवान् विराजमान हैं।" जहाँ तक हाथी जा सकता था, राजा वहाँ तक हाथी पर सवार रहे और आगे हाथी से उतरकर चले। भगवान् के पास पहुँचकर राजा जीवक से बोले—"भगवान् बुद्ध कहाँ हैं?" जीवक ने कहा—"वह देखिए, बीच के खंभे के सामने पूर्व-मुख, शिष्य-मंडली से वेष्टित भगवान् बुद्ध विराजमान हैं।" यह बात सुनकर राजा आगे बढ़े और बड़ी भक्ति एवं नम्रता के साथ एक ओर खड़े हो गए। राजा ने उस प्रशांत निशा में गंभीर दृष्टि से उस विशाल भिक्षु-समूह को इस तरह बैठे हुए देखा, मानो निस्तरंग निर्मल हृद की तरह भिक्षु-मंडली नीरव और प्रशांत है। राजा उच्छ्वास-पूर्वक

बोल उठे—"क्या ही सुंदर, नीरव और प्रशांत दृश्य है। हमारे प्राण-प्रिय कुमार उदायिभद्र का भी जीवन इसी प्रकार शांति-पूर्ण हो।"

अजातशत्रु को उपदेश—भिक्षु-जीवन का प्रत्यक्ष फल

इसके बाद राजा भगवान् बुद्ध तथा उनकी शिष्य-मंडली को भक्तिभाव-पूर्वक प्रणाम करके बैठे और कहने लगे—"यदि भगवान् की आज्ञा हो, तो हम कुछ पूछें ?"

भगवान् बोले—"हे राजन्! जो तुम्हारी इच्छा हो, पूछ सकते हो।"

भगवान् की आज्ञा पाकर राजा ने कहा—"हे भगवन्! संसार में हम देखते हैं, नाना श्रेणी के लोग नाना भाँति के काम करते हैं, यथा सारथी, अश्व-रक्षक, तीरंदाज़, रथ-वाहक, सेनापति, सैनिक, पाचक, नापित, माली, मोदक, तंतुवाय, कुम्हार, ज्योतिषी और सचिव इत्यादि अनेक श्रेणी के लोग अपनी-अपनी जीविका अर्जन करते तथा अपनी वृत्ति के द्वारा इसी जीवन में अपने कर्म का पुरस्कार लाभ करते हैं। ये लोग अपने परिश्रम से प्राप्त धन के द्वारा अपने कुटुंब-परिवार का पालन करते हुए बंधु-बांधवों-सहित नाना प्रकार के सुख-भोग-पूर्वक अपने जीवन को बिताते हैं, और उसी कमाई में से कुछ दान-पुण्य करके अपने परलोक को भी बनाते हैं। जैसे संसारी लोग इस प्रकार कालक्षेप करके इसी जीवन में अपने परिश्रम का प्रत्यक्ष फल प्राप्त करते हैं, क्या इसी प्रकार संसार-त्यागी श्रवण लोग भी कोई प्रत्यक्ष फल पाते हैं ?"

राजा की बात सुनकर भगवान् बोले—"महाराज! आपने यह प्रश्न क्या पहले भी किसी श्रवण या ब्राह्मण से किया था ?"

राजा ने कहा—"हाँ, इस समय के प्रसिद्ध पूर्णकाश्यप और मस्करीगोशाल आदि जो छः तीर्थंकर हैं, उन सबसे मैं यह प्रश्न कर चुका हूँ, किंतु किसी के भी उत्तर से मेरे हृदय को संतोष नहीं हुआ, इसलिये मैं वही प्रश्न आपसे करके आशा करता हूँ कि आप इसका उत्तर देकर मेरे हृदय को शांत करेंगे।"

भगवान् बोले—"हे राजन्! मैं आपसे एक प्रश्न करता हूँ, आप पहले उसका उत्तर दीजिए। आपके दासगण प्रतिदिन सवेरे से संध्या तक परिश्रम करके आपकी सेवा करते हैं, वह जी-तोड़ परिश्रम करते हैं और आप उससे सुख-भोग करते हैं। यदि आपके इन दासों में से कोई एक दास यह विचारकर कि 'थोड़े-से जीवन के लिये कौन इतनी पराधीनता स्वीकार करके रात-दिन कष्ट भोगे', साधु हो जाय और एकांत में रहकर, युक्ताहार-पूर्वक, अपनी इंद्रियों का संयम करने लगे, तो क्या आप उसे दास बनने के लिये फिर बाध्य करेंगे?"

राजा ने कहा—"ऐसा होने पर तो उसको 'दास' बनने के लिये कभी नहीं बाध्य करेंगे, वरन् उसका सम्मान करेंगे और यथा-शक्ति उसकी सेवा-सत्कार करेंगे।"

भगवान् बोले—"महाराज! तब तो आपको यह मानना पड़ा कि श्रवण होने से इसी जीवन में कुछ-न-कुछ प्रत्यक्ष फल मिलता है। इसी प्रकार यदि कोई स्वाधीन-जीवी संपन्न गृहस्थ अपनी सब संपत्ति त्यागकर एकांत-सेवी हो इंद्रिय-संयम के द्वारा यति-धर्म का पालन करे, तो वह लोक में अवश्य पूजित होगा, इसमें तो कोई आश्चर्य ही नहीं। किंतु यह प्रत्यक्ष फल उसके लिये एक साधारण-सी

बात है, त्याग-शील पुरुषों को इसके अतिरिक्त और भी अनेक फल प्राप्त होते हैं, हे राजन्! ध्यान देकर सुनो।"

"पृथ्वी पर यदि किसी ऐसे प्रबुद्ध श्रवण के दर्शन मिल जायँ जो विगत-स्पृह, काम-शून्य और पूर्ण ज्ञान लाभ कर चुके हैं, तथा जो इंद्रिय-जयी होकर राग, द्वेष और मोह की वृत्तियों पर विजय प्राप्त करके पूर्ण सत्य के अनुसंधान द्वारा प्रसन्न रहते हैं, तो ऐसे महापुरुष के दर्शन से संसारी मनुष्य सब प्रकार के बंधन से मुक्त हो जाता है और उसे फिर दुःख और विघ्नों से भरा हुआ संसारी-जीवन अच्छा नहीं लगता। जिस प्रकार पिंजड़े में बंद पक्षी दूसरे उड़ते हुए पक्षी को देखकर अपनी स्वाधीन शक्ति की बात स्मरण करके विकल होता और पिंजड़े से छूटने की इच्छा करता है, उसी प्रकार मुक्त पुरुषों के दर्शन करके विडंबित जीवन-ग्रस्त संसारी लोग भी मुमुक्षु बनते हैं। एक परमोत्कृष्ट आदर्श जीवन को देखकर मनुष्य अपने जीवन को समुन्नत साधु-जीवन बनाकर शांति लाभ करते हैं। मनुष्य समुन्नत भिक्षु-जीवन लाभ करके एकांतवासी होता और निरंतर आत्म-संयम करके सर्वदा सतर्क रहता है; जिन कामनाओं से लोभ का उद्रेक होकर मनुष्य विपद्-ग्रस्त होता और अनेक कष्ट भोगता है, उससे वह साधु हमेशा अलग रहता है। वह सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते, चलते-फिरते हर समय आत्म-संयम का ध्यान रखता है। इस प्रकार वह भिक्षु बंधन-मुक्त पक्षी की तरह स्वच्छंद विचरण करने का सुख प्राप्त करता है, और उसे कामनाएँ विचलित नहीं कर सकतीं। उसकी विषय-भोग-इच्छा धीरे-धीरे

निवृत्त हो जाती है और वह परम सुख और शांति को लाभ करता है। यह बात अवश्य है कि इस प्रकार विडंबित सांसारिक जीवन त्याग करके पारमार्थिक उन्नततर जीवन लाभ करने में अनेक प्रकार के बाधा और विघ्न उपस्थित होते हैं, परंतु अभ्यासी मनुष्य जब उन बाधा-विघ्नों को पार करके अपने ध्येय को प्राप्त कर लेता है, तो उसे उसी प्रकार प्रसन्नता होती है, जैसे कोई रोगी व्यक्ति रोग-व्याधि से अत्यंत कष्ट पाता हो, उसकी आँख इत्यादि इंद्रियाँ सब निस्तेज पड़ गई हों, और वह यदि फिर आरोग्यता प्राप्त करके पूर्ण स्वस्थ हो जाय, तो वह अपनी रोग की अवस्था से इस रोग-मुक्ति की अवस्था के साथ तुलना करके जिस प्रकार सुखी होता है; अथवा जैसे कोई बंदी कारागार के एक कोने में जकड़ा पड़ा कष्ट पा रहा हो और सहसा बंदीगृह से छुटकारा पाने पर जिस प्रकार वह प्रफुल्लित होता है; अथवा जैसे कोई पराधीन दास सदैव पराई आज्ञा और तावेदारी बजाने में नियुक्त हो, और दैवयोग से उसे यदि एक-दम छुटकारा मिल जाय, तो वह जैसे सुखी होता है; अथवा जैसे कोई संपन्न व्यक्ति मरुभूमि में भटककर भूख और प्यास के दुःख और नाना प्रकार की शंकाओं से व्याकुल हो गया हो, और वह सहसा किसी भरे-पुरे संपन्न ग्राम में पहुँच जाय, तो वह सुखी होता है, हे महाराज! ठीक इसी प्रकार आत्म-संयम के अभ्यास-द्वारा मनुष्य क्रमशः उन्नत भिक्षु-जीवन लाभ करके रोग-मुक्त, कारागार-मुक्त, चिर-दासत्व-मुक्त और मरुभूमि-उत्तीर्ण मनुष्य की तरह परमानंद लाभ करता है। यही भिक्षु-जीवन का प्रत्यक्ष फल है।"

"उस परमानंद-प्राप्त मनुष्य की यह प्रफुल्लता उसके हृदय के भीतर से प्रकट होती है; उसे बाहर के अवस्था-चक्र से हानि-लाभ की संभावना नहीं रहती। जिस प्रकार जल-राशि से पूर्ण गंभीर नदी ऊपर से मेघ बरसे या न बरसे, दोनो किनारों को स्पर्श करती हुई अदम्य अविच्छिन्न बहती चली जाती है, उसी प्रकार उन्नत जीवन-प्राप्त भिक्षु भी सम-भाव से एकरस होकर अपने जीवन-प्रवाह को बिताते हैं। हे राजन्! यही भिक्षु-जीवन का प्रत्यक्ष फल है।"

"हे राजन्! जब निष्कलंक सर्वांगीन पवित्र जीवन लाभ किए हुए भिक्षु का चित्त प्रशांत भाव धारण करता है, तब पाप उसे स्पर्श नहीं कर सकता और वह इस शरीर के विषय में यथार्थ ज्ञान लाभ करता है। वह समझता है कि यह शरीर क्षण-भंगुर और भूख-प्यास के ऊपर पूर्ण-रूप से निर्भर है, चावल के साथ भूसी और तलवार के साथ म्यान का जो संबंध है, वैसे ही चित्त के संग शरीर का संबंध है। चित्त वशीभूत और संयमित किया जा सकता है। संयमशील मुक्त भिक्षु इस प्रकार शक्ति लाभ कर लेता है कि वह इच्छानुसार किसी प्रकार के शरीर की कल्पना करके उसको धारण कर सकता है, वह कठिन भूमि को भेदकर उसके भीतर प्रवेश कर सकता है, वह पानी के ऊपर से चला जा सकता है, वह एक से अनेक रूप धारण कर सकता है, वह इच्छानुसार दृश्य या अदृश्य हो सकता है, वह पक्षी की तरह आकाश में उड़ सकता है। जैसे कुम्हार, सोनार और हाथी-दाँत की कारीगरी करनेवाले

तरह-तरह की मूर्तियाँ और वस्तुएँ बनाते हैं, उसी प्रकार मुक्त भिक्षु भी इच्छानुसार अनेक तरह की रचना कर सकता है। यह भिक्षु-जीवन का प्रत्यक्ष फल है।"

"हे राजन्! चित्त सम्यक् रूप से प्रशांत हो जाने से उसे जन्म-जन्मांतर की बात स्मरण हो जाती है, वह जान लेता है कि हम पूर्व-जन्मों में किन-किन अवस्थाओं में थे? कहाँ-कहाँ जन्मे? क्या-क्या किया? क्या-क्या भोगे? इत्यादि। यह भिक्षु-जीवन का प्रत्यक्ष फल है।"

"मुक्त भिक्षु सर्वोत्तम ज्ञान लाभ करके चित्त और धर्म (वस्तु) के वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार करता है। कौन व्यक्ति क्या-क्या कर्म कर रहा है और परिणाम में उसे किस-किस प्रकार का फल भोगना पड़ेगा, इसको वह इस प्रकार से देखता है, जैसे कोई ऊँचे मकान के ऊपर से नीचे के मनुष्यों को देखता हो कि कौन क्या कर रहा है? कहाँ से आ रहा है? किधर जा रहा है? यह भिक्षु-जीवन का प्रत्यक्ष फल है।"

"हे राजन्! जिस प्रकार कोई ऊँचे पहाड़ के शिखर पर खड़ा होकर नीचे बहते हुए निर्मल जल के स्रोत की ओर देखे, तो उस निर्मल जल के भीतर घोंघा, शंख, कंकड़-पत्थर, कोयला इत्यादि सब वस्तुएँ जैसी-की-तैसी साफ़ दिखाई पड़ती हैं, वैसे ही मुक्त भिक्षु वासनाओं और तृष्णाओं से घिरे हुए जीवों के कष्टों को भी प्रत्यक्ष अनुभव करता है कि कौन-से कर्म का फल विषमय है, कौन-से कर्म के द्वारा अशांति और अनर्थ उत्पन्न होता है, मनुष्य के लिये कौन-सा मार्ग

दुःख और कंटक-मय है और कौन-से कर्म के द्वारा यह सब निवारित होते हैं। मुक्त भिक्षु यह सब प्रत्यक्ष दर्शन करके कामासव, भवासव और अविद्यासव से पूर्ण-रूप से विमुक्त हो जाता है। उसकी वर्तमान कामना, भविष्यत् कल्पना और अज्ञान-जनित मोह, इन तीनो दुःखों के मूल-कारण एकदम दूर हो जाते हैं। और वह पुनः-पुनः जन्म ग्रहण करने से एकदम निष्कृति पाकर परम ज्ञान-मय, आनंद-पूर्ण जीवन लाभ करके नित्य-शांति लाभ करता है। हे राजन्! यही भिक्षु-जीवन का परम लाभ और प्रत्यक्ष फल है।"

भगवान् के मुख से इस प्रकार भिक्षु-जीवन के प्रत्यक्ष फल को सुनकर महाराज अजातशत्रु पुलकायमान होकर बोले—"हे परमाराध्य भगवन्! जैसे कोई गिरे हुए को उठा देता है, या छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर देता है, या घोर अंधकार में दीपक जलाकर प्रकाश कर देता है, या किसी भूले हुए को राह बता देता है, इसी प्रकार आपने भी नाना भाँति की उज्ज्वल और विचित्र उपमाओं द्वारा हमारे प्रश्न का उत्तर देकर, हमें सत्य का पथ दिखला दिया है, और इससे हमारा संतप्त हृदय संतुष्ट और शीतल हो गया है। अब हे भगवन्! हम आपकी शरणागत हैं। आप हमें आश्रय देकर अपने शिष्यत्व में ग्रहण कीजिए। हम जीवन-भर आपके भक्त होकर रहेंगे। हम महापापी हैं, मलिनता और दुर्बलता से घिरे तथा घोर अज्ञान से भरे हैं। हमने राज्य के लोभ से साक्षात् धर्म के अवतार देवता-स्वरूप अपने परम पूजनीय पिता को मार डाला, जो परम धर्म-निष्ठ, न्याय-परायण और उदार-चरित नृपति थे। हे भगवन्!

हमारे-ऐसे नराधम को आप आश्रय दीजिए, जिसमें आपकी कृपा से भविष्यत् में हम कोई पाप न करें।"

भगवान् बोले—"हे राजन्! तुमने पापासक्त होकर अवश्य ही घोर पाप किया है, किंतु अब तुम उसे पाप समझकर अपने मन में पछताते हो, और सबके सामने अपने पाप को स्वीकार करने में कुंठित नहीं होते हो, इस कारण हम लोगों को भी कोई आपत्ति नहीं है। क्योंकि जो पाप को पाप समझ चुका है, वह, आशा की जाती है, भविष्य में पाप नहीं करेगा।"

इस प्रकार संतप्त-हृदय महाराज अजातशत्रु भगवान् बुद्ध के पास अपने हृदय के परिताप को शांत करके बौद्ध-धर्म में दीक्षित हो एक धर्म-निष्ठ न्याय-परायण नृपति हो गए। वह पितृघाती होने के कारण निर्वाण लाभ नहीं कर सके, मरने पर उस पाप के कारण अवीचि-नामक नरक में प्राप्त हुए। किंतु भगवान् पर श्रद्धा करने के कारण भविष्य में 'प्रत्येक बुद्ध' होने के अधिकारी हो गए।

इस प्रकार भगवान् बुद्ध राजगृह से प्रस्थान कर कपिलवस्तु होते हुए श्रावस्ती पहुँचे और वहाँ जाकर जेतवन-विहार में पधारे।

देवदत्त की मृत्यु

इधर देवदत्त भगवान् के प्राण लेने में बार-बार असफल होने के कारण अत्यंत चिंताकुल रहता था, जिससे उसे क्षय-रोग हो गया था। जब उसने सुना कि उसके अनन्य भक्त राजा अजातशत्रु भी भगवान् बुद्ध के अनन्य भक्त हो गए, तो उसकी चिंताओं का ठिकाना न रहा। उसकी दुर्बलता और क्षीणता अत्यंत बढ़ जाने के

कारण बीमारी अत्यंत भयंकर हो गई। अब वह सब प्रकार से निराश हो गया। उसके कपट और पाप-कर्म उसकी आँखों के सामने नाचने लगे। अंत में उसने निराश होकर यह निश्चय किया कि अब तथागत बुद्ध के पास चलकर क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिए। यह विचारकर वह अपने कोकालिक, कतमोरतिष्य, खंडदेव और समुद्रदत्त-नामक चारो शिष्यों को साथ ले, पालकी पर सवार हो, श्रावस्ती की तरफ़ रवाना हुआ, और कई दिन चलने के बाद श्रावस्ती में पहुँचकर एक सरोवर के किनारे उतरा। देवदत्त का आगमन जानकर लोगों में बड़ी घबराहट मची और उन्होंने भगवान् बुद्ध को देवदत्त के आने का समाचार सुनाया। भगवान् ने लोगों की घबराहट देखकर कहा—"तुम लोग मत डरो, देवदत्त यहाँ नहीं आवेगा।" उधर देवदत्त यह विचारकर कि स्नान करके भगवान् के पास चलकर क्षमा-प्रार्थना करूँगा, सरोवर में स्नान करने गया। और ज्योंही तालाब में उतरा कि दलदल में फँसकर रह गया और वहीं उसके प्राण निकल गए। कथित है कि देवदत्त को अपने दुष्कर्मों के कारण अबीचि-नाम नरक में जाना तो अवश्य पड़ा, किंतु उसने अंत में भगवान् बुद्ध पर श्रद्धा की थी, इस हेतु वह भविष्य-जन्म में 'प्रत्येक बुद्ध' पद को प्राप्त करेगा।

देवदत्त के पिता सुप्रबुद्ध की मृत्यु

भगवान् बुद्ध ने कुछ काल श्रावस्ती में रहकर कपिलवस्तु की ओर प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचकर न्यग्रोधाराम में ठहरे। कुछ दिन रहकर फिर वहाँ से कुशीनगर की ओर गए। रास्ते में सुप्रबुद्ध,

जो शाक्यसिंह (बुद्ध) का श्वसुर और देवदत्त का पिता था और भगवान् के गृह-त्यागी होने कारण पहले ही से द्वेष रखता था तथा अब अपने पुत्र देवदत्त की मृत्यु सुनकर और भी जल उठा था, भगवान् को गाली देता हुआ, उनसे लड़ाई करने की नीयत से, उनके मार्ग में एक पेड़ के नीचे जा बैठा। इधर भगवान् बुद्ध न्यग्रोधाराम से भिक्षु-संघ-समेत जा रहे थे। मार्ग में उधर से आनेवाले लोगों ने भगवान् को मना किया कि आप इधर न जाइए, क्योंकि इधर आपसे लड़ने के लिये सुप्रबुद्ध मार्ग रोके बैठा है। भगवान् ने उन लोगों की बात सुनकर कहा—"आप लोग चिंता न कीजिए, सुप्रबुद्ध हमारा मार्ग नहीं रोक सकता।" थोड़ी देर बाद भगवान् जब अपनी शिष्य-मंडली-सहित वहाँ पहुँचे, तो देखा कि सुप्रबुद्ध पेड़ के नीचे मरा पड़ा है, मालूम हुआ कि कुछ ही देर आगे उसका प्राण छूट गया है। भगवान् कुशीनगर होते हुए राजगृह पहुँचे। कुछ काल वहाँ रहकर राजगृह से चले, और मार्ग में ठहरते और धर्मोपदेश करते हुए वर्षा तक श्रावस्ती में आ गए।

१०—श्रावस्ती में स्थिर-निवास और विविध उपदेश

भगवान् की साधारण चर्या

नए निश्चय के अनुसार भगवान् अब वर्षा-ऋतु में श्रावस्ती में अनाथ-पिंडक श्रेष्ठी के बनवाए जेतवन-विहार में अथवा विशाखा के बनवाए पूर्वाराम-विहार में रहकर धर्मोपदेश करते हुए वर्षावास करते थे, और शेष ऋतुओं में अपनी इच्छानुसार घूम-फिरकर पावा, कौशांबी, काशी, वैशाली, राजगृह, कुशीनगर, कपिलवस्तु इत्यादि स्थानों में धर्मोपदेश करते रहते थे।

भगवान् प्रतिदिन रात्रि के शेष भाग में उठकर अपनी सर्वज्ञता के द्वारा यह विचार लिया करते थे कि आज मैं कहाँ, किस उपाय से, किसका उद्धार करूँगा। इस प्रकार प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को भली भाँति निरीक्षण करके जहाँ जैसा उचित होता था, वहाँ उसी प्रकार से पधारकर प्राणियों का उद्धार किया करते थे। ऐसा कोई दिन नहीं होता था, जिस दिन भगवान् किसी-न-किसी का उद्धार न करते हों।

उन दिनों भारतवासियों को भी इस बात की बड़ी चाह रहती थी कि आज भगवान् किस नगर, किस गावँ में, किसके प्रति अपनी पवित्र योगलीला प्रदर्शित करेंगे और अपने पापमोचन उपदेश देकर किसे कृतार्थ करेंगे। भगवान् अपने शिष्यों के सहित जिधर जाते, उधर दर्शनार्थी नर-नारियों की भीड़ लग जाती थी, और भगवान्

जहाँ ठहरते थे, वहाँ दर्शनार्थियों का मेला-सा लग जाता था। भगवान् के महिमामय परम पावन चरित्र अकथनीय हैं। पाली के त्रिपिटक-शास्त्र उनसे परिपूर्ण हैं। इस संक्षिप्त जीवनी में उन सबका वर्णन करना असंभव है। इस अध्याय में कुछ चुने हुए उपयोगी उपदेशों का ही उल्लेख किया जायगा। त्रिपिटक-शास्त्र भारत के प्राचीन इतिहास, धर्म, दर्शन और समाज के ज्ञान के आगार हैं। वह भारत के सौभाग्य का दिन होगा जिस दिन भारतीय विद्वान् त्रिपिटक-शास्त्र का देशी भाषाओं में अनुवाद करके उसका भारत में पुनः प्रचार करेंगे।

विशाखा के सात्त्विक दान की प्रशंसा

महाराज प्रसेनजित के कोषाध्यक्ष मृगार के पुत्र पूर्णवर्धन की स्त्री का नाम विशाखा था। यह अंगराज के कोषाध्यक्ष धनंजय की पुत्री थीं। इसी विशाखा ने श्रावस्ती में एक 'पूर्वाराम'-नामक विहार बनवाकर भगवान् बुद्ध को सशिष्य रहने के लिये अर्पण किया था। यह भगवान् की परम भक्त थीं। एक दिन भगवान् विशाखा के यहाँ आमंत्रित होकर भोजन करने के लिये गए। भगवान् के भोजन कर चुकने पर विशाखा ने हाथ जोड़कर कहा—हे भगवन्! क्या मैं आपसे कुछ माँग सकती हूँ?" भगवान् ने कहा—"अवश्य। तुम क्या माँगती हो?" विशाखा ने बड़ी नम्रतापूर्वक कहा—"भगवन्! मेरी पाँच बातें आप स्वीकार करें—

(१) बरसात के दिनों में वस्त्र-विहीन भिक्षुओं को बड़ा कष्ट मिलता है, और उनको वस्त्र-विहीन अवस्था में देखकर लोगों के

चित्त में ग्लानि उत्पन्न होती है। इस कारण मैं चाहती हूँ कि संघ को वस्त्र-दान किया करूँ।

(२) श्रावस्ती में वाहर से आनेवाले भिक्षु भिक्षा के लिये इधर-उधर भटकते फिरते हैं, इसलिये मैं उनको भोजन देना चाहती हूँ।

(३) वाहर जानेवाले भिक्षु भिक्षा के लिये पीछे रह जाते हैं, और अपने निर्दिष्ट स्थान को देर में पहुँचते हैं इसलिये मैं उनके भोजन का भी प्रवंध करना चाहती हूँ।

(४) रोगी भिक्षुओं को उचित पथ्य और औषध नहीं मिलती, मैं चाहती हूँ कि उसका भी प्रवंध करूँ।

(५) संघ के रोगियों की सेवा-शुश्रूषा करनेवाले भिक्षुओं को भिक्षा माँगने के लिये समय नहीं मिलता। अतएव मैं चाहती हूँ कि उनके भोजन का भी प्रवंध कर दूँ।"

भगवान् ने कहा—"हे विशाखा! तुम्हें इन वातों से क्या लाभ होगा?" उसने उत्तर दिया—"हे भगवन्! वर्षा-ऋतु के वाद जव भिक्षु लोग भिन्न-भिन्न स्थानों से श्रावस्ती में लौटकर आवेंगे, और आपसे किसी मृत-भिक्षु के संबंध में वात करेंगे। और आप उसे असाधु कर्म त्यागकर साधु-जीवन ग्रहण करनेवाला, निर्वाण और अर्हत्-पद के लिये यत्नवान् तथा उसके जीवन की सफलता और निष्फलता का वर्णन करेंगे, तव मैं उनसे उस समय पूछूँगी—'हे भिक्षुओ! क्या वह मृत-भिक्षु श्रावस्ती में भी रह गया है?' जव मुझे मालूम होगा कि वह यहाँ पहले रह गया है, तो

मैं समझूंगी कि उसने मेरे दिए हुए पदार्थों से अवश्य लाभ उठाया होगा। इससे मेरा हृदय अत्यंत आनंदित और शांत होगा, इस आनंद और शांति से मेरे चित्त में स्थिरता आवेगी। इस स्थिरता से मेरे पवित्र हार्दिक भावों और पुनीत आध्यात्मिक शक्तियों की सम्यक् उन्नति और विकाश होगा।"

विशाखा की बात सुनकर भगवान् ने कहा—"विशाखा! तेरा विचार अति उत्तम और पवित्र है। दान के सच्चे अधिकारियों को दान देना उत्तम खेत में बीज बोने के समान है, परंतु कुपात्र को दान देना मानो ऊसर भूमि में बीज का फेंकना है। दुष्कर्मी दान लेनेवाले अपने दुष्कर्म के द्वारा संसार में पाप बढ़ाकर पुण्य का नाश करते हैं, परंतु विचार-पूर्वक सात्त्विक दान दाता और ग्रहीता दोनो के लिये कल्याणकारी है। सुचरित्रो, दयालु और स्वार्थ-रहित दानी ही सच्चा दानी है। वह दान को अपने ऐब और पापों को छिपाने का साधन बनाकर संसार को धोका नहीं देता, उसके सुविशाल हृदय में सदैव करुणा का स्रोत प्रवाहित रहता है। वह दान देकर परम आनंदित होता है, और अपने को कृतकृत्य समझता है। सच्चा दानी भय और अश्रद्धा से दान देकर पीछे पछताता नहीं, उसका चित्त परम-सुखी और प्रफुल्लित होता है।"

भगवान् के मुख से पवित्र सात्त्विक दान का वर्णन सुनकर विशाखा बड़ी संतुष्ट हुई और बोली—"हे भगवन्! मेरी एक प्रार्थना और है, उसे आप कृपा करके सुनें। भिक्षुणी नग्न होकर सर्व-साधारण स्त्रियों के घाट पर नहाया करती हैं। इसलिये कुलटा स्त्रियाँ वहाँ

उनकी हँसी उड़ाती और कहती हैं—'हे युवतियो! इस युवावस्था में काम का दमन करने से क्या लाभ? तुम लोग वृद्धावस्था में वैराग्य-साधन करना। ऐसा करने से तुम्हें लोक और परलोक दोनो का सुख मिलेगा।' अतएव भगवन्! मेरी विनय है कि भिक्षुणी लोग नग्न होकर घाटों पर न नहाया करें।" भगवान् ने यह बात स्वीकार करके नियम बना दिया।

पुत्र-वियुक्ता कृशा गोमती को प्रबोध

कृशा गोमती एक संपन्न घराने की स्त्री थी। उसके एक ही बालक था और वह मर गया। उसके मर जाने पर वह पुत्र-शोक से विक्षिप्त हो गई थी। और मृत बालक को अपनी गोद में लिए हुए साधु-महात्माओं से उसके जीवित होने की ओषधि पूछती फिरती भगवान् बुद्ध के पास आई और हाथ जोड़ गिड़गिड़ाकर कहने लगी—"मैं सुनती हूँ, आपमें बड़ी शक्ति है, आप अनेक भाँति की दवाएँ जानते हैं, कृपा करके कोई ऐसी ओषधि दीजिए, जिससे मेरा यह मरा हुआ बालक जी जाय।"

भगवान् ने उस पगली कृशा गोमती की बात सुनकर कहा—"हे गोमती! मैं तुम्हारे बालक को जिला तो सकता हूँ, पर यदि तुम मुझे एक मुट्ठी सरसों किसी ऐसे घर से माँग ला दो, जिसमें आज तक कोई भी आदमी मरा न हो।"

कृशा गोमती भगवान् की बात सुनकर दौड़ी हुई ग्राम में जाकर ऐसा घर खोजने लगी जिसमें कभी कोई आदमी मरा न हो। परंतु जिस घर में वह जाकर पूछती, वहाँ से यही उत्तर मिलता था कि

"हमारे घर अमुक-अमुक आदमी मर चुका है।" इसी प्रकार वह कई दिन तक कई गाँवों में इधर-उधर सबके घर पूछती फिरती रही, परंतु उसे एक भी घर ऐसा नहीं मिला, जिसमें कोई आदमी मर न चुका हो। इसका यह फल हुआ कि गोमती के हृदय में संसार की अनित्यता का ज्ञान हो गया। उसे इस असार और क्षणभंगुर संसार की अनित्यता, दुःख और अनात्मता का सच्चा स्वरूप दिखलाई पड़ने लगा। अंत में यह कहती हुई उसने अपने मृत बालक का श्मशान में ले जाकर मृतक-सत्कार कर दिया कि "मृत्यु न किसी नगर का धर्म है, न किसी ग्राम का धर्म है और न किसी कुल का धर्म है, वरन् सभी मनुष्य और देवादिकों का यही धर्म है कि वे एक-न-एक दिन अवश्य मरेंगे।"

न गामधम्मो नो निगमस्स धम्मो न चापि यं एक कुलस्स धम्मो।
सब्बस्स लोकस्स सदेवकस्स, एसेव धम्मो यदिदं अनित्यता॥

इस प्रकार अपने लड़के का मृतक-संस्कार करके कृशा गोमती भगवान् के पास आई। भगवान् ने उसे देखकर पूछा—"हे गोमती! क्या सरसों ले आई?" कृशा गोमती ने कहा—"हे भगवन्! मुझे अब सरसों की आवश्यकता नहीं रही। मैंने संसार की अनित्यता को समझ लिया। अब मेरा चित्त सावधान है।"

भगवान् गोमती की इस प्रकार की बात सुनकर बहुत ही संतुष्ट हुए, और बोले—"हे गोमती! पुत्र-कलत्र, धन-धान्य और अपने पशु आदि में आसक्त रहनेवाले मनुष्यों को मृत्यु अपने आक्रमण द्वारा ठीक उसी प्रकार ले जाती है, जैसे किसी गाँव में पानी की बाढ़ आकर रात को सोते हुए लोगों को बहा ले जाती है। मृत्यु के

मुख से किसी भी मनुष्य को उसके माता-पिता, भाई-बंधु, पुत्र और मित्र कोई बचा नहीं सकते। इसी कारण संसार के अनित्य, दुःख और अनात्म स्वरूप को साक्षात्कार करके शीलवंत प्रज्ञावान् भिक्षुगण अपने निर्वाण का मार्ग बनाते हैं।" इस प्रकार भगवान् के उपदेश को सुनकर गोमती अत्यंत पुलकित हो गई, उसके हृदय-पटल खुल गए और उसने हाथ जोड़कर भगवान् से प्रव्रज्या और उपसंपदा ग्रहण करने की प्रार्थना की। भगवान् ने उसकी प्रार्थना स्वीकार करके उसको प्रव्रज्या और उपसंपदा प्रदान करके भिक्षुणी-संघ में सम्मिलित कर लिया।

गृहस्थ-धर्म का उपदेश

एक बार भगवान् राजगृह के कलंदक निवाप वेणुवन में विहार करते थे। एक दिन सवेरे ही पात्र-चीवर लेकर भगवान् राजगृह नगर में भिक्षा के लिये प्रवेश कर रहे थे, कि उन्होंने देखा कि सिगाल-नामक एक वैश्य गीले केश और गीले वस्त्र गृह से निकलकर पूर्व, पश्चिम, दक्खिन, उत्तर, ऊपर, नीचे छओं दिशाओं को हाथ जोड़कर नमस्कार कर रहा है। भगवान् ने उससे पूछा—"हे गृहपति-पुत्र! तुम इस प्रकार दिशाओं को क्यों नमस्कार करते हो?" सिगाल बोला—"हे महाराज! मेरे पिता ने मरते समय मुझसे ऐसा कहा था।" भगवान् ने कहा—"हे गृहपति-पुत्र! आर्यों के विनय में इस तरह दिशाओं को नमस्कार नहीं किया जाता।" सिगाल ने पूछा—"हे भगवन्! आर्यों के विनय में दिशाओं को किस तरह नमस्कार किया जाता है?"

भगवान् बोले—"सुनो गृहपति-पुत्र ! जब आर्य-धर्म का माननेवाला चार क्लेशों से छूट जाता है, चार तरह के पाप नहीं करता और छः प्रकार के धन नाश करनेवाले कारणों का भी सेवन नहीं करता, तो वह चौदह दोषों से बचकर छओ दिशाओं को आच्छादित करके लोक और परलोक में विजय प्राप्त करता है।"

"हे गृहपति-पुत्र ! चार प्रकार के क्लेश कौन हैं ? सुनो—(१) हिंसा न करना, (२) चोरी न करना, (३) झूठ न बोलना, और (४) पर-स्त्री-गमन न करना।"

"हे गृहपति-पुत्र ! चार तरह के पाप के कारण कौन हैं ? सुनो—(१) राग के कारण पाप करना, (२) द्वेष के कारण पाप करना, (३) मोह के कारण पाप करना, और (४) भय के कारण पाप करना।"

"हे गृहपति-पुत्र ! छः तरह के धन-नाश के कारण कौन हैं ? सुनो—(१) मदिरा आदि नशा पीना, (२) कुसमय चौरस्तों की सैर करना, (३) नाच-तमाशा देखना, (४) जुआ खेलना, (५) पापी कुमित्रों का साथ करना, और (६) आलसी कर्महीन होकर रहना।"

"हे गृहपति-पुत्र ! इन धन-नाशक छओ कारणों में से प्रत्येक में छः-छः दोष होते हैं, सो मन लगाकर सुनो। देखो, मदिरा आदि नशा में ये छः दोष होते हैं—(१) तत्काल धन का नाश, (२) कलह का चढ़ना, (३) रोगों का आक्रमण, (४) संसार में बदनाम होना, (५) निर्लज्ज होना, और (६) बुद्धि का नाश।"

"हे गृहपति-पुत्र ! कुसमय घूमने-फिरने में छः दोष हैं—(१) स्वयं अरक्षित होना, (२) स्त्री-पुत्रों का अरक्षित होना, (३) धन

अरक्षित होना, (४) उसके पापी होने का संदेह होता है, (५) उस पर कलंक लग जाता है, और (६) वह अनेक दुःखकारी कर्मों को करने लगता है।"

"हे गृहपति-पुत्र ! नाच-तमाशा देखने की आदत में छः दोष होते हैं—(१) कहाँ नाच-गाना-तमाशा होगा, इसकी चिंता करना, (२) समय का नाश करना, (३) स्वास्थ्य की हानि होना, (४) चित्त में विषय-विकार उत्पन्न होना, (५) कुसंग में पड़कर भ्रष्ट होने की आशंका, और (६) आलसी शरीर होकर कर्तव्य कर्मों में मन न लगना।"

"हे गृहपति-पुत्र ! जुआ आदि खेलने में छः दोष होते हैं—(१) जीतने से वैर उत्पन्न होता है, (२) हारने से धन का सोच होता है, (३) धन न मिलने से चोरी आदि करता है, (४) जुआरी का कोई विश्वास नहीं करता, (५) इष्ट-मित्र उसका तिरस्कार करते हैं, और (६) यह जुआरी है, स्त्री का भरण-पोषण न कर सकेगा, इस भय से लोग उसे कन्या नहीं देते और वह दुष्कर्म करता है।"

"हे गृहपति-पुत्र ! पापी कुमित्र प्रायः छः प्रकार के होते हैं—(१) जुआरी, (२) धूर्त, (३) नशेबाज़, (४) कृतघ्न, (५) वंचक और (६) गुंडे, लुटेरे, चोर, खूनी इत्यादि। इनकी मित्रता में सदैव विपद् की आशंका रहती है, अतः ऐसे लोगों से मित्रता न जोड़ना चाहिए।"

"हे गृहपति-पुत्र ! आलसी छः बातों से कर्महीन होता है—(१) अभी बहुत सर्दी है, (२) अभी बहुत गरमी है, (३) बहुत रात हो गई है, (४) अभी बहुत सवेरा है, (५) अभी बहुत भूखा हूँ, (६) बहुत

खाने से पेट भारी हो गया है। इस तरह आलस्य में रहकर कोई काम नहीं करता, और उसका प्राप्त धन नष्ट हो जाता है, अप्राप्त धन प्राप्त नहीं होता।"

"हे गृहपति-पुत्र! अधिक सोना, परस्त्री-गमन, लड़ना, कुमित्रों का संग, जुआ, नाच-गाना, दिन में सोना, अनर्थकारी काम करना, असमय घूमना, मदिरा आदि नशा पीना, नीचों की सेवा, वृद्धों की सेवा न करना, और अत्यंत कंजूसी, इन बातों से पुरुषों के लोक और परलोक दोनो का नाश होता है।"

"हे गृहपति-पुत्र! इन चार को मित्र-रूप में भी अमित्र (शत्रु) जानना चाहिए—(१) पराया धन हरनेवाले को, (२) कोरी बातें बघारनेवाले को, (३) हमेशा मुँहचुपड़ी मीठी बातें बनानेवाले को, और (४) केवल धन-नाशक बातों की सलाह देनेवाले को। कारण (१) पराया धन हरनेवाला अपने थोड़े धन से दूसरों का बहुत चाहता है, भय और विपत्तिजनक काम करता है, और स्वार्थ के लिये सेवा करता है; (२) कोरी बातें बघारनेवाला प्रायः पुरानी बातों की प्रशंसा करता है, भविष्य की प्रशंसा करता है, निरर्थक बातों की प्रशंसा करता है, और वर्तमान काल के कामों में भय दिखाता है। (३) मीठी और मुँहचुपड़ी बातें बनानेवाला सामने प्रशंसा करता है, पीछे निंदा करता है, बुरे कर्मों की राय देता है, भले काम की राय नहीं देता। (४) धन-नाशक बातों की सलाह देनेवाला सदैव नशा आदि पीने में लगाता है, नाच-तमाशे में फँसाता है, कुसमय निरर्थक घूमने में लगाता है, प्रमाद और जुआ आदि खेलने में अनुरक्त करता है।

इन चार कारणों से पूर्वोक्त चारो को मित्र-रूप में भी अमित्र (शत्रु) जानकर उनका सदैव त्याग करना चाहिए।"

"हे गृहपति-पुत्र! इन चार को मित्रता न होने पर भी मित्र जानना चाहिए—(१) परोपकारी को, (२) सुख-दुःख में समान रहनेवाले को, (३) धन की प्राप्ति या वृद्धि के लिये उपदेश देनेवाले को, और (४) दयावान् को। कारण (१) परोपकारी पुरुष प्रमत्तों (भूलें करनेवालों) की रक्षा करता है, प्रमत्तों के धन की रक्षा करता है, भयभीतों को आश्रय देता है, और काम पड़ने पर दूना फल उत्पन्न कराता है। (२) दुःख-सुख में समान रहनेवाला गुप्त बातें बताता है, मित्र की गुप्त बातें छिपाता है, विपत्ति में साथ देता है, और आवश्यकता पड़ने पर मित्र के लिये प्राण देने को भी तैयार रहता है। (३) अर्थाख्यायी अर्थात् धन-प्राप्ति के उपाय बतानेवाला बुराई या पाप से हटाता है, भलाई में लगाता है, अनसुनी बातों को सुनाता है, और स्वर्ग का मार्ग बताता है। (४) सदैव दया करनेवाला मित्र के पास संपत्ति न होने पर प्रसन्न नहीं होता, होने पर प्रसन्न होता है, निंदा करनेवाले को रोकता है, और प्रशंसा करनेवाले की प्रशंसा करता है। इन कारणों से पूर्वोक्त चारो का आदर करके उन्हें अपना मित्र बनाना चाहिए।"

"हे गृहपति-पुत्र! कुलीन गृहस्थ को चाहिए कि अपनी संपत्ति के चार भाग करके एक भाग को अपने भोग में लावे, दो भाग को अपने व्यवसाय में लगावे, और चौथे भाग को आपत्काल में काम आने के लिये रख छोड़े।"

"हे गृहपति-पुत्र ! आर्य-धर्म में छः दिशाएँ कौन हैं ? सुनो। माता और पिता पूर्व-दिशा हैं, गुरु और आचार्य दक्षिण दिशा हैं, भार्या-स्त्री पश्चिम दिशा है, मित्र और हितैषी उत्तर दिशा हैं, सेवक और नौकर अधोदिशा, तथा श्रमण और संत-महात्मा पुरुष ऊपर की दिशा हैं।"

"हे गृहपति-पुत्र ! पूर्व-दिशा-रूपी माता-पिता पाँच प्रकार से अनुकंपा करते हैं—(१) पापों से बचाते हैं, (२) कल्याणकारी कर्मों में लगाते हैं, (३) नाना भाँति की विद्याएँ सिखाते हैं, (४) योग्य स्त्री से विवाह कराते हैं, और (५) समय पर अपनी सारी संपत्ति सौंप देते हैं। इस कारण पुत्र को पाँच प्रकार से उनकी सेवा करनी चाहिए—(१) उन्होंने मेरा पालन-पोषण किया है, अतः मैं भी उनका भरण-पोषण करूँगा ; (२) उन्होंने मेरा सब काम किया है, अतः मैं भी उनका सब काम करूँगा; (३) उन्होंने मुझे जन्म देकर कुल-वंश को क़ायम रक्खा है, अतः मैं भी उनका कुल-वंश क़ायम रक्खूँगा; (४) उन्होंने मुझे अपना उत्तराधिकारी बनाया है, अतः मैं भी अपनी संपत्ति का उत्तराधिकारी बनाऊँगा; और (५) उन्होंने मुझे शिक्षित और गुणी बनाया है, अतः मैं भी मृत माता-पिता की सद्गति के लिये दान आदि करके उनका श्राद्ध करूँगा। हे गृहपति-पुत्र ! इस प्रकार माता-पिता की सेवा करने से पूर्व-दिशा सुरक्षित, क्षेमयुक्त और भयरहित होती है।"

"हे गृहपति-पुत्र ! दक्षिण-दिशा-रूप गुरु और आचार्य पाँच प्रकार से अनुकंपा करते हैं—(१) सुंदर विनय-भाव सिखाते हैं, (२)

सुंदर सग्राह्य शास्त्रों को पढ़ाते हैं, (३) नाना प्रकार की विद्याएँ और शिल्प-कला सिखाते हैं, (४) हितैषी मित्रों को मिलाते हैं, और (५) सब दिशाओं में रक्षा करते हैं। इस कारण पाँच प्रकार से उनकी सेवा करनी चाहिए—(१) तत्परता से, (२) आज्ञा-पालन से, (३) सादर सेवा-सुश्रूषा से, (४) मन लगाकर उपदेश-श्रवण से, और (५) यथाविधि परिश्रम द्वारा विद्या सीखने से। इस प्रकार गुरु और आचार्य की सेवा करने से दक्षिण-दिशा सुरक्षित, क्षेमयुक्त और भय-रहित होती है।"

"हे गृहपति-पुत्र ! पश्चिम-दिशा-रूपी भार्या स्त्री पाँच प्रकार से अनुकंपा करती है—(१) गृही-कार्य सुप्रबंध के साथ करती है, (२) नौकर-चाकर और परिवार को वश में रखती है, (३) अनन्य भाव से अपना प्रेम अर्पण करती है, (४) विपत्ति-काल में दुःख सहकर धन की रक्षा करती है, और (५) आलस्य-रहित होकर पति के सब कामों को दक्षतापूर्वक करती है। इस कारण पाँच प्रकार से उसकी सेवा करनी चाहिए—(१) उसका सम्मान करके, (२) उसका कभी अपमान न करने से, (३) अव्यभिचारी होकर अर्थात् कभी परस्त्री-गमन आदि न करके, (४) अपना ऐश्वर्य (धनादि) उसे सौंपकर, और (५) अलंकार अर्थात् वस्त्राभूषण आदि देकर। इस प्रकार स्त्री का सम्मान करने से पश्चिम-दिशा सुरक्षित, क्षेमयुक्त और भयरहित होती है।"

"हे गृहपति-पुत्र ! उत्तर-दिशा-रूपी मित्र और हितैषीगण पाँच प्रकार से अनुकंपा करते हैं—(१) प्रमाद (भूल) करने पर रक्षा करते

हैं, (२) प्रमत्त (ग़ाफ़िल) होने पर संपत्ति की रक्षा करते हैं, (३) भयभीत होने पर शरण (आश्रय) देते हैं, (४) विपत्ति-काल में साथ नहीं छोड़ते, और (५) पुत्र-पौत्रादि परिवार की भी रक्षा और परिपालना करते हैं। इस कारण पाँच प्रकार से उनकी सेवा करनी चाहिए-(१) दान से, (२) प्रिय वचन से, (३) अर्थचर्या अर्थात् समय पर धनादि की सहायता या काम कर देने से, (४) समान-भाव से दुःख-सुख में साथी रहने से, और (५) सत्यता से विश्वास-प्रदान करके। इस प्रकार मित्र और हितैषियों के साथ व्यवहार करने से उत्तर-दिशा सुरक्षित, क्षेमयुक्त और भयरहित होती है।"

"हे गृहपति-पुत्र ! अधोदिशा-रूपी सेवक और परिचारक पाँच प्रकार से स्वामी पर अनुकंपा करते हैं—(१) मालिक से पहले उठते हैं, (२) मालिक के सो जाने के बाद सोते हैं, (३) मालिक के दिए हुए को ही लेते हैं, (४) मालिक के कामों को बहुत अच्छी तरह से करते हैं, और (५) मालिक की कीर्ति (यश-बड़ाई) को चारो ओर फैलाते हैं। इस कारण पाँच प्रकार से उनका प्रतिपाल करना चाहिए-(१) उनके बल के अनुसार काम देने से, (२) यथासमय उनका वेतन और भोजनादि देने से, (३) बीमारी के समय उनकी मदद करने से, (४) स्वादिष्ठ सुरस पदार्थों को खिलाकर, और (५) यथासमय काम से छुट्टी देकर। इस प्रकार सेवक और नौकरों का प्रतिपालन करने से अधो-दिशा सुरक्षित, क्षेमयुक्त और भयरहित होती है।"

"हे गृहपति-पुत्र ! ऊर्ध्व-दिशा-रूपी श्रमण और साधु-महात्मा-गण छः प्रकार से अनुकंपा करते हैं—(१) पाप-कर्मों से निवारण

करते हैं, (२) कल्याण-कर्मों में लगाते हैं, (३) कल्याण-कर्मों को करा-कर प्रेमपूर्वक रक्षा करते हैं, (४) अश्रुत-धर्मोपदेश सुनाते हैं, (५)सुनी हुई अनुपयुक्त बातों को सुधारकर दृढ़ करते हैं, और (६) स्वर्ग एवं मोक्ष का मार्ग बतलाते हैं। इस कारण पाँच प्रकार से उनकी सेवा-सत्कार करना चाहिए—(१) मैत्री-भाव-युक्त शारीरिक सेवा करके,(२) मैत्री-भाव-युक्त वाचनिक सेवा करके, (३) मैत्री-भाव-युक्त मानसिक सेवा करके, (४) खुले द्वार से अर्थात् श्रमणों और संत-महात्माओं के स्वागत के लिये सदैव खुले द्वारवाला होकर, और (५) भोजनादि वस्तु प्रदान करके। इस प्रकार श्रमण और संत-महात्मा जनों का आदर-सत्कार करने से ऊर्ध्व-दिशा सुरक्षित, क्षेमयुक्त और भय-रहित होती है।"

"हे गृहपति-पुत्र ! इस प्रकार जो कुलीन गृहस्थ छओ दिशाओं को यथाविधि नमस्कार करके उन्हें आच्छादित कर लेता है, वह लोक और परलोक में विजय प्राप्त करता है।"

"हे गृहपति-पुत्र ! जो कुलीन गृहस्थ उद्यमी, निरालसी, धीर, मेधावी, संग्रहकर्ता, मित्रता करनेवाला, कृतज्ञ, ईर्षा-रहित, नेता, विनेता, दानी, प्रिय वचन बोलनेवाला और समयानुसार यथायोग्य कर्मों को करनेवाला होता है, वह संसार में यश और अंत में सुगति लाभ करता है।"

इस प्रकार उपदेश सुनकर गृहपति-पुत्र सिगाल यह कहता हुआ भगवान् के पाद-पद्मों में गिर पड़ा कि "हे भगवन ! आपकी शिक्षा अति आनंदमय है, अति आनंदमय है। जिस प्रकार घोर अंधकार

में भटके हुए मनुष्य को प्रकाश-पुंज प्रदीप देकर कोई मार्ग बता देता है, वैसे ही आपके उपदेश ने मेरे ज्ञान-नेत्र खोल दिए। मैं आपकी शरण हूँ, आपके धर्म की शरण हूँ, और आपके संघ की शरण हूँ।"

इस प्रकार प्रार्थना करने पर भगवान् ने उसे शरणापन्न उपासक बना लिया।

वृषल (शूद्र) कौन है ?

एक दिन भगवान् कषाय चीवर से वेष्टित हो भिक्षापात्र हाथ में ले सवेरे ही जेतवन-विहार से निकलकर श्रावस्ती नगरी में गए, और कई जगह भिक्षा ग्रहण करते हुए अग्निहोत्री भरद्वाज-नामक ब्राह्मण के घर पहुँचे। उस समय अग्निहोत्री भरद्वाज अपने प्रज्वलित यज्ञ-कुंड में आहुति दे रहा था, भगवान् को द्वार पर भिक्षापात्र लिए खड़े देखकर झुँझलाता हुआ यज्ञवेदी से उठकर द्वार पर आया और कड़क-कर बोला—"हे मुंडो! हे श्रवण! हे वृषल! वहीं खड़े रहो, वहीं खड़े रहो; इधर मत आना।"

परम कारुणिक भगवान् अग्निहोत्री भरद्वाज ब्राह्मण के मुख से इस प्रकार तिरस्कृत-वचन को सुनकर बोले—"हे भरद्वाज! क्या तुम यह जानते हो कि वृषल किसे कहते हैं और वृषल के कर्म क्या हैं ?"

भरद्वाज ने कहा—"नहीं, हम तो नहीं जानते। तुम्हीं बताओ कि वृषल किसे कहते हैं और वृषल के कर्म क्या हैं ?"

भगवान् बोले—"ऐसा है, तो हे ब्राह्मण! मन लगाकर सुनो। हम बतलाते हैं कि वृषल किसे कहते हैं और वृषल के कर्म क्या हैं ?

जो प्राणियों की हिंसा करता है, जिसके हृदय में दया नहीं है, ऐसे निर्दयी मनुष्य को वृषल कहते हैं। जो गाँव और नगर के मार्ग को रूँधता या ध्वंस करता है, उसे वृषल कहते हैं। जो पराया धन चोरी से, ठगी से या और किसी प्रकार छल-कपट से विना दिए हुए ग्रहण कर लेता है, उसे वृषल कहते हैं। जो किसी से ऋण लेकर माँगने पर भाग जाता या कहता है कि मैं तुम्हारा ऋणी नहीं हूँ, वह वृषल है। जो अपने वा पराए स्वार्थ के लिये धन लेकर झूठी गवाही देता है, वह वृषल है। जो अपनी जाति, कुटुंब और मित्र की स्त्री के सतीत्व को नष्ट करता है, वह वृषल है। जो पूजनीय माता-पिता आदि वृद्ध जनों का भरण-पोषण नहीं करता, वह वृषल है। जो माता-पिता आदि वृद्ध जनों को मारता या ससुर, सास, भाई, बहन आदि को अपने वाक्य-बाण से हमेशा जलाया करता है, वही वृषल है। यदि कोई किसी से अच्छी सलाह पूछे, और वह उसे बुरी सलाह दे, और सत्य बात को छिपाकर कपट की बात बतावे, वही वृषल है। जो पाप-कर्म करके उसे पाप-कर्म नहीं समझता या उसे छिपाता है, वही वृषल है। जो दूसरों के घर मेहमानदारी में जाकर उत्तम-उत्तम भोजन करता है, किंतु अपने घर आए हुए मेहमानों का उसी तरह सत्कार नहीं करता, वही वृषल है। जो किसी श्रवण या ब्राह्मण अथवा साधु-पुरुष को मिथ्या वचन बोलकर धोके में डालता है, वही वृषल है। जो भोजन के समय आए हुए श्रवण या ब्राह्मण आदि अतिथियों को भोजन नहीं देता और उनसे क्रोध करके कड़ुए वचन बोलता है, वही वृषल है। जो अपने मुँह से अपनी प्रशंसा और

दूसरों की निंदा अथवा दूसरों से घृणा करता तथा अहंकार के कारण जिसका मन बहुत नीच हो गया है, वही वृषल है। जो व्यक्ति क्रोध से उन्मत्त, अति लोभी, निर्लज्ज, कपटी, पापिष्ठ, दुर्जन और हिंसक है और जिसके हृदय में पाप का कुछ भी भय नहीं है, वही वृषल है। जो सर्वज्ञ पुरुषों या उनके माननेवालों की निंदा अथवा तिरस्कार करता है, वही वृषल है। जिसने सर्वज्ञ अर्हत्-पद को प्राप्त नहीं किया है, और झूठमूठ अपने को सर्वज्ञ और 'अर्हत्' कहकर लोगों में प्रसिद्ध किया है अथवा जिसने ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं किया है और न ब्रह्म में जिसकी स्थिति ही है, किंतु झूठमूठ अपने को मिथ्या अहंकार से 'ब्राह्मण' कहता है, उसके समान मृत्युलोक से ब्रह्मलोक पर्यंत कोई भयंकर ठग और महाचोर नहीं हो सकता, वही महानीच और 'वृपलाधम' है।"

"हे भरद्वाज! जन्म से न कोई ब्राह्मण होता है और न कोई वृषल। कर्म से ही मनुष्य ब्राह्मण होता है, और कर्म से ही वृषल। हे भरद्वाज! इस विषय में तुम्हें एक दृष्टांत सुनाते हैं, सुनो।"

"देखो, मातंग ऋषि श्वपच या चांडाल के यहाँ उत्पन्न होकर भी एक सुविख्यात मुनि हो गए हैं। उन्होंने ऐसा दुर्लभ पद प्राप्त किया था, जो दूसरों को प्राप्त होना दुस्तर है। अगणित बड़े-बड़े ब्राह्मण और क्षत्रिय नित्य आकर उनके चरणों की वंदना करते थे। मातंग ऋषि काम, क्रोध, लोभ को एकदम जीतकर अंत समय देवलोक में पूजित होते हुए परम आनंद के साथ ब्रह्मलोक पहुँचे। उन्हें उनकी चांडाल-जाति ब्रह्मलोक जाने से न रोक सकी।"

"दूसरी ओर देखो, अनेक वेदमंत्र-कर्ता ऋषियों के कुल में जन्म लेकर वेद को अपना सर्वस्व समझकर सदा उसका अध्ययन करते रहे, परंतु पाप में लिप्त होने के कारण उनको नरक भोगना पड़ा। नरक की भीषण यंत्रणाओं के भोगने से उनका कुल और वेद उनकी रक्षा नहीं कर सके। इसलिये, जन्म से न कोई ब्राह्मण होता है, न कोई वृषल; कर्म से ही मनुष्य ब्राह्मण होता है, और कर्म से ही वृषल।"

भगवान् के इस सदुपदेश को सुनकर अग्निहोत्री भरद्वाज हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा—"हे भगवन्! हमने अपनी अज्ञानता के कारण आपका जो अपमान किया है, उसे क्षमा कीजिए। अब आपकी कृपा से धर्म का वास्तविक स्वरूप मेरी समझ में आ गया। मैं आपकी शरण में हूँ। हे भगवन्! मुझे अपनी शरण में लेकर कृतार्थ कीजिए।"

इस प्रकार शरणापन्न होने पर भगवान् उसे अपना शिष्य बनाकर विहार में आ गए।

ब्राह्मण कौन है? और कैसे होता है?

एक समय भगवान् इच्छानंगल के वन में विराजमान थे। उस समय इच्छानंगल बहुत प्रसिद्ध और संपन्न ब्राह्मणों की बस्ती थी। एक दिन उसी बस्ती के वाशिष्ठ और भारद्वाज-नामक दो ब्राह्मण युवकों में इस बात का विवाद होने लगा कि "ब्राह्मण किस प्रकार से होता है।" युवक भारद्वाज कहता था—"ब्राह्मण-कुल के उत्तम माता-पिता के यहाँ जन्म लेने से ब्राह्मण होता है।" और युवक

वाशिष्ठ कहता था—"जो व्यक्ति धर्म-परायण, पुण्य-कर्म से विभूषित और सुचरित्रवान् है, ऐसा धार्मिक पुरुष ही ब्राह्मण हो सकता है, चाहे वह किसी भी कुल में जन्मा हो।" इस प्रकार दोनो में बहुत देर तक विवाद होता रहा, परंतु यह निश्चय न हो सका कि ब्राह्मण जन्म से होता है या कर्म से ? अंत में वाशिष्ठ ने कहा—"अच्छा, यदि तुम हमारी बात नहीं मानते, तो चलो भगवान् बुद्ध के पास चलकर इसका निर्णय करें। हमने सुना है, वह महात्यागी और महाज्ञानी हैं, और सौभाग्य से आजकल हमारी इस इच्छानंगल बस्ती के निकट वन में ही विराजमान हैं।" भारद्वाज ने कहा—"बहुत अच्छी बात है। चलो, भगवान् बुद्ध ही के पास चलकर हम लोग इसका निर्णय कर लें।" यह स्थिर करके दोनो युवक भगवान् के पास चले, और वहाँ पहुँचकर भगवान् को यथाविधि वंदना और शिष्टाचार करके अपना और अपने कुल का परिचय दिया। वाशिष्ठ ने कहा—"हे गौतम ! मैं तीनो वेदों के जाननेवाले पुष्कर-सादि आचार्य का शिष्य हूँ, और यह भारद्वाज त्रिवेद-विशारद तारुक्ष आचार्य का शिष्य है। हम दोनो सर्व-विद्या-सुसंपन्न होकर आचार्य-पदक भी प्राप्त कर चुके हैं। हम लोगों में 'ब्राह्मण कैसे होता है ?' इस बात का वितर्क चल गया है। भारद्वाज कहता है, जन्म से ब्राह्मण होता है ; और मैं कहता हूँ, कर्म से ब्राह्मण होता है। अभी तक हम लोग इसकी कोई मीमांसा नहीं कर सके। इसलिये हे तथागत ! हम लोग आपके पास आए हैं, और आशा करते हैं कि आप इस विषय की मीमांसा करके हम लोगों का विवाद मिटा देंगे,

क्योंकि आप सर्वदर्शी और सम्यक् संबुद्ध हैं। हम लोगों की दृष्टि में इस समय आपसे बढ़कर कोई ज्ञानी नहीं है।"

वाशिष्ठ की बात सुनकर भगवान् बोले—"हे वाशिष्ठ! मैं किसको ब्राह्मण मानता हूँ, इसका वर्णन करता हूँ, सुनो। संसार में जितने प्रकार की भिन्न-भिन्न जातियाँ हैं, उन सबका जाति-चिह्न स्पष्ट प्रकाशित होता है। देखो, जितने प्रकार की घास, लता और वृक्षादि हैं, यद्यपि वह आत्म-प्रकाश करने में असमर्थ हैं, तब भी उनका जाति-चिह्न स्पष्ट प्रकाशित होता है। और देखो, नाना भाँति के कीट-पतंग और पिपीलका आदि भी अपने-अपने जाति-चिह्नों को प्रकट करती हैं। और देखो, छोटे-बड़े जितने प्रकार के चौपाए हैं, वह भी अपने भिन्न-भिन्न जाति-चिह्नों को भिन्न-भिन्न प्रकट करते हैं। और देखो, जितने प्रकार की जल में विचरण करनेवाली मत्स्य-जातियाँ हैं, वह भी अपने-अपने जाति-चिह्नों को अलग-अलग प्रकट करती हैं। और देखो, आकाश में विचरण करनेवाली जो नाना भाँति की पक्षी-जातियाँ हैं, वह भी अपने-अपने जाति-चिह्नों को भिन्न-भिन्न प्रकट करती हैं। इसी प्रकार अगणित जीवगण जैसे अपने-अपने जाति-चिह्नों को भिन्न-भिन्न प्रकट करते हैं, उसी प्रकार मनुष्य-जाति अपने भिन्न-भिन्न जाति-चिह्नों को प्रकट नहीं कर सकती। देखो, शिर, केश, आँख, कान, अधरोष्ठ (ऊपर और नीचे का होंठ), भौं, नाक, मुँह, गला, पीठ, कंधा, छाती, पेट, जाँघें, मूत्र या जनन-इंद्रिय, काम-वासना, हाथ-पैर, हथेली, तलवा, नख, गुल्फ, शरीर का रंग और शब्द-स्वरादि, ये सब उपर्युक्त जीवगणों की तरह

मनुष्य-जाति की ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जातिगत भिन्नता को नहीं प्रकट कर सकते। विभिन्न प्राणियों के जाति-विभाजक चिह्न जैसे उनके शरीरों में परिलक्षित होते हैं, वैसे मनुष्य-जाति में ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जाति-विभाजक कोई प्राकृतिक चिह्न नहीं पाए जाते। मनुष्यों में जो कुछ प्रभेद है, वह केवल नाम-मात्र का और कृत्रिम प्रभेद है। वास्तविक प्रभेद नहीं। अतएव हे वाशिष्ठ! तुम इस बात को भली भाँति समझ लो कि जो मनुष्य गो-पालन के द्वारा अपनी जीविका चलाता है, वह गोपाल, राखाल या कृषक है; वह कभी ब्राह्मण नहीं कहला सकता। हे वाशिष्ठ! इसी प्रकार जो मनुष्य नाना प्रकार के शिल्प-कर्म करके अपनी जीविका चलाता है, वह शिल्पकार, कारीगर, शिल्पी आदि ही कहा जाता है; ब्राह्मण कभी नहीं कहा जा सकता। हे वाशिष्ठ! जो मनुष्य वाणिज्य द्वारा अपनी जीविका करता है, वह सौदागर, साधु वा वणिक् नाम से पुकारा जाता है; ब्राह्मण कभी नहीं कहा जा सकता। हे वाशिष्ठ! जो मनुष्य पराई सेवा-टहल करके अपनी जीविका चलाता है, वह भृत्य, दास, सेवक, चेटक आदि कहा जाता है, ब्राह्मण कभी नहीं कहा जा सकता। हे वाशिष्ठ! जो मनुष्य चोरी करके अपनी जीविका चलाता है, वह पर-धन-अपहारी, तस्कर, चोर, आदि कहलाता है; ब्राह्मण कभी नहीं कहा जा सकता। हे वाशिष्ठ! जो मनुष्य धनुष-बाण आदि शस्त्रों के व्यवहार-द्वारा योद्धा-वृत्ति से अपनी जीविका चलाता है, वह धनुर्धर, योधा आदि कहलाता है; ब्राह्मण कभी नहीं कहा जा सकता। हे वाशिष्ठ! जो मनुष्य, गृहस्थों के यहाँ यज्ञादि-कर्म कराता है, वह

पुरोधा, पुरोहित, याज्ञिक आदि कहा जाता है; ब्राह्मण कभी नहीं कहा जा सकता। हे वाशिष्ठ! जो मनुष्य ग्राम, देश व राज्यादि का शासन करता है, वह नरपति, महिपाल, भूपाल आदि कहलाता है; ब्राह्मण कभी नहीं कहा जा सकता।"

"हे वाशिष्ठ! हम किसी को उत्तम कुल के माता-पिता के यहाँ जन्म पाने के कारण ब्राह्मण नहीं कहते, हम ऐसे को भववादी या देहाभिमानी कहते हैं, किंतु जो मनुष्य निर्वाण-तत्त्व को प्राप्त अर्थात् जीवन-मुक्त है और किसी प्रकार के संसारी विषय-भोग में लिप्त नहीं है, ऐसे ही मनुष्य को हम यथार्थ ब्राह्मण कहते हैं। जिसने अपने समस्त संसारी बंधनों को काट डाला है, जिसके मन में कभी भय-कंपन नहीं होता, ऐसे विमुक्त को ही हम यथार्थ ब्राह्मण कहते हैं। प्रेम और वैर को जिसने त्याग दिया है, हर प्रकार के पाखंड को जिसने जड़-सहित उखाड़कर फेंक दिया है, जो मोह-रहित है और जिसने सब प्रकार के विघ्नों का विनाश कर दिया है, इस प्रकार के जो बुद्ध पुरुष हैं, उन्हीं को हम यथार्थ ब्राह्मण कहते हैं। जो हर प्रकार के दोषों से हीन हैं, जो लोगों की निंदा और तिरस्कार-वाक्यों को सहन करते हैं, अकस्मात् विपद् आ जाने पर भी जिनका मन विचलित नहीं होता, जो दूसरों के ताड़न-बंधनादि कुकृत्यों को अनायास ही सह सकते हैं, जो सहिष्णुता के बल से बलवान् हैं, और क्षमा-रूपी सेनापति हर समय जिनकी रक्षा करता है, हम उन्हें ही सच्चा ब्राह्मण कहते हैं। जो क्रोध-रहित, सरलता की मूर्ति, शांत, दांत, धार्मिक, वासनाओं से विवर्जित, और जिसने यह अंतिम शरीर

धारण किया है, जो इस शरीर के ध्वंस होने के बाद फिर जन्म-मरण के चक्र में नहीं आवेगा, हम उसे ही सच्चा ब्राह्मण कहते हैं। जिस प्रकार कमल के पत्ते पर जल-बिंदु नहीं ठहरता और सुई की नोक पर सरसों नहीं ठहरता, उसी प्रकार जिस व्यक्ति के चित्त में काम-भोग की वासना नहीं ठहरती अर्थात् जो विषय-भोग से निर्लिप्त है, हम उसे ही सच्चा ब्राह्मण कहते हैं। जिन्होंने दुःखों के दूर करने का यथार्थ मार्ग जान लिया है, जो सांसारिक तृष्णा और अहंकार-ममकार के बोझ को अपने सिर से दूर करके स्वाधीन और विमुक्त हो गए हैं, हम उन्हीं को सच्चा ब्राह्मण कहते हैं। गंभीर, प्रज्ञाशाली और सत्यासत्य के मार्ग को जाननेवाले जिस विद्वान् ने परम कल्याण को प्राप्त कर लिया है, उसी को हम सच्चा ब्राह्मण कहते हैं। जो कामना-शून्य महापुरुष गृहस्थ या वनस्थ किसी से अधिक न मिल-कर एकांत-सेवन करता है, या कभी पर्यटन भी करता है, हम उसी को यथार्थ ब्राह्मण कहते हैं। सबल-दुर्बल आदि जितने भी जीवगण हैं, जो मनुष्य अपने चित्त से उनकी हिंसा नहीं करना चाहता, न स्वयं उनका वध करता है और न वध का कारण होता है, हम उसी को सच्चा ब्राह्मण कहते हैं। जो अपने अपकारी के संग में भी उपकार करता है, जो अत्याचारी के साथ भी सदाचार का बर्ताव करता है, जो विषय-लिप्त पुरुषों के बीच में रहकर भी निर्लिप्त रहता है, उसी को हम सच्चा ब्राह्मण कहते हैं। जो कभी झूठ, कटु और अनर्थक वाक्य नहीं बोलते, जो सदैव सत्य और परोपकारी वचन ही बोलते हैं, हम उन्हीं को यथार्थ ब्राह्मण कहते हैं। जो किसी की

बड़ी-छोटी या अच्छी-बुरी चीज़ बिना उसके दिए कभी ग्रहण नहीं करता और जो संग्रह नहीं करता, हम उसे ही सच्चा ब्राह्मण कहते हैं। जिसके चित्त में इस लोक या परलोक की किसी प्रकार की वासना नहीं है, ऐसे वीत-तृष्ण और विमुक्त पुरुष को ही हम सच्चा ब्राह्मण कहते हैं। जो ज्ञात और श्रुत हर प्रकार के संशय से विमुक्त है, जिसको इस त्रिभुवन में किसी बात के प्राप्त करने की कुछ अभिलाषा नहीं है, जिसने निर्वाण-रूपी अमृत-सिंधु की गंभीरता को प्राप्त कर लिया है, हम उसी को सच्चा ब्राह्मण कहते हैं। इस संसार में जिसने अपने पाप और पुण्य दोनो के बंधनों को पूर्ण रूप से छेदन कर डाला है, ऐसे शोक-हीन और रज-हीन पवित्र पुरुषों को ही हम सच्चा ब्राह्मण कहते हैं। जो चंद्रमा की तरह निर्मल, निष्पाप, पवित्र, शांत, निरुद्वेग-मन है, और जिसने अपने दुःख-सुख का निर्वाण कर डाला है, हम उसी को सच्चा ब्राह्मण कहते हैं। जिसके पथ को जानने में संपूर्ण मनुष्य, उरग, गंधर्व, देवगण आदि भी असमर्थ हैं, ऐसे जितेंद्रिय, जाग्रत् और सर्वज्ञ अर्हत् पुरुष को ही हम सच्चा ब्राह्मग कहते हैं। जिसको इस त्रिभुवन में अब कुछ आदि, अंत और मध्य शेष नहीं है, इस प्रकार निर्वाण-प्राप्त निर्लिप्त पुरुष को ही हम सच्चा ब्राह्मण कहते हैं। जो नरर्षभ, निःशंक, वलिष्ठ, महावीर, महा-ऋषि, विचक्षण, विजयी, वितृष्ण, शुद्ध, बुद्ध-पुरुष हैं, हम उन्हीं को सच्चा ब्राह्मण कहते हैं। जो पूर्व-जाति-स्मर-ज्ञान से युक्त है अर्थात् जो अपने पूर्व-जन्म के वृत्तांत को जानता है, जो दिव्य-चक्षु-ज्ञान से युक्त है अर्थात् जो इस अनंत ब्रह्मांड की स्थूल-सूक्ष्म रचनाओं का

प्रत्यक्ष अनुभव करता है, जो आसव-क्षय-ज्ञान से युक्त है, अर्थात् जिसने अपने संपूर्ण क्लेशों को ध्वंस करके निर्वाण को साक्षात् कर लिया है, हम उसी को सच्चा ब्राह्मण कहते हैं।"

"हे वाशिष्ठ! इस पृथ्वी पर (प्रपंच में) केवल संज्ञा-मात्र ही प्रतीत होता है, और जो कुछ है भी, वह सब कल्पित है। सामान्य ज्ञान से ही यह बात अनुभव में आ जाती है। सिवाय संज्ञा के पृथ्वी में जितने भी जाति-गोत्रादि हैं, सब कल्पित हैं। मूढ़ता के कारण जिसकी आँख में अँधियारी छाई हुई है, मोह के कारण जिसका मन बिलकुल जड़ हो गया है, इस प्रकार के मूढ़, मोहावृत अज्ञानी लोग ही यह कहते हैं कि जन्म से ब्राह्मण होता है। परंतु मैं कहता हूँ कि जन्म से न कोई ब्राह्मण होता है और न कोई अब्राह्मण; कर्म से ही ब्राह्मण होता है और कर्म से ही अब्राह्मण; कर्म से ही कृषक होता है, कर्म से ही शिल्पकार; कर्म से ही वणिक् होता है, कर्म से ही श्रमिक; कर्म से ही चोर होता है, कर्म से ही सेनापति; कर्म से ही पुरोहित होता है, कर्म से ही राजा। इस संसार में जो कर्म की महत्त्वता को जानते हैं, वही ज्ञानी पुरुष इस कर्म-सिद्धांत के तत्त्व को समझ सकते हैं। इस संसार में केवल कर्म ही सत्य है। अतएव तपश्चर्या, ब्रह्मचर्य, आत्म-संयम, इंद्रिय-निग्रह, काम-क्रोधादि रिपुओं का दमन, त्रिविद्या अर्थात् पूर्व-जाति-स्मर-विद्या, दिव्य-चक्षु-ज्ञान-विद्या, आसव-क्षय-विद्या आदि से विभूषित, शांत, दांत, पुरुष को ही, हे वाशिष्ठ! तुम सच्चा ब्राह्मण जानना।"

इस प्रकार भगवान् बुद्ध के वचन को सुनकर वाशिष्ठ और भारद्वाज दोनो ब्राह्मण-युवक भगवान् की सभक्ति स्तुति करने लगे कि

"हे भगवन्! आपका यह हृदयग्राही, अति उत्तम, प्रकाशपुंज और मनोहर उपदेश सुनकर हम लोग कृतकृत्य हुए। जैसे कोई पतित का उद्धार करे, अँधियारे में प्रकाश दिखलावे, भूले हुए को रास्ता बतलावे, उसी प्रकार, हे भगवन्! आपका यह पाव-धर्मोपदेश है। आपने हमारे प्रश्न की मीमांसा विविध प्रकार से और ऐसी सरलता-पूर्वक कर दी है कि इसे साधारण लोग भी अति सुगमता से समझ सकेंगे। आज से हम दोनो बुद्ध, धर्म और संघ का आश्रय ग्रहण करते हैं। हे भगवन्! आप कृपा करके हम दोनो को अपने उपासकों में ग्रहण कीजिए। आज से हम दोनो जीवन-भर आपके चरणाश्रित रहेंगे।"

प्राचीन ब्राह्मण कैसे थे? उनका पतन कैसे हुआ?

एक समय जब भगवान् श्रावस्ती के अनाथपिंडक के जेतवन-विहार में अपने शिष्यों-समेत विराजमान थे, कोशल-देश के कुछ संपन्न अति वृद्ध ब्राह्मण लोग वहाँ उपस्थित हुए, और नियम-पूर्वक शिष्टाचार के साथ बैठे तथा कुछ धर्म-चर्चा करने के बाद उन लोगों ने अति नम्रतापूर्वक भगवान् से प्रश्न किया कि "हे भगवन्! वर्तमान समय में ब्राह्मणों का जैसा आचार-विचार है, क्या प्राचीन काल के ब्राह्मणों का भी आचार-विचार ऐसा ही था?"

भगवान् ने कहा—"नहीं, वर्तमान समय के ब्राह्मणों के आचार-विचार की तरह प्राचीन समय के ब्राह्मणों का आचार-विचार नहीं था।"

वृद्ध ब्राह्मणों ने भगवान् से प्रार्थना की—"हे भगवन्! तो फिर प्राचीन समय के ब्राह्मणों के आचार-विचार कैसे थे? उसे आप कृपा करके विस्तार के साथ कहिए।"

वृद्ध ब्राह्मणों का वचन सुनकर भगवान् बोले—"प्राचीन ऋषि ब्राह्मण लोग संयत-आत्मा और तपस्वी होते थे। वे लोग पाँचो काम-इंद्रियों के सुख को छोड़कर आत्म-कल्याण में निरत रहते थे। उन ब्राह्मणों के पास पशु, सोना, धान्य आदि वस्तुएँ नहीं होती थीं। स्वाध्याय करना ही उनका धन-धान्य था। वे मित्रता, करुणा, मुदिता, उपेक्षा-रूपी ब्रह्म-विहार-धारणा में निरत रहा करते थे। गृहस्थ लोग जो भोजन बनाकर द्वार पर उपस्थित ब्राह्मण को श्रद्धापूर्वक दान करते थे, उसी को ग्रहण करके वे संतोष-पूर्वक अपना निर्वाह करते थे। भाँति-भाँति के रंगीन और कोमल वस्त्र तथा बिछौनों के व्यवहार करनेवाले, तरह-तरह के रंग-बिरंगे और ऊँचे मकानों में वास करनेवाले लोग सारे देश के दूर-दूर प्रांतों से आकर उन ब्राह्मणों के सामने मस्तक नवाते थे। वे ब्राह्मण अवध्य, अजेय और धर्म से रक्षित होते थे और उनको सब कहीं कोई भी अपने दरवाज़े पर खड़े होने से नहीं रोकता था। पहले ब्राह्मण पैंतीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करके विद्या और आचार के अन्वेषण में लगे रहते थे। वे ब्राह्मण दूसरे की स्त्री से संभोग नहीं करते थे और न कभी स्त्री को खरीदते थे; विवाह करके परस्पर प्रेमपूर्वक भली भाँति मिल-जुलकर रहना पसंद करते थे। वे ब्राह्मण अपनी स्त्री के साथ भी बिना ऋतु के, जो रजोदर्शन के बाद होता है, कभी दूसरे समय में मैथुन-कर्म नहीं करते थे। वे ब्रह्मचर्य, शील, सरलता, मृदुता, तप, सहानुभूति, दया-भाव और सहनशीलता की शिक्षा देते थे। जो उन ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, दृढ़, पराक्रमी ब्रह्मा होता था, वह कभी स्वप्न में भी

मथुन-कर्म नहीं करता था। उसी ब्रह्मा के आदर्श जीवनाचरण के अनुकूल ब्राह्मण लोग अपना जीवन बनाते थे और ब्रह्मचर्य, क्षमा एवं शील की सदा प्रशंसा किया करते थे। वे ब्राह्मण चावल, वस्त्र, बिछौना, तेल और घृत धर्मपूर्वक माँगकर संग्रह करते थे, और उसी से अपना यज्ञ-कर्म साधन किया करते थे। उस यज्ञ में कभी गौ नहीं मारते थे। माता, पिता, भाई तथा अन्य संबंधियों की तरह गौ भी हमारी परम मित्र है, उसमें ओषधियाँ पैदा होती हैं। ये गौवें अन्न देनेवाली, वस्त्र देनेवाली, सौंदर्य देनेवाली और सुख देनेवाली हैं, इस सच्ची बात को जानकर वह गौवों को नहीं मारते थे। वे ब्राह्मण लोग प्रसन्न-वदन, विशाल-काय, सुन्दर, यश-स्वी, धर्म-परायण और अपने सब प्रकार के कर्तव्यों के पालन में सदा उत्सुक रहते थे। जब तक ब्राह्मणों के ऐसे अच्छे आचरण रहे, तब तक वे सुखी और मेधा-संपन्न थे और प्रजा भी सुखी थी।"

"परंतु धीरे-धीरे ब्राह्मणों की प्रकृति बदल गई। जब उन लोगों ने देखा कि दूसरे क्षत्रिय आदि लोग खूब सुख और ऐश्वर्य भोग रहे हैं तथा प्रचुर धन-धान्य से परिपूर्ण हैं, उनकी स्त्रियाँ अनेक भाँति के आभूषणों से लदी हुई हैं, वे लोग अच्छे-अच्छे घोड़ों से युक्त रथों पर चढ़ते हैं, बड़े-बड़े ऊँचे रंग-बिरंगे मकानों में रहते हैं, उनके पास खूब अच्छी रंग-बिरंगी गौवें हैं, वे अनेक प्रकार के हाथी-घोड़ा और दास-दासियों से युक्त हैं, तो इन महान् भोगों को देखकर उनका मन ललचाया और वे लोभ के वशीभूत हो गए। तब वे वेद-मंत्रों की रचना करके महाराजा इक्ष्वाकु के पास गए और जाकर कहा—

'हे राजन् ! आप बहुत धन-धान्य-संपन्न हैं, आप यज्ञ कीजिए, तो आपके धन की और भी वृद्धि होगी ।' महाराज इक्ष्वाकु ने ब्राह्मणों के कहने के अनुसार अनेक अश्वमेध, पुरुषमेध, वाजपेय, निरर्गल (सर्वमेध) आदि यज्ञ किए, और उन ब्राह्मणों को अनेक गौवें, शय्या, वस्त्र और अलंकारों से युक्त स्त्रियाँ, सुंदर घोड़ों से युक्त उत्तमोत्तम रथ, सुंदर रंग-बिरंगे चित्रों से खचित एवं छोटे-बड़े कमरों में विभक्त ऊँचे-ऊँचे महल और नाना प्रकार के धन-धान्य यज्ञ की दक्षिणा में दिए। जब ब्राह्मण लोग इक्ष्वाकु से नाना विधि भोग की वस्तुएँ दान-दक्षिणा में लेकर अपने-अपने घर गए और आनंद-पूर्वक अच्छी तरह से दिन काटने लगे, तब उनकी तृष्णा और भी अधिक बढ़ गई। फिर वे लोग और बहुत-से वेद-मंत्रों की रचना करके महाराज इक्ष्वाकु के पास आए और बोले—'हे राजन् ! आप बहुत बड़े धन-धान्य-संपन्न राजा हैं, मनुष्यों के लिये जैसे जल, पृथ्वी, सोना, चाँदी, धन-धान्य आदि सब वस्तुएँ उपयोगी संपत्ति हैं, वैसे ही गौ भी एक उपयोगी संपत्ति है, इस गौ के हनन द्वारा यदि आप यज्ञ करें और उस यज्ञ में ब्राह्मणों को खूब दान-दक्षिणा दें, तो आप को बहुत बड़ा पुण्य होगा और आपकी श्री की बहुत वृद्धि होगी।' इस प्रकार ब्राह्मणों से प्रेरित होकर महाराज इक्ष्वाकु ने कई लाख गौवों का यज्ञ में घात किया। जो गौ भेंड़ के समान नम्र होती है, अपने पैर सींग या अन्य किसी अंग से दूसरे को दुःख नहीं देती, वरन् दूध के घड़े भर देती है, ऐसी परम उपयोगी सीधी-सादी गौवों को, ब्राह्मणों के कहने के अनुसार, राजा ने सींग पकड़-पकड़कर शस्त्रों

से हनन किया। इस हृदय-विदारक लोमहर्षण दुष्कृत्य को देखकर देवता, पितर, इंद्र, असुर, राक्षस सब चिल्ला उठे और कहने लगे कि 'बड़ा अनर्थ हो रहा है, जो ऐसे परम उपयोगी पशुओं पर शस्त्र चलाया जा रहा है!' इस दुष्कृत्य के पहले इस संसार में तीन ही रोग थे, अर्थात् इच्छा, भूख और वृद्धावस्था। परंतु गौवों का हनन होने से अट्ठान्नवे प्रकार के रोग हो गए। यह अट्ठान्नवे प्रकार के रोग-रूप दंड का देनेवाला गोहिंसा-युक्त पाप-यज्ञ महाराज इक्ष्वाकु के समय का पुराना है, जिसमें निरपराधिनी गौवें मारी जाती हैं। इसी के कारण याजक ब्राह्मण लोग धर्म से पतित हो गए! इस प्रकार यह याज्ञिक धर्म पुराना होने पर भी बुद्धिमान् पुरुषों के सामने तुच्छ और गर्हित है, और जहाँ धर्मज्ञ मनुष्य इन याज्ञिक ब्राह्मणों को देखता है, वहाँ उनकी निंदा करता है।"

"इस प्रकार याज्ञिक धर्म के प्रचार द्वारा सद्धर्म के नाश होने पर समाज छिन्न-भिन्न होकर पतित हो गया। क्षत्रिय सबसे अधिक धर्म-च्युत हो गए और स्त्रियाँ पतियों का अनादर करने लगीं। उस समय क्षत्रिय, ब्राह्मण आदि शाश्वत-धर्म से पतित हो जाति-वाद के विवाद में पड़कर विषय-भोग और रिपुओं के वशीभूत हो गए।"

इस प्रकार भगवान् बुद्ध के उपदेशों को सुनकर कोशल-देशीय धनशाली वृद्ध ब्राह्मण लोग बहुत संतुष्ट और पुलकित हुए तथा भगवान् के चरणों में प्रणाम करके बोले—"हे भगवन्! हम आज से बुद्ध, धर्म और संघ की शरण लेते हैं, आप हम लोगों को अपने उपासकों में ग्रहण करके कृतार्थ कीजिए।"

ब्रह्म-सायुज्य कैसे लाभ होता है ?

एक समय भगवान् अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ विचरते हुए कोशलराज के मनसाकट ग्राम के, जो ब्राह्मणों की बस्ती थी, दक्षिण ओर अचिरवती नदी के किनारे आम के बाग़ में ठहरे थे। इसी समय पूर्वोक्त वाशिष्ठ और भारद्वाज नामक दोनो ब्राह्मणों में ब्रह्म-सायुज्य (ब्रह्म के संग एकता) के विषय में विवाद होने लगा। एक व्यक्ति उस समय के आचार्य तारुक्ष, और दूसरा व्यक्ति आचार्य पुष्करसादि का मत लेकर विवाद करने लगा। बहुत देर तर्क-वितर्क करने पर भी जब वे कुछ निर्णय न कर सके, तो इस विवाद का निर्णय करने के लिये भगवान् बुद्ध के पास आए, और सादर प्रणाम करने के अनंतर ब्रह्म-सायुज्य लाभ करने के विषय में अपना विवाद कहकर भगवान् से ब्रह्म-सायुज्य लाभ करने का सरल मार्ग पूछा।

भगवान् उनकी बात सुनकर बोले—"तुम दोनो ही अपने-अपने पक्ष को ठीक कहते हो, तब फिर झगड़ा किस बात का है ?"

वह लोग बोले—"अध्वंयु, तैत्तिरीय, छंदोग, छांदस, ब्रह्मचारीगण भिन्न-भिन्न पथ प्रदर्शित करते हैं, परंतु एक ग्राम में जाने के जैसे कई मार्ग होते हैं, क्या यह भी उसो प्रकार है ? क्या ये सभी रास्ते ठीक हैं ? क्या इन सभी रास्तों के द्वारा जाने से ब्रह्म-सायुज्य लाभ हो सकता है ?"

भगवान् बोले—"क्या तुम इन सभी रास्तों को ठीक कहते हो ?"

उन लोगों ने कहा—"हाँ।"

भगवान् ने फिर पूछा—"क्या तीनो वेदों* के ज्ञाता, तीनो वेदों के वक्ता, तीनो वेदों के शिक्षक, त्रिवेदाध्यायी प्राचीन ऋषि लोग, अथवा वर्तमान ब्राह्मण लोगों के सात पुरुषों में से किसी ने भी उस ब्रह्म का साक्षात् दर्शन किया है ?"

उन लोगों ने कहा—"नहीं।"

भगवान् ने कहा—"तो वे त्रिवेद-विद् ब्राह्मण कैसे कहते हैं कि जिसको वे जानते नहीं, जिसे उन्होंने कभी देखा नहीं, उसके संयोग का रास्ता वह बता सकते हैं ? क्या यह मूर्खों की बात नहीं है ? यदि दस अंधे एक दूसरे का हाथ पकड़कर चलें, तो उनमें से आगेवाला; पीछेवाला या बीचवाला कोई भी अंधा क्या कुछ देख सकता है ? ये लोग सूर्य की स्तुति-प्रार्थना करते हैं, चंद्र की स्तुति-प्रार्थना करते हैं, किंतु क्या कोई यह कह सकते हैं कि इस सीधे मार्ग द्वारा सूर्य या चंद्र से मिला जा सकता है ? जैसे कोई पुरुष किसी स्त्री पर मुग्ध हो और उसके मित्र उससे यह पूछें कि 'तुम जिस पर मुग्ध हो, उसका नाम क्या है ? उसका वंश क्या है ? वह मोटी है या दुबली है ? वह कौन रंग की है ? वह कहाँ रहती है ?' और यदि वह उत्तर दे कि हम यह कुछ भी नहीं जानते, किंतु उसका प्यार करते हैं। या जैसे कोई व्यक्ति ऊँची अट्टालिका पर चढ़ने के लिये सीढ़ी बनवाता हो, और उससे कोई आदमी पूछे कि 'तुम जिस अट्टालिका

* प्राचीन काल में वेद तीन ही थे। इसीलिये प्राचीन ग्रंथों में वेदों को वेदत्रयी और वेदविद्या को त्रयीविद्या लिखा है। विशेषज्ञों का मत है कि अथर्व-वेद की रचना तांत्रिक काल में हुई है।

पर चढ़ने के लिये सीढ़ी बनवाते हो, वह मकान किस तरफ़ है? उसका आकार कैसा है? उसकी ऊँचाई और गंभीरता कितनी है?' और वह उत्तर दे, हम यह कुछ नहीं जानते, किंतु हम सीढ़ी पर चढ़कर अट्टालिका पर जायँगे। तो क्या वह व्यक्ति मूर्ख नहीं है? या जैसे नदी के एक किनारे पर खड़ा हुआ मनुष्य पार जाने के लिये दूसरे किनारे पर खड़े हुए आदमी को बुलावे, तो क्या वह मूर्ख नहीं है?"

"इसी प्रकार ये सब ब्राह्मण लोग भी, जिन सब सद्गुणों के अभ्यास करने से ब्रह्म-सायुज्य लाभ हो सकता है, उनका अभ्यास न करके, जिन सब असद्गुणों से ब्रह्म-सायुज्य लाभ नहीं हो सकता, उनका अभ्यास करते हैं। और कहते हैं—'हे इंद्र! हम लोग तुम्हारा आवाहन करते हैं। हे वरुण! हम लोग तुम्हारा आवाहन करते हैं। हे ईशान्! हम लोग तुम्हारा आवाहन करते हैं। हे प्रजापते! हम लोग तुम्हारा आवाहन करते हैं। हे यम! हम लोग तुम्हारा आवाहन करते हैं।' यह ठीक है कि ये लोग आवाहन करते हैं, प्रार्थना करते हैं, आशा करते हैं और स्तुति करते हैं; परंतु मृत्यु के बाद ये लोग ब्रह्म-सायुज्य नहीं लाभ कर सकते। जैसे एक आदमी पैरकर नदी पार करना चाहता हो, किंतु यदि उसके हाथ-पैर ज़ंजीरों से जकड़े हों, तो वह नदी पार नहीं कर सकता, ठीक इसी प्रकार जो शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि विषयों के बंधन से बँधे हैं; काम, हिंसा, आलस्य, अभिमान और संशय के आवरण से ढँके हैं, ऐसे विघ्नों से ग्रसित, ब्रह्म-सायुज्य लाभ करने के सद्गुणों से विरत और तद्-विरुद्ध असद्गुणों में निरत रहनेवाले लोग मरने के बाद ब्रह्म-

सायुज्य लाभ करेंगे, यह बिलकुल असंभव है। अच्छा, हम पूछते हैं, क्या ब्रह्मा के पास स्त्री है? क्या उनके पास धन है? क्या उनमें क्रोध है? क्या वह अविशुद्धचेता और अवशीभूतात्मा हैं?" उन ब्राह्मणों ने कहा—"नहीं।" भगवान् ने कहा—"फिर, जिनके पास यह सब नहीं है, भला उनके साथ उन लोगों का सायुज्य कैसे हो सकता है, जिनके पास स्त्री, धन और क्रोध है तथा जो अविशुद्ध-चेता और अवशीभूतात्मा हैं? जहाँ इस प्रकार के विपरीत गुण विद्यमान हैं, वहाँ दोनो में मेल की संभावना कैसे हो सकती है? इसी कारण वेद-विद् लोगों के ज्ञान को मरुभूमि और पथ-रहित जंगल के समान विनाश का कारण कहा जाता है।"

"विचार करो कि एक मनुष्य इसी मनसाकट ग्राम में जन्मा है, और यहीं लालित-पालित और वर्धित हुआ है, तो क्या उसके लिये इस ग्राम का कोई रास्ता अज्ञात या संशय का विषय हो सकता है? संभव है, उस व्यक्ति को अपने ग्राम के पथ में संशय हो जाय, परंतु ब्रह्मलोक को किस पथ से जाते हैं, इस विषय में तथागत को कुछ भी संशय नहीं हो सकता। क्योंकि ब्रह्मा के ब्रह्मलोक में जाने के उपाय को हम जानते हैं। यहाँ तक कि ब्रह्मलोक में कौन प्रविष्ट हुआ है, किसने वहाँ जन्म ग्रहण किया है, यह सब हमें विदित है। तथा-गत इसीलिये लोक-शिक्षा और लोगों को सत्पथ दिखाने के निमित्त समय-समय पर इस पृथ्वी पर आते हैं।"

इसके बाद भगवान् वाशिष्ठ और भारद्वाज दोनो ब्राह्मणों के प्रार्थना करने पर अपना धर्मोपदेश करने लगे और अहिंसा, अस्तेय,

(चोरी न करना), ब्रह्मचर्य तथा सत्य, मधुर, हितकर और मित-वाक्य, भूतानुग्रह, अप्रतिग्रह आदि सदाचरण के विषय में भली भाँति समझाकर वर्तमान समय के ब्राह्मणों में इसके विपरीत आचरण का प्रदर्शन कराया। भगवान् ने कहा—"बहुत-से श्रवण और ब्राह्मण अपने शिष्यों और यजमानों के मस्तक पर पदार्पण करके अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन, पान, आमोद-प्रमोद, अक्ष-क्रीड़ा (जुए का खेल), उच्चासन (ऊँचे-ऊँचे सोने-बैठने के सुकोमल आसन), गंध द्रव्य (सुगंधित वस्तुएँ), वसन-भूषण इत्यादि भोगों में आसक्त, ज्ञान के अभिमान से दूसरों को जीतने में नियुक्त, अज्ञानी, चाटुकार, नौकर की भाँति धन के लोभ से पराई तावेदारी में निरत, ग्रह-उपग्रह आदि की गणना द्वारा भविष्य-कथन, वंध्यात्व (वाँझ-पना) आदि दोष-निवारण के लिये जंत्र-मंत्र आदि के प्रयोग इत्यादि छल-कपट और धोखेबाज़ी के कामों में रत हैं। ऐसे प्रातीमोक्ष (मोक्ष के विपरीत) मार्ग पर चलनेवाले व्यक्तिगण कभी भी ब्रह्म-सायुज्य लाभ नहीं कर सकते ! नियमित धर्माचरण को करके जिन लोगों के हृदय में संपूर्ण भूतों के प्रति असीम प्रेम, करुणा, सहानुभूति और समता प्रकट होती है, वे ही मनुष्य ब्रह्म-सायुज्य लाभ कर सकते हैं।"

"हे वाशिष्ट ! तुम्हें स्मरण रहे कि ब्रह्मा के पास स्त्री नहीं है, धन नहीं है, उनमें क्रोध नहीं है, हिंसा नहीं है, अविशुद्धचित्तता नहीं है, वे संयत-आत्मा हैं, और भिक्षु लोग भी उसी प्रकार हैं। अतएव भिक्षु लोग ही ब्रह्म-सायुज्य लाभ कर सकते हैं।"

इस प्रकार भगवान् के श्रीमुख से ब्रह्म-सायुज्य लाभ करने का उपाय सुनकर दोनो ब्राह्मण बड़े गद्गद हुए, और संशयरहित हो भगवान् को वारंवार प्रणाम करके चले गए।

चांडाल-तनया प्रकृति को दीक्षा

एक बार भगवान् बुद्ध जब श्रावस्ती में विराजमान थे, उनके प्रिय शिष्य आनंद नगर में भिक्षा के लिये गए। मार्ग में उन्हें प्यास लगी। एक कुएँ पर एक चांडाल की लड़की, जिसका नाम प्रकृति था, पानी भर रही थी। आनंद ने उससे पानी माँगा। चांडाल-कन्या ने कहा—"हे भिक्षु! मैं चांडाल की लड़की हूँ, मैं आपको पानी कैसे दे सकती हूँ?" आनंद ने कहा—"मैंने तुमसे यह तो नहीं पूछा कि तुम किस जाति की हो? मैंने तो तुमसे केवल जल माँगा है।" यह बात सुनकर चांडाल की लड़की ने आनंद को पानी पिला दिया और आनंद पानी पीकर चले गए।

इस जल-दान का फल यह हुआ कि प्रकृति ने भगवान् बुद्ध के साक्षात् दर्शन प्राप्त किए और भगवान् ने अनुकंपा करके उसे धर्मोपदेशों द्वारा उद्बोधित, उत्साहित, अनुरक्त और आनंदित करके अपने भिक्षुणी-संघ में सम्मिलित कर लिया।

इस समाचार को सुनकर श्रावस्ती के सब ब्राह्मण कहने लगे—"गौतम-बुद्ध ने चांडाल-लड़की को दीक्षा दे दी है, देखें वह ब्राह्मण-क्षत्रियों के घरों में कैसे भिक्षा माँगने जाती है?" उन्होंने श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित् को भी इस घटना के विरुद्ध भड़काया। राजा उत्तेजित हो स्वयं रथ पर आरूढ़ होकर यह बात पूछने के लिये भगवान्

के पास आए और भगवान् से इसकी चर्चा की। तब भगवान् बुद्ध उनसे इस प्रकार कहने लगे—

"हे राजन्! त्रिशंकु चांडालों का एक राजा था, शार्दूल उसका पुत्र था। वह बहुत सुंदर था। उसने विधिवत् सब शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त की थी। त्रिशंकु को अपने लड़के के लिये कन्या की आवश्यकता हुई, तो वह एक ब्राह्मण पुष्करसारी के पास गया और उससे उसकी कन्या अपने बेटे के लिये माँगी। ब्राह्मण ने कहा—'तुम चांडाल हो, मैं ब्राह्मण हूँ। चांडाल चांडाल के साथ, ब्राह्मण ब्राह्मण के साथ नाता जोड़ते हैं। तुमने मुझसे यह नाता माँगकर मेरी मान-हानि की है।' त्रिशंकु ने उत्तर दिया—'हे पुष्करसारी! ब्राह्मण और चांडाल दोनो एक ही योनि में उत्पन्न होते हैं, ब्राह्मण आकाश से नहीं आते। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र केवल नाम हैं जो मनुष्यों के बनाए हैं। जिस प्रकार बालक सड़क पर खेलते हैं, और मिट्टी के खिलौने बनाकर आप ही उनके भिन्न-भिन्न नाम रख लेते हैं, किसी को खीर, किसी को दही, किसी को घी कहते हैं; परंतु उन बालकों के कहने से वे खिलौने वैसे नहीं बन जाते। इसी प्रकार मनुष्यों के ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि भिन्न-भिन्न नाम लेने से उनमें कोई भेद नहीं पैदा हो जाता। उनकी आँख, नाक, कान, मुख सब एक ही प्रकार के होते हैं। जिस प्रकार का भेद गाय, घोड़े, गदहे, भेड़, बकरी आदि पशुओं की जातियों में एक दूसरे में पाया जाता है, ऐसा कोई भेद मनुष्यों के चार वर्णों में नहीं दिखाई देता, केवल कर्मों के अनुसार ही सब मनुष्य अपना-अपना वर्ण प्राप्त करते हैं। यह सब मानते

हैं कि ब्रह्मा से मनुष्य की उत्पत्ति हुई है। इससे तो यही सिद्ध होता है कि सब मनुष्य एक ही पिता की संतान हैं, और वे एक दूसरे से भिन्न नहीं हो सकते।' ऐसी ही बहुत-सी बातें जब पुष्करसारी ने सुनीं, तब उससे कोई उत्तर न बन पड़ा, वह चुप हो गया। अंत में यह जानकर कि त्रिशंकु सब शास्त्रों का पूर्ण ज्ञाता है, उसने अपनी कन्या का विवाह उसके पुत्र शार्दूल से पक्का कर दिया। आचार्य के इस निर्णय को सुनकर उसके ब्रह्मचारियों ने उससे कहा—'जब इतने ब्राह्मण पाए जाते हैं, तब आपका चांडाल से संबंध जोड़ना ठीक नहीं है।' परंतु पुष्करसारी ने उत्तर दिया—'जो त्रिशंकु कहता है, ठीक है,' और वह वैसा ही करेगा।"

भगवान् के मुख से इस प्रकार की कथा सुनकर महाराज प्रसेनजित् को बोध हो गया। वह बड़े ही आह्लादित हुए। उनका वर्णाभिमान का संदेह दूर हो गया। वह भगवान् की चरण-वंदना करके चले गए, और नगर में जाकर इस चर्चा से उठी हुई उत्तेजना को शांत कर दिया।

११—भिक्षु-संघ को विविध धर्मोपदेश

राष्ट्र के सात अपरिहातव्य धर्म

इस प्रकार भगवान् बुद्ध अपने बुद्धत्व-लाभ के बाद से ४५ वर्ष तक लगातार धर्म का उपदेश करते हुए अब वृद्ध हो गए। उनके इस धर्म-प्रचार का यह फल हुआ कि शाक्य, मल्ल, लिच्छिवी, कोलि आदि सभी राजवंश उनके अनुयायी हो गए। भारत में कोई ऐसा स्थान नहीं था, जहाँ बौद्ध धर्म के अनुयायी न हों। भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यों का त्याग, पवित्र जीवन, विश्व-बंधुत्व का भाव तथा उनका हृदयग्राही सत्य, सरल और मधुर उपदेश जनता पर ऐसा प्रभाव करता था कि जो लोग उनके धर्म में दीक्षित नहीं भी होते थे, वह भी भगवान् और उनके शिष्यों के प्रति श्रद्धा और भक्ति करते थे। इस बार श्रावस्ती में अपना पैंतालीसवाँ और अंतिम वर्षावास समाप्त करके भगवान् राजगृह की ओर चले। मार्ग में कपिलवस्तु के भग्नावशिष्ट खँडहर को देखा, जिसे राजा प्रसेनजित् के पुत्र विरूढ़क ने ध्वंस कर डाला था। कपिलवस्तु के इस ध्वंसावशेष को देखते एवं मल्ल आदि राज्यों में परिभ्रमण करते हुए भगवान् राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर विराजमान हुए। इस समय मगधराज अजातशत्रु वैशाली की 'वृजि'-जाति के ध्वंस करने का विचार कर रहे थे। वृजि लोग गण-तंत्र (प्रजातंत्र)-पद्धति से शासन करते थे। भगवान् का आग-

मन सुनकर महाराज अजातशत्रु ने अपने महामंत्री वर्षकार को भगवान् के पास सम्मति के लिये भेजा। आज्ञानुसार महामात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान् के निकट आया।

उस समय आनंद भगवान् के पीछे खड़े पंखा झल रहे थे। वर्षकार श्रद्धापूर्वक भगवान् को प्रणाम करके बोला—"हे भगवन्! मगधराज अजातशत्रु ने अवनत-मस्तक और अंजलिबद्ध होकर आपके चरणों की वंदना करके आपसे पूछा है कि "वे आसानी से महा समृद्धिशाली वृजियों का विनाश-साधन कर सकेंगे कि नहीं ?" वर्षकार की यह बात सुनकर भगवान् बोले—"हे ब्राह्मण! (१) जब तक सब वृजि लोग नियमपूर्वक परस्पर मिलकर अपनी सभा करते रहेंगे, (२) जब तक वह लोग मतभेद त्यागकर परस्पर मिलकर काम करते रहेंगे, (३) जब तक वह लोग अपने बनाए नियमों, सदाचार और सत्प्रथा का पालन करते रहेंगे, (४) जब तक वह लोग अपने यहाँ के आदरयोग्य जनों का आदर करते रहेंगे, (५) जब तक उनमें कुल-स्त्री और कुल-कुमारियों का आदर-सम्मान रहेगा और पराई स्त्रियों को ज़बर्दस्ती अपनी स्त्री नहीं बनावेंगे, (६) जब तक वे लोग चैत्यों की वंदना और अपने नगर के पूज्य स्थानों की रक्षा करते रहेंगे, (७) जब तक वे लोग अपने राज्य में आने-वाले अर्हंत पुरुषों और धर्मोपदेशकों की रक्षा, पालन और यथोचित सत्कार करते रहेंगे। ये सातो धर्म जब तक वृजियों में विद्यमान रहेंगे, तब तक उनका अधःपतन नहीं हो सकता। बल्कि वह लोग क्रमशः वृद्धि को ही प्राप्त होते रहेंगे।"

भगवान् की वात सुनकर वर्षकार ने कहा—"हे भगवन् ! आपने जो इन सात अपरिहार्य राष्ट्र-धर्मों का वर्णन किया है, इनमें के एक का भी पूर्णरूप से प्रतिपालन करने से वृजि लोगों का ध्वंस नहीं हो सकता, फिर सातों का अनुष्ठान करने से उनके अभ्युदय और सौभाग्य-वृद्धि का कहना ही क्या है। हे गौतम ! हम देखते हैं कि वृजि-जाति में भेद कराना अति कठिन है, और जब तक उनमें भेद संघटित नहीं होगा, तब तक अजातशत्रु का उनके लिये तैयारी करना अवश्य ही व्यर्थ है। हे भगवन् ! अब हमें आज्ञा दीजिए। हम जाते हैं, क्योंकि हमें अभी बहुत काम करना है।" यह कहकर भगवान् की आज्ञा लेकर वर्षकार राजगृह लौट गए।

भिक्षुओं को सात अपरिहार्य धर्म

इसके बाद एक दिन भगवान् ने आनंद से कहा—"हे आनंद ! सब भिक्षुओं को उपस्थान-शाला में बुलाकर एकत्रित करो।" भगवान् की आज्ञानुसार आनंद ने भिक्षु-संघ को उपस्थान-शाला में बुलाया। भिक्षु-संघ के उपस्थित होने पर भगवान् ने कहा—"हे भिक्षुओ ! मैं तुम लोगों को सात अपरिहातव्य धर्मों का उपदेश देता हूँ, श्रवण करो। जब तक तुम लोग (१) कर्म, (२) भस्म, (३) निद्रा, (४) आमोद में अनुरक्त न होगे, (५) तुम लोगों की पापेच्छा प्रबल न होगी, (६) तुम लोग पापी मित्रों का संग न करोगे और (७) निर्वाण के लिये सदा प्रयत्नशील रहोगे, तब तक तुम्हारा अधःपतन कभी न होगा। हे भिक्षुओ ! और भी सात अपरिहातव्य धर्मों को सुनो। जब तक तुम लोग (१) श्रद्धावान्,

(२) ह्री (लज्जा) वान्, (३) विनयवान्, (४) शास्त्रज्ञ, (५) वीर्यवान्, (६) स्मृतिवान् और (७) प्रज्ञावान् रहोगे, तब तक तुम्हारा पतन नहीं होगा। हे भिक्षुओ! और भी सात अपरिहातव्य धर्म सुनो। जब तक तुम लोग (१) स्मृति, (२) पुण्य, (३) वीर्य, (४) प्रीति, (५) प्रश्रब्धि, (६) समाधि और (७) उपेक्षा इन सात ज्ञान-अंगों का अनुशीलन करते रहोगे, तब तक तुम्हारा अधःपतन नहीं होगा।"

"हे भिक्षुओ! और भी सात अपरिहातव्य धर्म सुनो। जब तक तुम लोग (१) अनित्य, (२) अनात्म, (३) अशुभ, (४) आदीनव, (५) प्रहाण, (६) विराग और (७) निरोध, इन सात प्रकार की संज्ञाओं की भावना करते रहोगे, तब तक तुम लोगों का अधःपतन कभी नहीं होगा; अर्थात् तुम लोग यह भावना करोगे कि संसार की सब वस्तुएँ अनित्य हैं, अलीक हैं, परिणाम में अशुभ हैं, और सब पापमय हैं (अतः दुःखमय भी हैं)। इस प्रकार की भावना करते हुए, उत्पन्न हुए पुण्य की रक्षा करना, अनुत्पन्न पुण्य का लाभ करना, उत्पन्न पापों का परित्याग करना और नए पापों को उत्पन्न न होने देना, इन चतुर्प्रहाणों में सम्यक् चेष्टावान् रहोगे और सांसारिक भोग-विषयों की आसक्ति का त्याग तथा वासना और तृष्णा-समूहों का ध्वंस करोगे, तो तुम जन्म-मरण के स्रोत से निकलकर निर्वाण-पद को प्राप्त कर लोगे, जहाँ से फिर कभी पतन नहीं होगा।"

"हे भिक्षुओ! और भी छः अपरिहातव्य (अवनति-विनाशक) धर्म श्रवण करो। जब तक तुम लोग भीतर-बाहर से पवित्र शीलवंत

भिक्षुओं से (१) शारीरिक सद्भाव और मैत्री रक्खोगे, (२) वाचनिक सद्भाव और मैत्री रक्खोगे, (३) मानसिक सद्भाव और मैत्री रक्खोगे, (४) प्राप्त की हुई भिक्षा को स्वयं सब न खाकर उन शीलवंत भिक्षुओं के संग बाँटकर खाओगे, (५) अपने सदाचार की निरंतर रक्षा करते रहोगे और (६) सद्धर्म की ओर दृष्टि रक्खोगे, तब तक तुम लोगों का अधःपतन कभी नहीं होगा।"

शील, समाधि और प्रज्ञा का उपदेश

इस प्रकार उपस्थान-शाला में भिक्षु-संघ को धर्मोपदेश देकर भगवान् आनंद को साथ लेकर राजगृह से अंबलस्थिका नामक स्थान में गए। वहाँ भगवान् ने आस-पास के सब भिक्षुओं को एकत्र कर शील, समाधि और प्रज्ञा के विषय में समझाया कि "हे भिक्षुओ! शील से परिशुद्ध समाधि, समाधि से परिशुद्ध प्रज्ञा, और प्रज्ञा से परिशुद्ध चित्त-रूपी महाफल उत्पन्न होता है; चित्त परिशुद्ध होने पर मनुष्य काम, अस्मिता, मिथ्या-दृष्टि और अविद्या, इन चारो दुःखों से विमुक्त हो जाता है। इसलिये 'शील, समाधि और प्रज्ञा का तुम्हें यत्न-पूर्वक निरंतर सेवन करना चाहिए।" इस प्रकार अंबलस्थिका में अपना धर्मोपदेश समाप्त कर आनंद को साथ लिए हुए भगवान् नालंदा गए।

सारिपुत्र का अनन्य भक्ति-प्रदर्शन

नालंदा पहुँचकर भगवान् प्रत्ररिकाम्र वन में विराजमान हुए। इसी समय भगवान् के परम-प्रिय शिष्य सारिपुत्र भगवान् का आगमन सुनकर उनसे मिलने आए और यथाविधि अभिवादन करके एक

ओर बैठ गए। फिर परम भक्ति-भाव-भरे शब्दों में बोले—"हे भगवन्! आपके प्रति हमारी अत्यंत दृढ़ भक्ति है। क्योंकि हमारी दृष्टि में आपसे बढ़कर सम्यक् संबोधि-प्राप्त कोई श्रवण या ब्राह्मण न भूतकाल में हुआ है, न भविष्य में होने की आशा है, और न वर्तमान में है।" सारिपुत्र के इस प्रकार भक्ति-भरे शब्दों को सुनकर भगवान् बोले—"हे सारिपुत्र! तुम्हारा यह वाक्य अति उदार, सिंह-नादवत् साहसिक और अटल भक्ति का परिचय देनेवाला अवश्य है, पर हम तुमसे पूछते हैं क्या तुमने अतीत काल के समस्त सम्यक् संबुद्ध अर्हत लोगों के चित्त के साथ अपने चित्त को ठीक मिलाकर देखा है कि वह लोग किस प्रकार शील-संपन्न, धर्म-परायण, प्रज्ञावान्, निर्वाण-प्राप्त और करुणा वितरण करनेवाले थे? और क्या तुम जानते हो कि भविष्य-काल में जो होंगे वह कैसे होंगे? और हे सारिपुत्र! वर्तमान समय में मैं जो सम्यक् संबुद्ध तथागत अर्हत् हूँ, तो क्या तुमने मेरे चित्त के संग अपने चित्त का विनिमय करके यह ठीक जान लिया है कि मैं किस प्रकार शील-संपन्न, धर्म-परायण, प्रज्ञावान्, निर्वाण-प्राप्त और जीवों पर करुणा वितरण करनेवाला हूँ?" भगवान् की यह बात सुनकर सारिपुत्र बोले—"हे भगवन्! अतीत काल के सम्यक् संबुद्ध अर्हत्, अनागत काल के सम्यक् संबुद्ध अर्हत् और वर्तमान काल के सम्यक् संबुद्ध अर्हत् लोगों के चित्त के साथ अपने चित्त को मिलाकर देखने में यद्यपि मैं समर्थ नहीं हूँ, तथापि मैं आपके विषय में यह विश्वास करता हूँ कि सम्यक् संबोधि के विषय में आपसे श्रेष्ठ ज्ञाता भूत, भविष्य और वर्तमान में कोई श्रवण

और ब्राह्मण नहीं है। यद्यपि यह सच है कि मैंने भूत, भविष्य और वर्तमान काल के सम्यक् संबुद्ध अर्हत गणों के ज्ञान की तुलना नहीं की है, किंतु मैं धर्म के अन्वय अर्थात् परंपरा-क्रम को जानता हूँ। इस कारण कह सकता हूँ कि जैसे किसी राजा का अति उत्तुंग सुविशाल दुर्ग बना हो और वह चारो ओर से सुदृढ़ ऊँची दीवार से घिरा हो तथा उस क़िले में जाने के लिये एक ही सुविशाल द्वार हो, और उस सुविशाल द्वार पर एक अत्यंत चतुर और निपुण द्वार-पाल नियत हो, और वह चतुर द्वारपाल सदैव द्वार पर उपस्थित रह-कर परिचित लोगों को भीतर जाने देता हो और अपरिचितों को भगा देता हो, और उस दुर्ग के भीतर जाने के लिये उस फाटक के अतिरिक्त दूसरा कोई भी मार्ग न हो, यहाँ तक कि दुर्ग की दीवार में कोई ऐसा छोटा झरोखा भी न हो जिसके रास्ते एक छोटी-सी बिल्ली भी भीतर जा सके, परंतु उस क़िले में भीतर जाने के लिये उस फाटक से हाथी-जैसा बड़े-से-बड़ा प्राणी और बड़ी-से-बड़ी चीज़ें सब आ-जा सकती हैं। हे भगवन्! इसी प्रकार अतीत, भविष्य और वर्तमान काल के सम्यक् संबुद्ध अर्हंत् लोगों ने निम्नोक्त धर्म का एक ही द्वार निर्दिष्ट किया है। यथा—पहले काम, हिंसा, आलस्य, विचिकित्सा (संशय) और मोह, ये जो पाँच प्रकार के प्रतिबंधक कहलाते हैं, इनको दूर करना चाहिए। दूसरे क्रोध, उपनाह, मुक्ष, प्रहाण, ईर्ष्या, मात्सर्य्य, शठता, माया, मद, विहिंसा, अह्री (निर्लज्जता), अनयाजया, स्त्यान, उद्धत्य, अश्रद्धा, कौसीद्य, प्रमाद, मुषितस्मृता, विक्षेप, असं-प्रजन्य, कौकृत्य, गिद्ध, वितर्क और विचार ये चौबीस प्रकार के उपक्लेश अर्थात् चित्त के दूषित भावों को परिवर्जन करना चाहिए।

तीसरे चित्त के शुद्ध होने पर चतुर्विध स्मृत्युपस्थान की भावना करके उसमें सुप्रतिष्ठित होना चाहिए। वे चतुर्विध स्मृत्युपस्थान ये हैं—(१) शरीर अपवित्र है, (२) वेदनाएँ सब दुःखमयी हैं, (३) चित्त चंचल है, और (४) संसार के सब पदार्थ क्षणिक और अलीक हैं। चौथे सप्त विध संबोध्यंग की भावना करनी चाहिए, यथा—स्मृति, पुण्य, वीर्य, प्रीति, प्रस्रब्धि, समाधि और उपेक्षा। इस प्रकार से भावना करते-करते सम्यक् संबोधि (परम श्रेष्ठ सम्यक् ज्ञान) का लाभ होता है। यही एक रास्ता सम्यक् संबोधि प्राप्त करने का है। भूत, भविष्य और वर्तमान काल के सम्यक् संबुद्ध अर्हत् पुरुषों को इसी मार्ग का अवलंबन करना पड़ता है।"

सारिपुत्र का यह उत्तर सुनकर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए और सारिपुत्र भगवान् के चरणों की भक्तिपूर्वक अर्चना करके चले गए।

नालंदा के पावरिक आम्रवन में विहार करते हुए भगवान् ने शील, समाधि और प्रज्ञा के संबंध में बहुत भिक्षुओं को उपदेश प्रदान किया। फिर आनंद को साथ लेकर भगवान् पाटलिग्राम को गए।

पाटलिग्राम के गृहस्थों को उपदेश

पाटलिग्राम में पहुँचने पर उपासकों अर्थात् भगवान् के गृहस्थ-भक्तों ने यथाविधि प्रणाम और प्रदक्षिणा करने के बाद भगवान् से अवस्थागार में ठहरने के लिये विनय की। भगवान् उनके अनुरोध को स्वीकार करके भिक्षुओं-समेत वहीं अवस्थागार में विराजमान हुए। पाटलिग्राम के उपासकों ने सब प्रयोजनीय वस्तुएँ लाकर अवस्थागार में यथोचित स्थान पर सुसज्जित कर दीं। और भिक्षु-संघ-

समेत भगवान् को यथाविधि पूजा और वंदना करके नियमानुसार यथास्थान बैठ गए। भगवान् ने पाटलिग्राम के सब उपासकों को संबोधन करके कहा—"हे गृहस्थगण! अधार्मिक अर्थात् दुःशील गृहस्थों को ५ प्रकार की क्षति उठानी पड़ती है, (१) दुश्चरित्री गृहस्थ घोर दरिद्रता के दुःख को प्राप्त होता है, (२) उसकी चारो ओर बदनामी फैलती है, (३) वह मनुष्य-समाज में सशंकित हृदयसे विचरण करता है, (४) मरने के समय में भी उसके चित्त की उद्विग्नता दूर नहीं होती, (५) मरने के बाद वह नरक में पड़ता है। इसके विपरीत शीलवान् अर्थात् सचरित्री गृहस्थ लोगों को पाँच प्रकार का लाभ प्राप्त होता है—(१) सुशील गृहस्थ लोग जीवित दशा में ही महासुख भोग करते हैं, (२) उनका सुयश चारो ओर फैलता है, (३) वह लोग प्रसन्नता-पूर्वक मनुष्य-समाज में विचरण करते हैं, (४) मरने के समय उनके चित्त में किसी प्रकार की उद्विग्नता नहीं रहती, (५) और वह लोग मरने के पश्चात् स्वर्ग को प्राप्त होकर दिव्य सुखों को भोग करते हैं।"

पाटलिग्राम का भविष्य

इस प्रकार भगवान् पाटलिग्राम के गृहस्थ-उपासकों को अपने उपदेशों द्वारा बहुत रात तक धर्मामृत पान कराते रहे। रात्रि के शेष भाग में भगवान् सब उपासकों को विदा करके शून्यागार में गए और वहाँ अपने दिव्य चक्षु से देखा कि सहस्र-सहस्र देवता पाटलिग्राम में उस समय उपस्थित हैं, और यह भी देखा कि यह पाटलिग्राम पाटलिपुत्र कहलाएगा तथा इसकी समृद्धि, सभ्यता और वाणिज्य

चढ़ेगा और यह नगर सबसे श्रेष्ठ नगर होगा, पर अंत को अग्नि, जल और गृह-विच्छेद के कारण इसका नाश भी होगा।

प्रातःकाल उठकर भगवान् ने आनंद से पूछा कि—"हे आनंद! इस पाटलिग्राममें दुर्ग कौन बनवा रहा है?" आनंद ने कहा—"भगवन्! आजकल इस पाटलिग्राम के निकट महाराज अजातशत्रु के दो महामंत्री सुनिधि और वर्षकार नामक ब्राह्मण वृजि-जाति का ध्वंस करने के लिये एक सुवृहत् दुर्ग बनवा रहे हैं।" आनंदकी बात सुनकर भगवान् बोले—"हे आनंद! यह लोग त्रयस्त्रिंश देवता लोगों के साथ परामर्श करके वृजि लोगों के प्रतिरोध के लिये पाटलिग्राम में दुर्ग और नगर बनवा रहे हैं। हमने रात्रि में अपने विशुद्ध चक्षु के द्वारा देखा है कि सहस्र-सहस्र त्रयस्त्रिंश देवता लोग इस स्थान पर वास करते हैं। जिस देश में उत्तम श्रेणी के देवता लोग वास करते हैं, तो वह लोग वहां के प्रबल प्रतापी राजा और राजमंत्री गणों के मन में उस स्थान को वास-स्थान बनाने के लिये इच्छा और प्रवृत्ति जगा देते हैं; जिस स्थान पर मध्यम श्रेणी के देवता लोग वास करते हैं, तो वह लोग वहाँ के मध्यम श्रेणी के राजा और राजमंत्री लोगों के मन में उस स्थान को वास-स्थान बनाने की इच्छा और प्रवृत्ति जगा देते हैं; और जिस स्थान पर अधम श्रेणी के देवता लोग वास करते हैं, तो वह लोग वहाँ के अधम श्रेणी के राजा और राजमंत्री लोगों के मन में उस स्थान पर वास-स्थान बनाने की इच्छा और प्रवृत्ति को जगा देते हैं। यह पाटलिग्राम पाटलिपुत्र नगर के नाम से प्रख्यात होगा, और यह पाटलिपुत्र महानगर समस्त नगरों से सभ्यता, समृद्धि और वाणिज्य में श्रेष्ठ होगा।"

सुनिधि और वर्षकार का निमंत्रण

इसके बाद मगध के प्रधान मंत्री सुनिधि और वर्षकार भगवान् के दर्शनों के लिये आए और यथोचित सम्मान-संभाषण के बाद एक ओर खड़े होकर निवेदन करने लगे—"हे पूजनीय गौतम! अपने भिक्षु-संघ-समेत आज हम लोगों के घर भोजन कीजिए।" भगवान् ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और मध्याह्न के पूर्व ही चीवर-वेष्टित होकर, भिक्षा-पात्र लेकर, अपने भिक्षु-संघ-समेत सुनिधि और वर्षकार के नवनिर्मित दुर्ग में गए। सुनिधि और वर्षकार ने बड़ी श्रद्धा-भक्ति से भिक्षु-संघ-समेत भगवान् को अपने हाथों से नाना प्रकार के मिष्टान्न और भोजनीय वस्तुएँ परस और जिमाकर परितृप्त किया।

भोजनादि से निवृत्त होकर भगवान् ने मंत्रिद्वयों से अपनी प्रसन्नता प्रकट की और धर्मोपदेश से उनको संतुष्ट करके वहाँ से चलने के लिये प्रस्थान किया। वे दोनो मंत्री भी भगवान् के पीछे-पीछे चलने और कहने लगे कि "जिस द्वार से श्रवण गौतम आज बाहर जायँगे, उस द्वार का नाम 'गौतम-द्वार' होगा तथा जिस घाट से होकर गंगा पार करेंगे, उस घाट का नाम 'गौतम-तीर्थ' होगा।" इसके अनुसार ही जिस द्वार से भगवान् नगर से निकले उसका नाम 'गौतम-द्वार' तथा जिस घाट से गंगा-पार हुए उस घाट का नाम 'गौतम-तीर्थ' रक्खा गया। भगवान् जब गंगा-तट पर पहुँचे, तो वहाँ उन्होंने देखा कोई बलवान् मनुष्य तैरकर गंगा पार कर रहा है, कोई नाव के द्वारा गंगा पार कर रहा है, कोई घन्नई बनाकर

उसके द्वारा गंगा पार कर रहा है। भगवान् लघिमा सिद्धि द्वारा आकाश-मार्ग से क्षण-मात्र में अपने भिक्षु-संघ-समेत गंगा पार करके कोटिग्राम को गए।

कोटिग्राम में उपदेश

कोटिग्राम में पहुँचकर भगवान् ने बहुत-से भिक्षुओं को एकत्रित करके उपदेश दिया—"हे भिक्षुगण! चतुः आर्य्य-सत्यों के यथार्थ तत्त्व को न समझकर मनुष्य बार-बार जन्म-मरण के चक्र में पड़ता है। दुःख, दुःख की उत्पत्ति का कारण, दुःखों का ध्वंस और दुःख-ध्वंस का उपाय, इन्हीं चार महा-सत्यों के सम्यक् ज्ञान द्वारा मनुष्यों की भव-तृष्णा की निवृत्ति होकर पुनर्जन्म का उच्छेद होता है। हे भिक्षुओ! तुम्हें यह भली भाँति स्मरण रखना चाहिए कि शील के द्वारा परिशुद्धि लाभ करने से समाधि-रूप महाफल का लाभ होता है, समाधि द्वारा परिशुद्धि लाभ करने से प्रज्ञा-रूप महाफल का लाभ होता है, और प्रज्ञा-द्वारा परिशुद्धि लाभ होने से चित्त सब प्रकार के काम, अस्मिता, मिथ्या-दृष्टि और अविद्या आदि दुःखों से मुक्ति लाभ करता है।"

धर्मादर्श-धर्म का उपदेश

वहाँ से भगवान् आनंद को साथ लेकर नादिका नामक ग्राम में गए और वहाँ गृंजकावसथ नामक इष्टक विहार में विराजमान हुए। उस समय भगवान् को अभिवादन करके आनंद भी एक ओर बैठ गए, और नादिका ग्राम के बहुत-से परलोक-गत भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिकाओं के विषय में, जिनसे कि आनंद का परिचय था, भग-

वान् से पूछने लगे—"हे भगवन्! उन लोगों की क्या गति हुई और वह लोग अब किस अवस्था में हैं?" भगवान् उन मृतात्माओं की गति और अवस्था के विषय में भली भाँति समझाकर बोले—"हे आनंद! मनुष्य जन्म ग्रहण करके मृत्यु के मुख में अवश्य जायगा, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। परंतु जब कभी कोई देह-त्याग करेगा तभी तुम तथागत से उस मृत व्यक्ति की गति और अवस्था के विषय में पूछोगे और तथागत का समय नष्ट करोगे। इसलिये मैं तुम्हें 'धर्मा-दर्श' नामक धर्म की शिक्षा करता हूँ, इसे जानने से सच्चा अभ्यासी मनुष्य इच्छा करने ही से स्वयं अपने विषय में सब कुछ जान सकेगा, और इस प्रकार से भविष्य-वाणी कर सकेगा कि मेरे नरक भोगने का दुःख मिट जायगा, अब मेरा तिर्यक्-योनि में जन्म नहीं होगा, अब मैं प्रेत-रूप से जन्म नहीं ग्रहण करूँगा। अब मेरे सब प्रकार के अपाय और दुर्गति का ध्वंस हो गया। अब मैंने स्रोतापन्न (निर्वाण के स्रोत में पड़ जाना) पद को लाभ कर लिया है। अब मेरा अवश्य निर्वाण हो जायगा।"

"हे आनंद! यह धर्मादर्श क्या है? सुनो। जो सुचरित्रवान् सद्-अभ्यासी (१) बुद्ध के प्रति अत्यंत श्रद्धा और प्रेम करेगा और यह विश्वास करेगा कि तथागत भगवान् अर्हत्, सम्यक् संबुद्ध, महा-ज्ञानी, सदाचार-संपन्न, सुखी, लोक-वित्, सर्वोत्तम, लोक-चित्त-संशोधक, देवता और मनुष्य गणों के शास्ता एवं बुद्ध हैं। (२) जो तथागत के धर्म के प्रति विश्वास करेगा कि यह धर्म भगवान् बुद्ध के द्वारा उत्तम रूप से व्याख्यात हुआ है, यह धर्म समस्त पृथ्वी को

सच्चा रास्ता दिखलानेवाला और कालाधीन नहीं है अर्थात् काल के परिवर्तन के संग में इस धर्म में परिवर्तन नहीं होता, यह धर्म मनुष्य-मात्र को बुलाकर आलिंगन करनेवाला है, यह धर्म परित्राण-प्रद है, और यह लोकोत्तर धर्म प्रत्येक ज्ञानी व्यक्ति के जानने योग्य है। (३) जो लोग तथागत बुद्ध के संघ के प्रति दृढ़ विश्वास करेंगे कि उसने चार प्रकार के—स्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत्—मार्गों और इन चारो मार्गों के फलों को प्राप्त कर लिया है, अतः यह तथागत का सुप्रतिपन्न श्रावक-संघ है अर्थात् भगवान् के उपदेश को सुननेवाले और उस पर चलनेवाले जो भगवान् के चार श्रेणी के शिष्य-मंडली के लोग हैं, वह लोग न्याय्य, उन्नत और समीचीन पथ को प्राप्त हुए हैं, और विश्वास करेगा कि यह संघ सम्मान के योग्य, आवाहन के योग्य, दान का उपयुक्त पात्र और सर्वश्रेष्ठ पूजनीय तथा इस लोक में पुण्य-रूपी बीज बोने के लिये सर्वोत्तम क्षेत्र है, यह संघ साधु पुरुषों के चित्त को आनंद देनेवाला सुचरित्रवान् है, इसके चरित अखंड, अविमिश्र, निर्दोष, निष्पाप, सत्य, स्वाधीनता-प्रद, अज्ञानता तथा भ्रम दूर करनेवाले, गंभीर, समाधि-प्रदर्शक और ज्ञानी जनों से अनुमोदित हैं। हे आनंद! जिस सच्चरित्री श्रावक अर्थात् शिष्य ने इस धर्मादर्श को लाभ कर लिया है, वह इच्छा करने से अपने विषय में जान सकता है कि हमारे लिये नरक का भोग क्षय हो गया है अर्थात् अब हमें नरक में नहीं पड़ना होगा, अब हमें पशु-पक्षियों की योनि में जन्म नहीं धारण करना होगा, अब हमें प्रेतयोनि या और कोई दुर्गति अथवा दुःख की अवस्था में जन्म

नहीं ग्रहण करना पड़ेगा, अब हम निर्वाण के स्रोत में पड़ गए हैं, अब हमारा पतन नहीं होगा, अब हमको निश्चय ही निर्वाण प्राप्त हो जायगा।"

इस प्रकार नादिका ग्राम में विहार करते हुए भगवान् ने धर्मादर्श उपदेश करने के बाद उपस्थित बहु-संख्यक भिक्षु-समुदाय को शील, समाधि, प्रज्ञा के विषय में विस्तृत रूप से वर्णन करके समझाया।

स्मृतिवान् और प्रज्ञावान् रहने का अनुशासन

नादिका में कुछ काल विहार करने के बाद भगवान् ने आनंद तथा भिक्षु-संघ के साथ वैशाली नगर की ओर गमन किया और वहाँ जाकर आम्रपाली नामक वेश्या के उपवन में विराजे। यहाँ भगवान् अपने भिक्षु-संघ को संबोधन करके बोले—"हे भिक्षुगण! भिक्षुओं को स्मृतिवान् (दुःखों का मूल और उनके ध्वंस के उपाय को जानते रहना) और प्रज्ञावान् (अपने कर्तव्यों के विषय में सतर्क) रहना होगा। हमारा तुम लोगों के प्रति यही अनुशासन है।"

"भिक्षु लोग किस प्रकार से स्मृतिवान् अर्थात् सचेत रहेंगे? सुनो। भिक्षु लोग जब तक शरीर धारण करके विचरण करेंगे, तब तक शरीर को वश में रखने के लिये उन्हें अति आग्रह के साथ प्रज्ञावान् और स्मृतिवान् होकर रहना होगा, जिसमें शारीरिक भोग-लिप्सा के कारण उत्पन्न होनेवाले दुःखों का पूर्ण रूप से दमन कर सकें। इसी प्रकार जब तक भिक्षु लोग स्पर्श आदि इंद्रियों के राज्य में विहार करेंगे, तब तक इंद्रियों को वश में रखने के लिये उन्हें अति आग्रह के साथ प्रज्ञावान् और स्मृतिवान् होकर रहना होगा, जिसमें इंद्रियों को भोग-

लिप्साओं के कारण उत्पन्न होनेवाले दुःखों का पूर्ण-रूप से दमन कर सकें। इसी प्रकार जब तक भिक्षु लोग मन के राज्य में विहार करेंगे, तब तक मन को वश में रखने के लिये उन्हें अति आग्रह के साथ स्मृतिवान् और प्रज्ञावान् होकर रहना होगा, जिसमें मन की भोग-लिप्साओं के कारण उत्पन्न होनेवाले दुःखों का पूर्ण-रूप से दमन कर सकें। इसी प्रकार जब तक भिक्षु लोग धर्म अर्थात् यावत् विषय-समूह या वस्तु-समूह के राज्य में विहार करेंगे, तब तक धर्म-समूहों (यावत् विषय-समूह या वस्तु-समूह) के वेग को वश में रखने के लिये उन्हें अति आग्रह के साथ प्रज्ञावान् और स्मृतिवान् होकर रहना होगा, जिसमें धर्म-समूहों के भोग-विलास-जनित दुःखों का पूर्ण-रूप से दमन कर सकें। हे भिक्षुगण! भिक्षु लोग किस प्रकार प्रत्येक कार्य में स्मृतिवान् और प्रज्ञावान् होकर रहेंगे, सुनो। निकलते, पैठते, अवलोकन करते, निरीक्षण करते, हाथ-पैर समेटते या फैलाते, चीवर धारण करते, भिक्षापात्र धारण करते, पीते, खाते, बैठते, चलते, टहलते, मल-मूत्र त्यागते, सोते, जागते, बात करते या चुप रहते इत्यादि प्रत्येक अवस्था और प्रत्येक कार्य में स्मृतिवान् और प्रज्ञावान् अर्थात् सचेत होकर रहना चाहिए। हे भिक्षुगण! यही हमारा अनुशासन और यही हमारा आदेश है।"

आम्रपालिका गणिका का निमंत्रण और उपदेश

इसके अनंतर आम्रपालिका गणिका, जिसके आम्रबाग में भगवान् ठहरे हुए थे, भगवान् का आगमन सुनकर अपने भाग्य की सराहना करती हुई उत्तम रथ पर आरूढ़ होकर भगवान् के दर्शन के लिये

चली और कुछ दूर चलकर रथ से उतर पड़ी और पैदल भगवान् के पास पहुँची तथा भगवान् को अभिवादन करके एक ओर बैठ गई। भगवान् ने अपने धर्मोपदेश द्वारा आम्रपालिका को उद्बोधित, उत्साहित और संतुष्ट किया। भगवान् के उपदेशों द्वारा संतुष्ट हो आम्रपालिका ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि "कल भगवान् अपने भिक्षु संघ-समेत मेरे यहाँ भोजन करें।" भगवान् ने अपने मौनावलंबन द्वारा उसके निमंत्रण को स्वीकार किया। जब उसको यह निश्चय हो गया कि भगवान् ने निमंत्रण को स्वीकार कर लिया है, तब वह भगवान् को प्रणाम और प्रदक्षिणा करके अपने घर को चली। इधर जब वैशाली के वृजि लोगों ने यह सुना कि भगवान् वैशाली में आकर आम्रपालिका के उपवन में ठहरे हैं, तो वह लोग भगवान् के दर्शन करने की इच्छा से नील, पीत, लोहित और श्वेत रंग के अति विचित्र उत्तम-उत्तम वस्त्र-आभूषणों से सुसज्जित हो नाना भाँति के अति सुंदर रथों पर सवार हो बड़े उत्साह के साथ भगवान् के दर्शन के लिये चले। जिस रास्ते से ये लोग जा रहे थे, उसी रास्ते से आम्रपालिका का रथ भी अहंकार-पूर्वक बड़े वेग के साथ आ रहा था। दैवयोग से इन वृजियों के रथ से आम्रपालिका का रथ टकरा गया। तब वृजि लोग बोले—"हे आम्रपालिका! तूने हमारे रथ के संग अपने रथ को क्यों टकरा दिया?" आम्रपालिका बोली—'हे आर्य-पुत्रगण! मैं अभी भगवान् बुद्ध को उनके भिक्षु-संघ-सहित कल सवेरे अपने यहाँ भोजन करने का निमंत्रण देकर आ रही हूँ; पतितपावन भगवान् कल हमारे यहाँ अपने शिष्यों-सहित पधारेंगे, इसलिये मैं

अति उमंग और उत्साह में भरी हूँ और मुझे आज ही उसका सब आयोजन और प्रबंध करना है, इससे मैं बहुत वेग से जा रही हूँ, और इसी असावधानी के कारण रथ टकरा गया होगा।" आम्रपालिका की यह बात सुनकर वृजिगण अवाक् हो गए और बोले—"हे आम्रपालिका! यह निमंत्रण तुम हम लोगों को दे दो, इसके बदले में हम तुमको एक लक्ष मुद्रा देंगे।" आम्रपालिका बोली—"हे आर्य-पुत्रगण! एक लक्ष मुद्रा तो क्या, यदि आप लोग समस्त वैशाली और उसके आस-पास की समस्त भूमि भी मुझे दे दें, तो भी मैं उसके बदले में इस प्रकार के अमूल्य और गौरवान्वित निमंत्रण को नहीं छोड़ सकती।" आम्रपालिका की यह बात सुन वृजिगण उँगली निर्देश करके आपस में बोले—"इस आम्रपालिका से हम लोग पराजित हुए और ठगे गए।" इस प्रकार परस्पर चर्चा करते हुए वे भगवान् के पास दर्शन के लिये गए। भगवान् ने दूर से वृजि लोगों को आते देखकर भिक्षु-संघ को संबोधन करके कहा—"हे भिक्षुगण! तुम लोगों में से जिन्होंने त्रयस्त्रिंश देवता लोगों को नहीं देखा है, वे लोग इन वृजिगणों को देखें, क्योंकि इन वृजि लोगों से त्रयस्त्रिंश देवतागणों का सादृश्य है।" वृजिगण भगवान् के पास पहुँचकर अभिवादन करके एक ओर बैठे। भगवान् ने अपने अलौकिक धर्मोपदेश द्वारा वृजि लोगों को उद्बोधित, उत्साहित और संतुष्ट किया। वृजिगणों ने हाथ जोड़कर भगवान् से विनय की—"हे भगवन्! कल आप भिक्षु-संघ-समेत हम लोगों के घर पर भोजन करें।" भगवान् ने कहा—"कल के लिये तो हम आम्रपालिका गणिका का निमंत्रण

स्वीकार कर चुके हैं।" यह सुन वृजि लोग भगवान् को प्रणाम और प्रदक्षिणा कर रास्ते में यह कहते हुए अपने-अपने घर गए कि हम लोग आम्रपालिका से पराजित हुए और ठगे गए।"

दूसरे दिन सवेरे भगवान् चीवरवेष्टित हो, भिक्षापात्र हाथ में ले, अपने भिक्षु-संघ-समेत आम्रपालिका के घर गए। आम्रपालिका ने भिक्षु-संघ-समेत भगवान को पूजा-सत्कार करके विविध भाँति के भोजन जिमाकर परितृप्त किया। भोजनादि से निवृत्त हो जब भगवान् बैठे, तब आम्रपालिका भगवान् के निकट एक ओर बैठकर निवेदन करने लगी—"हे भगवन्! मैं वह आम्रोपवन, जिसमें आप ठहरे हैं, आपके भिक्षु-संघ को दान करती हूँ, कृपा करके उसे ग्रहण कीजिए।" भगवान् ने आम्रपालिका के इस दान को स्वीकार किया और उसको अपने धर्म के उपदेशों द्वारा उद्बोधित, उत्साहित, अनुरक्त और आनंदित करके अपने संघ-समेत आम्रवन में आ गए।

भगवान् का अंतिम वर्षावास

इस आम्रवन में कुछ काल रहकर भगवान् अपने भिक्षु-संघ को शील, समाधि और प्रज्ञा का निरंतर उपदेश करते रहे। फिर यहाँ से वेलुव ग्राम को पधारे। वेलुव ग्राम में पहुँचकर भगवान् ने भिक्षु-संघ से कहा—"हे भिक्षुओ! तुम लोग वैशाली के आस-पास चारो ओर जहाँ जिसको सुविधा हो वहाँ ठहरकर अपना इस साल का वर्षावास व्यतीत करो, हम और आनंद इसी ग्राम में वर्षावास करेंगे।" भगवान् की आज्ञा पाकर भिक्षु लोग वैशाली के चारो ओर अपने-अपने अनुकूल स्थान देखकर ठहरे। भगवान्

उसी वेलुव ग्राम में अपना वर्षावास व्यतीत करने लगे। भगवान् का यह अंतिम वर्षावास था। यहीं पर उनको अपने प्रियशिष्य सारिपुत्र और मौद्गलायन के निर्वाण-प्राप्त होने का समाचार मिला। भगवान् की अवस्था अब ८० वर्ष से ऊपर हो चुकी थी। उनका शरीर अब कृश और जरा-ग्रस्त हो चुका था। इस वर्षावास के समय में ही भगवान् के शरीर में कठिन पीड़ा उत्पन्न हो गई। इस कठिन पीड़ा के कारण वह एकदम मरणासन्न हो गए। परंतु भगवान् स्मृतिवान् और प्रज्ञावान् रहते हुए बड़े धैर्य और प्रसन्नता के साथ इस उत्कट पीड़ा को सहन करते रहे, और मन में यह चिंता करने लगे कि हमारे लिये यह उचित नहीं है कि हम अपने सब भिक्षु-संघ से बिना मिले और बिना कुछ अंतिम उपदेश किए अपने अस्तित्व को छोड़कर निर्वाण में चले जायँ। इसलिये हम अपने वीर्य के द्वारा अपनी इस व्याधि को दमन करके जीवन-संस्कार की उस समय तक रक्षा करेंगे। यह चिंता करके भगवान् अपने वीर्य-बल से जीवन-संस्कार की रक्षा-पूर्वक रोग से मुक्त हुए।

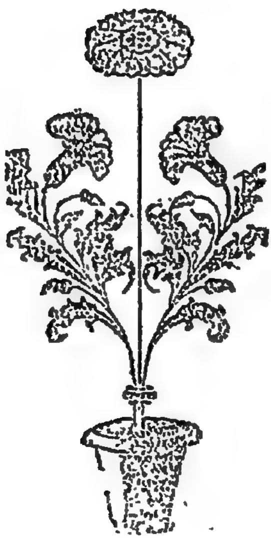
भिक्षु-संघ को अंतिम उपदेश के लिये प्रार्थना

भगवान् जब स्वस्थ हुए, तब एक दिन आनंद भगवान् के पास उपस्थित हो, अभिवादन करके एक ओर बैठे, और हाथ जोड़कर कहने लगे—"हे भगवन्! आपको स्वस्थ देखकर हम लोग अत्यंत प्रसन्न हुए हैं, इसके पहले जब हमने आपको रोग की पीड़ा सहते हुए देखा था, तो हमारा शरीर लता की तरह कुम्हला गया था। हमको सब दिशाएँ अंध-

कार-मय दीखने लगी थीं, जिसके कारण हम बहुत दुर्बल और शक्ति-हीन हो गए थे। तथापि हमारे मन में यह दृढ़ विश्वास और भरोसा था कि भगवान् परिनिर्वाण में जाने के पूर्व अपने भिक्षु-संघ को कुछ अपना अंतिम उपदेश अवश्य दे जायँगे।" आनंद के मुख से यह बात सुनकर भगवान् बोले—"हे आनंद! भिक्षु-संघ अब हमसे और क्या आशा करता है? हमने सत्य के प्रचार करने में प्रकट और गुप्त भेद कुछ नहीं रक्खा है। आचार्य लोग जिस प्रकार अपनी मुट्ठी में कुछ रखकर उपदेश प्रदान कर देते हैं, और अंतिम या विशेष अवसर में कहने के लिये शिष्यों से कुछ बात छिपा रखते हैं, हमने वैसा नहीं किया। जिन लोगों को नेता बनने की इच्छा होती है या जिन लोगों के चित्त में ऐसी भावना होती है कि शिष्य-मंडली सदैव उनके दासत्व में रहे, वही आचार्य या गुरु लोग ऐसा कर सकते हैं। किंतु तथागत इस प्रकार की इच्छा नहीं रखते, तब वह किसी बात को क्यों छिपा रक्खेंगे? हे आनंद! अब हम बुड्ढे हो गए हैं, हमारी आयु अस्सी वर्ष की हो चुकी है, हमारे जीवन के सब कार्य शेष हो चुके हैं। जिस प्रकार पुरानी गाड़ी मरम्मत कराकर अति यत्नपूर्वक चलाने से कुछ दिन चल सकती है, उसी प्रकार तथागत का शरीर भी अत्यंत यत्न-पूर्वक रक्षा करने से कुछ दिन चल सकता है। ऐसी दशा में तथागत के शरीर को किसी बाहरी कार्य में अत्यंत मनोयोग और यत्न न करके केवल समाहित अवस्था में विहार करने से सुख होता है। अतएव हे आनंद! अब तुम आत्म-प्रदीप होकर विहार करो, आत्म-शरण हो; धर्म-प्रदीप ह

धर्म-शरण हो ; दूसरे के शरणापन्न न हो अर्थात् अब तुम अपने प्रकाशक आप बनो, अपना भरोसा आप करो, दूसरे का भरोसा मत करो। धर्म का प्रदीप जलाओ, धर्म का भरोसा करो; और दूसरे किसी का भरोसा मत करो। हे आनंद ! भिक्षु लोग किस प्रकार आत्म-प्रदीप, आत्म-शरण और अनन्य-शरण होकर विहार करेंगे ? सुनो। भिक्षु लोग जब तक शरीर धारण करके विचरण करेंगे, तब तक शरीर को इस प्रकार वश में रखने के लिये उन्हें अति आग्रह के साथ प्रज्ञावान् और स्मृतिवान् होकर रहना होगा, जिसमें शारीरिक भोग-लिप्सा के कारण उत्पन्न होनेवाले दुःखों का पूर्ण-रूप से दमन कर सकें। इसी प्रकार जब तक भिक्षु लोग स्पर्श आदि इंद्रियों के राज्य में विहार करेंगे, तब तक इंद्रियों को इस प्रकार वश में रखने के लिये उन्हें अति आग्रह के साथ प्रज्ञावान् और स्मृतिवान् होकर रहना होगा, जिसमें इंद्रियों की भोग-लिप्साओं के कारण उत्पन्न होनेवाले दुःखों का पूर्ण रूप से दमन कर सकें। इसी प्रकार जब तक भिक्षु लोग मन के राज्य में विहार करेंगे, तब तक मन को इस प्रकार वश में रखने के लिये उन्हें अति आग्रह के साथ प्रज्ञावान् और स्मृतिवान् होकर रहना पड़ेगा, जिसमें मन की भोग-लिप्साओं के कारण उत्पन्न होनेवाले दुःखों का पूर्ण-रूप से दमन कर सकें। इसी प्रकार जब तक भिक्षु लोग धर्म अर्थात् यावत् विषय-समूह या वस्तु-समूह के राज्य में विहार करेंगे, तब तक धर्म-समूहों (यावत् विषय-समूहों) के वेग को इस प्रकार वश में रखने के लिये उन्हें अति आग्रह के साथ प्रज्ञावान् और स्मृतिवान् होकर रहना होगा, जिसमें धर्म-समूहों

के भोग-विलास-जनित दुःखों का पूर्ण-रूप से दमन कर सकें। हे आनंद ! इस प्रकार वर्तमान समय में या हमारी मृत्यु के बाद जो कोई भिक्षु आत्म-प्रदीप, आत्म-शरण या अनन्य-शरण होकर विहार करेंगे, वे ही लोग उच्चतम स्थान को लाभ कर सकेंगे।"



१२—भगवान् के जीवन के अंतिम तीन मास

चापल चैत्य में आनंद को उद्बोधन

एक दिन सवेरे भगवान् चीवर-वेष्टित हो भिक्षा-पात्र हाथ में ले भिक्षा करने के लिये वैशाली नगर में गए। भिक्षा ग्रहण करके वहाँ से लौटने पर भोजनादि से निवृत्त हो आनंद से बोले—"हे आनंद! हमारा आसन लेकर 'चापल चैत्य' में चलो, आज हम वहीं दिवा-विहार करेंगे।" आज्ञानुसार आसन ले आनंद भगवान् के पीछे-पीछे चापल चैत्य में गए और वहाँ जाकर आसन बिछा दिया। भगवान् उस पर विराजमान हुए। आनंद भी भगवान् को अभिवादन करके एक ओर बैठ गए। उस समय भगवान् आनंद को संबोधन कर बोले—"हे आनंद! यह वैशाली अति रमणीय स्थान है। यहाँ पर उदेय-चैत्य, गौतम-मंदिर, सप्तत्त-मंदिर, सारंदद-मंदिर, चापल चैत्य-मंदिर इत्यादि सब पवित्र स्थान अत्यंत मनोहर और रमणीय हैं।"

"हे आनंद! यदि कोई चतुर्विधि ऋद्धिपाद उद्भावित करे, विस्तृत रूप से आलोचित करे, उसके द्वारा कार्य-साधन करे, उसको दृढ़ रूप से धारण करे, अनुष्ठान करे, संपूर्ण रूप से ज्ञात करे और उसमें दृढ़ प्रतिष्ठित होवे, तो वह इच्छा करने से एक कल्प तक भी स्थित (जीवित) रह सकता है। तथागत यह चतुर्विधि ऋद्धिपाद उद्भावित, विस्तृत रूप से आलोचित, उसके द्वारा कार्य-साधित, दृढ़ रूप से

धारित, अनुष्ठित, संपूर्ण-रूप से ज्ञात और उसमें दृढ़ प्रतिष्ठित हुए हैं, वह इच्छा करने से एक कल्प तक स्थित (जीवित) रह सकते हैं।"

यद्यपि भगवान् ने इस प्रकार सुस्पष्ट शब्दों में संकेत किया, तथापि आनंद न समझ सके कि इस अवसर पर भगवान् से विनय करते कि "हे सुगत! तो फिर अनुकंपा करके देवता और मनुष्यों के हित और सुख के लिये आप एक कल्प तक इस पृथिवी पर स्थित (जीवित) रहिए।" उस समय इस प्रकार की फुरना आनंद के हृदय में न आने का कारण यह मालूम होता है कि 'मार' ने अपनी माया के द्वारा उनको विह्वल-सा कर दिया था। इसके बाद भगवान ने आनंद से कहा—"जाओ, अपना कार्य करो।" आनंद भगवान् को प्रणाम कर उनके पास से अलग हो थोड़ी दूर पर एक वृक्ष के नीचे जा बैठे।

निर्वाण में जाने के लिये मार की प्रार्थना

आनंद के चले जाने के थोड़ी देर बाद पापात्मा 'मार' भगवान् के निकट आया और एक ओर खड़ा होकर भगवान् को संबोधन करके कहने लगा—"हे भगवन्! अब आप परिनिर्वाण को प्राप्त हों, आपके परिनिर्वाण का समय आ गया है। अब आपके स्वयं कथनानुसार आपका निर्वाण-काल उपस्थित है। क्योंकि पहले आपने हमसे स्वयं कहा था कि जब तक हमारे भिक्षुगण सच्चे श्रावक, ज्ञानी, विनीत, विशारद, बहु-शास्त्रज्ञ, विनय-धर, साधारण और विशेष धर्मानुष्ठानकारी, धर्मज्ञ, विशुद्ध आदर्श जीवन लाभकारी नहीं होंगे, और जब तक वे स्वयं धर्माचरण करके दूसरों को उपदेश प्रदान नहीं कर सकेंगे, ठीक समझाकर सत्य का प्रकाश नहीं कर

सकेंगे, परिष्कृत रूप से ठीक समझाकर धर्म का सर्वांगीन वर्णन नहीं कर सकेंगे, और जब तक वृथा प्रवाद-धर्म के उपस्थित होने पर सत्य के द्वारा उसको पराजित करके अद्‌भुत शक्ति-संपन्न सत्य-धर्म का विस्तार नहीं कर सकेंगे, तब तक हम निर्वाण में नहीं जायँगे। और यही बात आपने भिक्षुणी-संघ और उपासक उपासिकाओं के विषय में कही थी। परंतु अब आपके भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक और उपासिकाएँ, सच्चे श्रावक, ज्ञानी, विनीत, विशारद, बहु-शास्त्रज्ञ, विनय-धर, साधारण और विशेष धर्मानुष्ठानकारी, धर्मज्ञ, विशुद्ध आदर्श जीवन लाभकारी हो गए हैं और स्वयं धर्माचरण करके दूसरों को उपदेश-प्रदान कर सकते हैं, ठीक समझाकर सत्य का प्रकाश कर सकते हैं, धर्म को सर्वांगीन और परिष्कृत रूप से ठीक समझाकर वर्णन कर सकते हैं और वृथा प्रवाद-धर्म के उपस्थित होने पर सत्य के द्वारा उसको पराजित करके अद्‌भुत शक्ति-संपन्न सत्य धर्म का विस्तार कर सकते हैं। अतएव अब आप परिनिर्वापित हों। भगवन्! पहले आपने कहा था—(१) जब तक हमारे द्वारा प्रवर्तित इस अद्‌भुत शक्ति-संपन्न, वर्धनशील धर्म का पूर्ण रूप से विस्तार न हो जायगा, (२) जब तक सबके निकट हमारा यह धर्म सुप्रकाशित रूप से महत्त्व प्राप्त न कर लेगा, तब तक हम निर्वाण में नहीं जायँगे। अतएव, हे भगवन्! अब आपके संकल्प के अनुसार आपके धर्म का सब कार्य पूरा हो गया। अब आप निर्वाण में जाइए। हे सुगत! अब आपके निर्वाण का समय उपस्थित है।"

मार की इस प्रकार की विनय सुनकर भगवान् सम्यक् संबुद्ध बोले—"हे मार ! तुम सुखी हो। बहुत जल्दी तथागत का परिनिर्वाण होगा। आज से तीन मास पश्चात् तथागत परिनिर्वाण में चले जायँगे।"

भगवान् का आयु-संस्कार-त्याग और महाभूकंप

इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने चापल चैत्य-मंदिर में स्मृतिवान् और संप्रज्ञात-अवस्था में शेष आयु-संस्कार का त्याग किया। इसी समय अति भीषण लोमहर्षण महाभूकंप हुआ और महादुंदभी बजी अर्थात् महा वेग से वज्र-निनाद हुआ।

यह घटना माघ शुक्ल पूर्णिमा की है। उसके ठीक तीन महीने बाद, वैशाख शुक्ल पूर्णिमा को, भगवान् परिनिर्वाण में चले गए।

इस भयानक भूकंप और वज्र-निनाद को देखकर आनंद भगवान् के समीप आए तथा प्रणाम करके एक ओर बैठ गए और पूछने लगे—"हे भगवन् ! एकाएक इस समय यह अति आश्चर्यजनक, अति अद्भुत और भयानक भूकंप तथा अति भीषण लोमहर्षणकारी वज्र-ध्वनि होने का क्या कारण है ?"

भगवान् ने कहा—"हे आनंद ! भूमि-कंप होने का आठ प्रकार का हेतु या प्रत्यय होता है—(१) यह सुविशाल पृथिवी जल के ऊपर प्रतिष्ठित है, जल वायु में प्रतिष्ठित है, वायु आकाश में प्रतिष्ठित है; अतएव जब महावायु प्रवाहित होता है, तब जल कंपित होता है, और जल कंपित होने से पृथिवी कंपित होती है। भूमि-कंप होने का यह प्रथम हेतु और प्रत्यय है। (२) जब कोई ऋद्धिमान्

(असाधारण मानसिक शक्ति-संपन्न) संयत-चित्त महापुरुष, श्रवण, ब्राह्मण या देवता, जिसने अपनी गंभीर चिंता द्वारा परिमित भूमि और अपरिमित जल के विषय में यथार्थ भावना की है, चाहता है, तो वह इस पृथिवी को कंपित, संचालित और आंदोलित कर सकता है। यह भूमि-कंप का दूसरा हेतु और प्रत्यय है। (३) जब कोई बोधिसत्त्व तुषित देवलोक को परित्याग कर स्मृतिवान् और संप्रज्ञात-भाव से ही माता के उदर में आते हैं, तब भी पृथिवी कंपित, संचालित और भयानक रूप से आंदोलित होती है। यह भूमि-कंप का तीसरा हेतु और प्रत्यय है। (४) जब कोई बोधिसत्त्व स्मृतिवान् और संप्रज्ञात-भाव से ही माता के उदर से पृथिवी पर जन्म-ग्रहण करते हैं, तब पृथ्वी कंपित, संचालित और भयानक रूप से आंदोलित होती है। यह भूमि-कंप का चौथा हेतु और प्रत्यय है। (५) जब तथागत कोई अनुत्तर सम्यक् संबोधि लाभ करते हैं, तब भी पृथिवी कंपित, संचालित और भयानक रूप से आंदोलित होती है। भूमि-कंप का यह पाँचवाँ हेतु और प्रत्यय है। (६) जब कोई तथागत अनुत्तर धर्मचक्र का प्रवर्तन करते हैं, अर्थात् तथागत बुद्ध अपने लोकोत्तर धर्म का जिस दिन दूसरों में प्रचार आरंभ करते हैं, तब भी यह पृथिवी कंपित, संचालित और भयानक रूप से आंदोलित होती है। भूमि-कंप का यह छठा हेतु और प्रत्यय है। (७) जब कोई तथागत अपनी स्मृतिवान् और संप्रज्ञात-अवस्था में रहते हुए अपने निर्दिष्ट आयुकाल-संस्कार का परित्याग करते हैं, तब भी पृथिवी कंपित, संचालित और भयानक रूप से आंदोलित होती है। भूमि-कंप का

यह सातवाँ हेतु और प्रत्यय है। (८) जब कोई तथागत निरुपाधि-शेष परिनिर्वाण-धातु को प्राप्त होते हैं, तब भी पृथिवी कंपित, संचालित और भयानक रूप से आंदोलित होती है। भूमि-कंप का यह आठवाँ हेतु और प्रत्यय है।"

अष्ट समाज और अष्ट विमुक्ति-सोपान-वर्णन

"हे आनंद! इसी प्रसंग में हम आठ प्रकार के समाज या मंडली तथा आठ प्रकार की विमुक्ति का तुमसे वर्णन करते हैं। श्रवण करो। आठ प्रकार का समाज या मंडली इस प्रकार है—(१) क्षत्रिय-समाज, (२) ब्राह्मण-समाज, (३) गृहपति-समाज, (४) श्रमण-समाज, (५) चातुर्महाराजिक देवता-समाज, (६) त्रयस्त्रिंश देवता-समाज, (७) मार-समाज और (८) ब्रह्म-समाज। हे आनंद! हमको ठीक स्मरण है कि हमने किस प्रकार बहुत-से क्षत्रियों के समाज में उपस्थित हो वहाँ बैठकर बातचीत और आलोचना करने के पहले, जिस प्रकार उन लोगों का रंग और कंठ-स्वर था, वैसा ही अपना रंग और कंठ-स्वर करके उनको धर्मोपदेश प्रदान द्वारा अनुरक्त, उत्साहित और आह्लादित किया है। परंतु हम उपदेश देनेवाले कौन हैं? देवता हैं, मनुष्य हैं, या ब्रह्म हैं, इस बात को वह लोग कुछ भी नहीं समझ सकते थे। हे आनंद! इसी प्रकार आठो समाज अर्थात् क्षत्रिय से ब्रह्म-समाज तक सब में उपस्थित हो-होकर उनके रंग से रंग और स्वर से स्वर मिलाकर अपने धर्म के उपदेश द्वारा उन लोगों को अनुरक्त, उत्साहित और आह्लादित करके हम अंतर्द्धान हो जाया करते थे। परंतु हमारे

अंतर्द्धान हो जाने पर भी वह लोग यह कुछ नहीं समझ पाते थे कि हम कौन हैं ? देवता हैं, मनुष्य हैं, या ब्रह्म हैं ?"

"हे आनंद ! विमुक्ति अर्थात् बाहरी वस्तुओं को इंद्रियों के ग्रहण और चिंता करने से ध्यान में जो व्याघात उत्पन्न होता है, उस व्याघात से विमुक्त होना आवश्यक है। उस विमुक्ति के आठ सोपान हैं—(१) मन में रूप (वस्तुओं) का भाव विद्यमान है और बाहरी जगत् में भी रूप (वस्तुएँ) दिखाई पड़ती हैं, यह विमुक्ति का प्रथम सोपान है; (२) मन में रूप का भाव विद्यमान नहीं है, परंतु बाहरी जगत् में रूप दिखाई पड़ता है, यह विमुक्ति का दूसरा सोपान है; (३) मन में रूप का भाव विद्यमान है, परंतु बाहरी जगत् में रूप दिखाई नहीं पड़ता, यह विमुक्ति का तीसरा सोपान है; (४) रूप-जगत् को अतिक्रमण करके 'आकाश अनंत' इस प्रकार भावना करते-करते 'आकाशानंत्यायतन' में विहार करना, यह विमुक्ति का चौथा सोपान है; (५) आकाशानंत्यायतन को अतिक्रमण करके 'विज्ञान अनंत' इस प्रकार भावना करते-करते 'विज्ञानानंत्यायतन' में विहार करना, यह विमुक्ति का पाँचवाँ सोपान है; (६) विज्ञानानंत्यायतन को अतिक्रमण करके 'अकिंचन' अर्थात् 'कुछ नहीं' इस प्रकार की भावना करते-करते अकिंचन्यायतन में विहार करना, यह विमुक्ति का छठा सोपान है; (७) अकिंचन्यायतन को अतिक्रमण करके 'ज्ञान भी नहीं है, अज्ञान भी नहीं है' इस प्रकार भावना करते-करते, 'नैव संज्ञाना-संज्ञायतन में विहार करना, यह विमुक्ति का सातवाँ सोपान है; (८) नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का अतिक्रमण करके ज्ञान और ज्ञाता दोनो के

निरोधद्वारा 'संज्ञावेदयितृनिरोध' उपलब्ध करना, यह विमुक्ति का आठवाँ और अंतिम सोपान है।"

आनंद को महापरिनिर्वाण की सूचना

इन सब बातों को वर्णन कर चुकने के बाद भगवान् ने कहा— "हे आनंद! संबोधि लाभ करने के कुछ काल बाद एक बार हम उरुविल्व ग्राम में निरंजना नदी के तट पर अजपाल नामक न्यग्रोध (वट) के नीचे बैठे थे। उस समय मार हमारे पास आया और एक ओर खड़ा होकर कहने लगा—'हे भगवन्! आप महापरिनिर्वाण को प्राप्त हों। हे सुगत! अब आप अस्तित्व से चले जाइए, अब आपके परिनिर्वाण का समय आ गया है।' मार की बात सुनकर हमने कहा—"हे मार! जब तक हमारे भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिका लोग सच्चे श्रावक-श्राविका न हो जायँगे; जब तक वे स्वयं ज्ञानी, विनीत, बहु-शास्त्रज्ञ, यथार्थ धर्म-वेत्ता, विशेष और साधारण धर्मानुष्ठानकारी, विशुद्ध जीवन प्राप्त करके दूसरों को भी समझाकर उपदेश प्रदान न कर सकेंगे; जब तक सत्य का यथार्थ रूप से वर्णन और उसका विस्तार नहीं कर सकेंगे और जब तक वे मिथ्या प्रवाद-धर्म के उपस्थित होने पर उसको सत्य के द्वारा पराजित और खंडित करके इस अद्भुत शक्ति-संपन्न सत्य धर्म का प्रचार करने में समर्थ नहीं होंगे, तब तक हम अस्तित्व से नहीं जायँगे। और जब तक यह सत्य, प्रभावशाली एवं वर्धनशील धर्म विस्तृत तथा जन-साधारण के निकट प्रकाशित हो उनके द्वारा गृहीत और आदरित नहीं होगा, तब तक हम अस्तित्व से नहीं जायँगे।' सो आज जब

हमने तुमको यहाँ से जाने को कहा था, उसके पश्चात् इसी चापल्य-मंदिर में मार ने आकर पहले की तरह फिर प्रार्थना की। मार की बात सुनकर हमने कहा—'हे मार! अब तुम आनंदित हो। तथागत बहुत जल्द परिनिर्वाण-प्राप्त होंगे। आज से तीन महीने के बाद तथागत अस्तित्व से चले जायँगे।' अतएव "हे आनंद! आज इस चापल्य-मंदिर में तथागत ने स्मृतिवान् और संप्रज्ञात-अवस्था में ही अपने आयु-संस्कार का परित्याग किया है।"

आनंद का एक कल्प जीवित रहने की प्रार्थना

भगवान् की यह बात सुनकर आनंद स्तब्ध रह गए। उनका मुख-मंडल कुम्हला गया। वे अवाक्-से हो गए। फिर कुछ देर बाद धीरज धरकर भगवान् से बोले—"हे भगवन्! करुणा करके सबके हित और सबके सुख के लिये आप एक कल्प तक और अवस्थिति कीजिए।" भगवान् ने आनंद की इस प्रकार कातरोक्ति सुनकर कहा—"हे आनंद! तथागत से अब इस प्रकार की प्रार्थना मत करो, अब तथागत से इस प्रकार प्रार्थना करने का समय नहीं है।"

किंतु आनंद ने आकुलता में होने के कारण भगवान् से एक कल्प अवस्थिति करने के लिये तीन बार प्रार्थना की। और भगवान् ने भी "अब इस प्रकार प्रार्थना करने का समय नहीं है," तीन बार कहकर जवाब दिया। फिर बोले—"हे आनंद! क्या तुम तथागत के बोधिसत्त्व पर विश्वास नहीं करते हो?"

आनंद ने कहा—"हे भगवन्! मैं तो तथागत के बोधिसत्त्व पर विश्वास करता हूँ।" तब भगवान् बोले—"फिर तुम इस प्रकार

लगातार तीन बार प्रार्थना करके तथागत को क्यों पीड़ित करते हो?" आनंद बोले—"हे भगवन्! हमने आपके श्रीमुख से इस प्रकार स्वयं श्रवण किया है कि यदि कोई चतुर्विधि ऋद्धिपाद उद्भावित करे, विस्तृत रूप से आलोचित करे, उसके द्वारा कार्य-साधन करे, उसको दृढ़ रूप से धारण करे, अनुष्ठान करे, संपूर्ण रूप से ज्ञात करे, और उसमें दृढ़ प्रतिष्ठित हो, तो वह इच्छा करने से एक कल्प तक जीवित रह सकता है। तथागत यह चतुर्विधि ऋद्धिपाद उद्भावित, विस्तृत रूप से आलोचित, उसके द्वारा कार्य-साधित, दृढ़ रूप से धारित, अनुष्ठित, संपूर्ण रूप से ज्ञात और उसमें दृढ़ प्रतिष्ठ हुए हैं; अतः वह इच्छा करने से एक कल्प तक स्थित (जीवित) रह सकते हैं।"

भगवान् बोले—"हे आनंद! क्या तुम हमारी बात का विश्वास करते हो?" आनंद बोले—"अवश्य करता हूँ।" भगवान् बोले—"हे आनंद! फिर इसमें तुम्हारा ही दोष और तुम्हारी ही भूल है। क्योंकि हमने पहले राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर तुमसे राजगृह, गृध्रकूट पर्वत, गौतम न्यग्रोध, चौर-प्रपात, विभावर पर्वत के बग़ल की सप्तपर्णी गुहा, ऋषिगिरि के बग़ल की कृष्णशिला, शीतवन कुंज की शप्तशौंडिक गुहा, तपोद आराम, वेनकुंज का कलंदक निवाप, जीवक आम्रवन और मद्रकुक्षि के मृगवन की मनोहरता एवं रमणीयता का वर्णन करते और चतुर्विधि ऋद्धिपाद की महिमा तथा सामर्थ्य बतलाते हुए एक कल्प जीवित रह सकने की बात स्पष्ट कही थी; इसी प्रकार इस चापल्य-चैत्य में मारागमन के पूर्व यहाँ के पवित्र स्थानोंकी मनो-

हरता और रमणीयता का वर्णन करते हुए चतुर्विधि ऋद्धिपाद केद्वारा एक कल्प जीवित रह सकने की बात तुमसे स्पष्ट कही थी। परंतु उस समय तुम तथागत से स्पष्ट निदर्शन पाकर और स्पष्ट बात सुनकर भी कुछ नहीं समझ सके। और उस समय तुमने तथागत से इस प्रकार की प्रार्थना नहीं की। हे आनंद ! उस समय यदि तुम तथागत से इस प्रकार याचना करते, तो तुम्हारा एक बार याचना करना ही यथेष्ट होता। तुमको हमसे दुबारा-तिबारा इस भाँति याचना करके अनुरोध करने की आवश्यकता न होती। हे आनंद ! इस विषय में तुम्हारा ही दोष और तुम्हारी ही भूल है।"

"हे आनंद ! हमने पहले ही तुमको सचेत कर दिया है कि हम लोग सब मनोहर और प्रिय वस्तुओं से जुदा होंगे। हमारा इन सब से संपर्क छूट जायगा। वरन् हमारा इन सबसे विरुद्ध संपर्क (संबंध) हो जायगा। जितनी उत्पन्नवान् वस्तुएँ हैं, सब क्षण-भंगुर हैं। तब यह किस प्रकार संभव हो सकता है कि देहधारी मनुष्य का शरीर विनष्ट नहीं होगा ? हे आनंद ! तथागत ने इस नश्वर शरीर का त्याग कर दिया है, इसे अग्राह्य किया है, और प्रतिशेष किया है, तथागत ने अब अपने अवशिष्ट आयुःकाल का परित्याग किया है। जब तथागत द्वारा यह बात कही जा चुकी है कि 'तथागत बहुत जल्द आज से तीन महीने के बाद परिनिर्वाण में जायँगे', तो अब तथागत जीने की इच्छा से फिर उस कही हुई बात का प्रत्याहार करेंगे, यह कभी संभव नहीं है। हे आनंद ! अब तुम इसकी कुछ चिंता न करो। चलो, अब हम लोग महावन की कूटागार-शाला में चलें।"

सैंतीस बोधिपक्षीय धर्म का उपदेश

इसके बाद भगवान् आनंद को साथ ले महावन की कूटागार-शाला में आए और आनंद से बोले—"हे आनंद ! वैशाली के निकट चारो ओर जो भिक्षु लोग वास करते हैं, उन्हें बुलाकर यहाँ उप-स्थान-शाला में एकत्रित करो।"

आनंद ने भगवान् की आज्ञानुसार सब भिक्षुओं को बुलाकर एकत्रित किया। तब भगवान् उपस्थान-शाला में निर्दिष्ट आसन पर विराजमान हुए और भिक्षुसंघ को संबोधन करके बोले—"हे भिक्षुगण ! हमने जिस अश्रुत-पूर्व लोकोत्तर धर्म को ज्ञात करके तुम लोगों को उपदेश किया है, तुम लोग उस धर्म को उत्तम रूप से आयत्त करके उसका पूर्ण-रूप से आचरण करो, उसकी गंभीर चिंता करो और उसका सब जगह सब में विस्तार करो। जिसमें यह धर्म स्थायी रूप से चिरकाल तक विद्यमान रहे, और तुम लोग करुणा से प्रेरित होकर इस अभिप्राय से धर्म का प्रचार करो जिसमें सबका हित, सबको सुख तथा देवता और मनुष्यों का कल्याण हो।"

"हे भिक्षुओ ! वह कौन-सा धर्म है। वह वही धर्म है जिसे हमने तुम लोगों को सिखलाया है, और वह सैंतीस बोधि-पक्षीय धर्म है। उस धर्म का मैं फिर तुमसे वर्णन करता हूँ, सुनो। चार स्मृत्युपस्थान, चार सम्यक् प्रहाण, चार ऋद्धिपाद, पाँच इंद्रियाँ, पाँच बल, सात संबोध्यंग और आठ श्रेष्ठ मार्ग अर्थात् आर्याष्टां-गिक मार्ग, ये सब मिलकर 'सैंतीस बोधि-पक्षीय धर्म' है।

"हे भिक्षुओ! (१) कायानुदर्शन स्मृत्युपस्थान, अर्थात् शरीर अपवित्र है; (२) वेदनानुदर्शन स्मृत्युपस्थान, अर्थात् वेदनाएँ (इंद्रिय द्वारा बाह्य वस्तुओं का ग्रहण) सब दुःखमय हैं; (३) चित्तानुदर्शन स्मृत्युपस्थान, अर्थात् चित्त चंचल है; और (४) धर्मानुदर्शन स्मृत्युपस्थान, अर्थात् संसार की यावत् वस्तुएँ सब अलीक हैं। ये चार स्मृत्युपस्थान हैं।"

"हे भिक्षुओ! (१) अनुत्पन्न पुण्य-कर्मों का उत्पन्न करना, २) उत्पन्न पुण्य-कर्मों की वृद्धि और संरक्षण करना, (३) उत्पन्न हुए पाप-कर्मों का नाश करना, और (४) अनुत्पन्न पाप-कर्मों को न उत्पन्न होने देना। ये चार सम्यक् प्रहाण हैं।

"हे भिक्षुओ! (१) छंद-ऋद्धि, अर्थात् असामान्य अलौकिक क्षमता प्राप्त करने की अभिलाषा वा दृढ़ संकल्प, (२) वीर्य-ऋद्धि अर्थात् असामान्य अलौकिक क्षमता प्राप्त करने का उद्योग, (३) चित्त-ऋद्धि अर्थात् असामान्य अलौकिक क्षमता प्राप्त करने का उत्साह, और (४) मीमांसा-ऋद्धि अर्थात् असामान्य अलौकिक क्षमता प्राप्त करने का अन्वेषण। ये चार ऋद्धि-पाद हैं।"

"हे भिक्षुओ! (१) श्रद्धा, (२) वीर्य, (३) स्मृति, (४) समाधि, और (५) प्रज्ञा। ये पाँच इंद्रियाँ हैं। और ये ही ५ बल हैं।"

"हे भिक्षुओ! (१) स्मृति, (२) धर्म, (३) वीर्य, (४) प्रीति, (५) प्रश्रब्धि (प्रशांति), (६) समाधि, और (७) उपेक्षा। ये सात संबोध्यंग हैं।"

"हे भिक्षुओ! (१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वाचा, (४) सम्यक् कर्मांत, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक

व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति, और (८) सम्यक् समाधि। ये आर्याष्टांगिक अर्थात् आठ श्रेष्ठ मार्ग हैं।"

"हे भिक्षुगण ! इन्हीं सैंतीस तत्त्वों को लेकर हमने धर्म की व्यवस्था की है। *तुम लोग इस धर्म को सम्यक् रूप से धारण करो, इसकी चिंता करो और आलोचना करो तथा सबके हित और सुख के लिये उनपर अनुकंपा करके इसका विस्तार करो। हे भिक्षुओ ! सावधान हो चित्त लगाकर हमारी बात सुनो। संसार की सब उत्पन्नवान् यावत् वस्तुएँ वयो-धर्म (काल-धर्म) के अधीन हैं। अतएव तुम लोग सचेत होकर निर्वाण का साधन करो। अब बहुत शीघ्र तथागत निर्वाण को प्राप्त होंगे। आज से तीन मास के बाद तथागत निर्वाण में जायँगे।"

इसके बाद भगवान् ने निम्न-लिखित गाथा का उद्गान किया—

परिपक्को वयो मय्हं परित्तं मम जीवितं।
पहाय वो गमिस्सामि कतं मे सरणं मत्तनो॥
अप्पमत्ता सतिमन्तो सुसीला होथ भिक्खवो।
सुसमाहित संकप्पा सचित्तं अनुरक्खथ॥
यो इमस्मिं धम्मविनये अप्पमत्तो विहस्सति।
पहाय जातिसंसारं दुक्ख सस्सतं करिस्सति॥

अर्थ—अब हमारी आयु परिपक्व हो चुकी है। अब हमारे जीवन के थोड़े ही दिन शेप रह गए हैं। अब मैं सब छोड़कर चला जाऊँगा।

---

* इन सबका सविस्तर वर्णन 'बौद्धधर्म-प्रवेशिका' में है, जो अभी अप्रकाशित है।

मैंने स्वयं अपने को अपना आश्रय बनाया है अर्थात् मैं स्वयं अपने वास्तविक रूप में स्थित हो गया हूँ। हे भिक्षुओ! अब तुम लोग प्रमाद-रहित, समाहित, सुशील और स्थिर-संकल्प होकर अपने चित्त का पर्यवेक्षण करो। जो भिक्षु प्रमाद-रहित होकर हमारे इस धर्म में विहार करेंगे, वह जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि का समूल उच्छेद करके दुःखों का अत्यंत निरोध कर सकेंगे।

मंडग्राम में चार विमुक्ति-धर्म का उपदेश

इस प्रकार महावन के कूटागार में भिक्षु-संघ को उपदेश प्रदान करने के बाद एक दिन सवेरे चीवर-वेष्टित तथा भिक्षा-पात्र हाथ में लिए भिक्षा करके वैशाली से लौटते समय भगवान् ने गज-दृष्टि से वैशाली नगर को देखा, और देखने के बाद आनंद से कहा—"हे आनंद! तथागत का वैशाली नगर पर यह अंतिम दृष्टिपात करना है। अब चलो, हम लोग मंडग्राम चलें।"

इसके बाद भगवान् बहुसंख्यक भिक्षुओं के साथ मंडग्राम में आकर विराजमान हुए। इस स्थान पर अवस्थिति-काल में भगवान् भिक्षु-संघ को संबोधन करके बोले—"हे भिक्षुओ! चार धर्म के न जानने और आयत्त न करने अर्थात् अमल में न लाने से हम सब लोगों को वार-वार जन्म-मृत्यु के चक्र में आना पड़ता है। वह चारो धर्म कौन-से हैं? सुनो। (१) सम्यक् शील अर्थात् श्रेष्ठ महत् चरित, (२) सम्यक् समाधि अर्थात् श्रेष्ठ गंभीर ध्यान, (३) सम्यक् प्रज्ञा अर्थात् श्रेष्ठ तत्त्व-ज्ञान, और (४) सम्यक् विमुक्ति अर्थात् वास्तविक स्वाधीन अवस्था। जब सम्यक् शील ज्ञात और आयत्त हो

जाता है, तब उससे सम्यक् समाधि ज्ञात होती है; और जब सम्यक् समाधि ज्ञात हो जाती और आयत्त में आ जाती है, तब उससे सम्यक् प्रज्ञा ज्ञात होती है; और जब सम्यक् प्रज्ञा ज्ञात हो जाती और आयत्त में आ जाती है, तब उससे सम्यक् विमुक्ति ज्ञात होती है; और इसी प्रकार सम्यक् विमुक्ति के ज्ञात होने और आयत्त में आ जाने से अस्तित्व अर्थात् अहंभाव की तृष्णा बुझ जाती है। उस समय पुनर्जन्म का कारण विनष्ट हो जाता है, और मनुष्य बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र से छूट जाता है।"

इस भंडग्राम की अवस्थिति-काल में भगवान् भिक्षु-संघ को शील, समाधि, प्रज्ञा के विषय में निरंतर उपदेश देते रहे। एक दिन भिक्षुओं को संबोधन करके भगवान् ने कहा—"हे भिक्षुओ ! शील के द्वारा परिशोभित समाधि में महाफल और महालाभ होता है। समाधि के द्वारा परिशोभित प्रज्ञा में महाफल और महालाभ होता है। प्रज्ञा के द्वारा परिशोभित चित्त सब प्रकार के दुःखों से अत्यंत विमुक्ति लाभ करता है। वे दुःख-आस्रव चार प्रकार के हैं—कामना, अस्मिता, मिथ्या दृष्टि और अविद्या।"

भिक्षु-संघ को चार शिक्षाएँ

इस प्रकार भंडग्राम में उपदेश का कार्य समाप्त करके वहाँ से भिक्षु-संघ-समेत भगवान् हस्तिग्राम, हस्तिग्राम से आम्रग्राम और आम्रग्राम से जंबुग्राम में पधारते और धर्म-प्रचार करते हुए भोगनगर में आए और वहाँ आनंद-चैत्य-मंदिर में विराजमान हुए। वहाँ विहार करते हुए भगवा एक दिन भिक्षुसंघ को संबोधन कर-

के बोले—"हे भिक्षुगण ! तुम लोगों को मैं चार बहुत बड़ी शिक्षाएँ देता हूँ। सावधान होकर सुनो, और इनको अच्छी तरह से मन में धारण करो !"

"(१) हमारे बाद यदि कोई भिक्षु धर्म की कोई बात लेकर इस प्रकार कहे कि हमने ऐसा स्वयं भगवान् के मुख से सुना और ग्रहण किया है कि धर्म इस प्रकार का है, विनय इस प्रकार है, शास्ता बुद्ध का शासन इस प्रकार है, तो तुम उसकी यह बात सुनकर न तो सहसा मान लेना और न उसकी अवहेलना ही करना। उसकी इस प्रकार की बात का आदर-अनादर कुछ न करके उसके वाक्य के प्रत्येक पद और अक्षरों को सावधानता-पूर्वक सुनकर मेरे कहे हुए सूत्र और विनय के साथ तुलना करके देखना। यदि वह सूत्र और विनय के संग न मिले, तो यह समझना कि उसकी बात शास्ता बुद्ध-कथित नहीं है ; इस भिक्षु ने शास्ता की बात को सुंदर रूप से ग्रहण नहीं किया है। अतः इसकी बात ग्रहणीय नहीं है। और, यदि उसकी बात सूत्र और विनय से मिल जाय, तो यह समझना कि यह बात शास्ता-कथित ही है और इस भिक्षु ने उसको सुंदर रूप से ग्रहण किया है। हे भिक्षुओ ! यह मेरी पहली चेतावनी है।"

"(२) यदि कोई भिक्षु धर्म की कोई बात लेकर इस प्रकार कहे कि हमने अमुक जगह भिक्षु-संघ से इस बात को स्वयं सुना है और अच्छी तरह से समझा है कि भगवान् बुद्ध का धर्म इस प्रकार है, विनय (भिक्षुओं के व्यवहार के नियम) इस प्रकार हैं, शास्ता बुद्ध का शासन इस प्रकार है, तो तुम उसकी बात का आदर-अनादर

कुछ भी न करके उस बात को सावधानता-पूर्वक सुनकर सूत्र और विनय के साथ तुलना करके देखना। यदि मेरे कहे हुए सूत्र और विनय के संग वह मिले, तो उस बात को ग्रहण करना और यदि न मिले, तो न ग्रहण करना। हे भिक्षुओ ! यह मेरी दूसरी चेतावनी है।"

"(३) यदि कोई भिक्षु धर्म की बात लेकर इस प्रकार कहे कि अमुक स्थान पर कई एक भिक्षु विहार करते हैं, वे बहुत सुयोग्य हैं, उन्होंने हमसे इस प्रकार कहा है कि शास्ता बुद्ध का धर्म, विनय और शासन इस प्रकार है, तो तुम उसकी बात का आदर-अनादर कुछ न करके सावधानता-पूर्वक सुनकर सूत्र और विनय के साथ उसकी तुलना करके देखना। यदि वह मेरे कहे हुए सूत्र और विनय के साथ मिले, तो ग्रहण करना और न मिले, तो न ग्रहण करना। हे भिक्षुओ ! यह मेरी तीसरी चेतावनी है।"

"(४) यदि कोई भिक्षु धर्म की बात लेकर इस प्रकार कहे कि अमुक जगह में एक स्थविर रहते हैं, वह बहुशास्त्रज्ञ, विनयधर और परंपरागत पूर्ण धर्मज्ञ हैं, उन्होंने हमसे इस प्रकार कहा है कि बुद्ध का धर्म, विनय और शासन इस प्रकार है, तो तुम उसकी बात का आदर-अनादर कुछ न करके, सावधानता-पूवक सुनकर मेरे कहे हुए सूत्र और विनय के साथ तुलना करके देखना। यदि वह सूत्र और विनय के साथ मिले, तो ग्रहण करना और न मिले, तो न ग्रहण करना। हे भिक्षुओ ! यह मेरी चौथी चेतावनी है।"

चुंद स्वर्णकार का अंतिम भोजन

भोगनगर की अवस्थिति-काल में भगवान् बहुसंख्यक भिक्षु-संघ को शील, समाधि, प्रज्ञा और विमुक्ति की निरंतर शिक्षा करते रहे। अनंतर यहाँ उपदेश का कार्य समाप्त करके भगवान् ने भिक्षु-संघ-समेत पावा नगर की ओर गमन किया, और पावा में पहुँचकर भगवान् चुंद स्वर्णकार के आम्रवन में विराजमान हुए।

जब चुंद ने सुना कि भगवान् बुद्ध अपने भिक्षु-संघ-समेत पावा में आकर हमारे आम्रवन में ठहरे हैं, तो वह मारे आनंद के मग्न हो गया, और अपना अहोभाग्य समझकर भगवान् के पास आया तथा अभिवादन करके एक ओर बैठ गया। परम कारुणिक भगवान् ने चुंद स्वर्णकार को अपने उपदेशामृत द्वारा उद्बोधित, उत्साहित, अनुरक्त और आनंदित किया। भगवान् का उपदेश सुनकर चुंद ने अपने को कृतकृत्य समझा और भगवान् से विनय की कि "हे भगवन्! कल आप कृपा करके अपने भिक्षु-संघ-समेत मेरे यहाँ पधारकर भोजन कीजिए।" भगवान् ने मौन-भाव द्वारा अपनी स्वीकृति प्रकाश की। चुंद भगवान् की स्वीकृति पा प्रणाम और प्रदक्षिणा करके अपने घर चला गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल भगवान् चीवर-वेष्टित हो भिक्षापात्र हाथ में लेकर भिक्षु-संघ-समेत चुंद के घर पधारे। चुंद ने भगवान् को संघ-समेत आदर-सहित आसन पर बिठाकर नाना भाँति के भक्ष्य, भोज्य और शूकर-मांस, जो उसने तैयार किया था, परसना आरंभ किया। तब भगवान् बोले—"हे चुंद! तुमने जो शूकर-मांस तैयार

किया है, वह केवल हमीं को परसना, और दूसरे सब प्रकार के व्यंजन एव भिक्षु-संघ को परसना! क्योंकि यह शूकर-मांस का तुम्हारा उपहार हमारे सिवाय दूसरा कोई भी ब्रह्मा, श्रवण, ब्राह्मण ऐसा नहीं है जो ग्रहण करे।" चुंद स्वर्णकार ने भगवान् की आज्ञानुसार ऐसा ही किया। भोजन समाप्त होने पर भगवान् ने चुंद को संबोधन करके कहा—"हे चुंद! यह बचा हुआ शूकर-मांस एक गढ़ा खोदकर उसमें गाड़ दो।" आज्ञा पालनकर चुंद भगवान् के निकट आ अभिवादन करके एक ओर बैठ गया। तब भगवान् ने अपने धर्मोपदेश-द्वारा चुंद को उद्बोधित, उत्साहित, अनुरक्त और आनंदित करके उसके घर से प्रस्थान किया।

कुशीनगर के मार्ग में भगवान् का जल मांगना

इसके बाद से ही भगवान् रक्त और आँव के रोग से बहुत पीड़ित हो गए। परंतु इस अत्यंत कठिन पीड़ा के उपस्थित होने पर भगवान् स्मृति-संप्रजन्य हो वेदना को अग्राह्य करते रहे और "घबराने की कोई बात नहीं" कहकर आनंद को संबोधन करके कहा—"हे आनंद! चलो, हम लोग कुशीनगर की ओर चलें।" ऐसा कह आनंद को साथ लिए हुए भगवान् कुशीनगर की ओर गए। थोड़ी दूर चलने के बाद भगवान् रास्ते से हटकर एक स्थान पर एक पेड़ के नीचे गए और आनंद को संबोधित करके कहा—"हे आनंद! चीवर को चार-दोहरा करके इस जगह बिछा दो। हम क्लांत हो गए हैं, विश्राम करेंगे।" आनंद ने भगवान् की आज्ञानुसार चीवर बिछा दिया। भगवान् उसपर बैठ गए और

बोले—"हे आनंद ! हमारे लिये पानी ले आओ, हमको प्यास लगी है।"

भगवान् की यह बात सुनकर आनंद ने कहा—"हे भगवन् ! यहाँ जो जल मिलेगा, उस जल पर होकर अभी-अभी पाँच सौ गाड़ियाँ निकल गई हैं, उनके पहियों द्वारा जल उथल-पुथल होकर पंक-मिश्रित, गँदला और मैला हो गया है। इसलिये यहाँ से थोड़ी दूर पर जो ककुत्था नदी है, उसका पानी सुखद, शीतल और स्वच्छ है, उसके उतरने का घाट भी सुगम और मनोहर है। वहीं पर भगवान् जल-पान करके शरीर शीतल करेंगे।" भगवान् ने फिर कहा—"हमको प्यास लगी है। जल ले आओ।" आनंद ने फिर उसी गँदले पानी की बात कही। भगवान् ने फिर जल लाने के लिये अनुरोध किया। विवश होकर आनंद पात्र ले उसी गँदले पानी को लेने के लिये उस क्षुद्र जलाशय के पास गए। आनंद के जाते ही वह जल-स्रोत पंक-रहित, स्वच्छ और निर्मल होकर प्रवाहित होने लगा। आनंद यह देखकर बहुत ही आश्चर्यित हुए और भगवान् तथागत की अद्भुत महिमा का अनुभव करके चित्त में बड़े आह्लादित हो महिमा का गुण गान करते हुए पात्र में जल लेकर भगवान् के पास आए और कहने लगे—"हे भगवन् ! जल लाया हूँ ! पान कीजिए। भगवान् ने जल-पान करके थोड़ी देर वहीं पर विश्राम किया।

मल्ल-युवक पुक्कस को उपदेश

इसी समय आचार्य आराड़कालाम का एक शिष्य, जिसका नाम पुक्कस था, कुशीनगर से पावा को जा रहा था। पुक्कस

मल्ल-देशीय युवक था, और भगवान् को एक वृक्ष के नीचे बैठे देखकर उनके निकट गया और भगवान् को प्रणाम करके एक ओर बैठ गया। फिर भगवान् को संबोधन करके बोला—"अहाहा! जिन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की है, वे लोग किस आश्चर्य और किस अद्भुत शांति के साथ विहार करते हैं। एक समय हमारे गुरु आराड़कालाम एक वृक्ष के नीचे बैठकर तपस्या करते थे, उसी समय पाँच सौ शकट उनके शरीर को स्पर्श करते हुए निकल गए। परंतु उन्होंने न उनको देखा और न उन पाँच सौ शकटों की आवाज़ ही सुनी।"

पुक्कस की बात सुनकर भगवान् बोले—"हे पुक्कस! एक समय हम भी आतुमा नगर के भूसागार में अवस्थान करते थे। उस समय बड़े ज़ोर से पानी बरसा। वर्षा का जल कलकल-ध्वनि करते हुए चारो ओर बह निकला। बारंबार बड़े ज़ोर से मेघ गरजता तथा बिजली चमकती और तड़पती थी। इस दुर्घटना के कारण भूसा-गार के निकट दो कृषक-भ्राता और चार बैल मर गए। उसके थोड़ी देर बाद ही आतुमा नगर के बहुत-से लोग, जहाँ पर दो कृषक-भ्राता और चार बैल मरे पड़े थे, वहाँ आकर एकत्रित हुए। उस समय हम भूसागार से निकलकर बाहर टहल रहे थे। हमको देखकर उन एकत्रित हुए मनुष्यों में से एक मनुष्य हमारे पास आया और प्रणाम करके एक ओर खड़ा हो गया। तब हमने उससे पूछा—'यहाँ इतने आदमी क्यों इकट्ठा हुए हैं?' उसने कहा—'कुछ देर पहले यहाँ पर बड़े ज़ोर की वर्षा हुई थी, जिसमें अति घोर भयानक मेघ का गर्जन और बिजली का तड़पन होकर वज्रपात हुआ, जिससे दो कृषक-

आता और चार बैल मर गए, इसीलिये यहाँ पर बहुत-से आदमी इकट्ठा हुए हैं। हे भगवन् ! आप इस भयानक वृष्टि और वज्रपात के समय कहाँ थे ?' हमने कहा—'हम इसी स्थान पर थे।' उसने कहा—'हे भगवन् ! क्या आपने इस भयानक वृष्टि की घटना को नहीं देखा ? और इस घोर मेघ के गरजने, बिजली के तड़पने और वज्रपात होने के शब्द को नहीं सुना ?' हमने कहा—'हमने तो यह कुछ भी नहीं देखा और न सुना।' उसने कहा—'तो क्या फिर आप उस समय निद्रित थे ?' हमने कहा—'नहीं तो, हम निद्रित तो नहीं थे।' उसने कहा—'तो फिर क्या उस समय आप में संज्ञा थी ?' हमने कहा—'हाँ, संज्ञा थी।' उसने कहा—'आपने संज्ञा-सहित जाग्रत् रहते हुए भी कुछ नहीं देखा, और न सुना ?' हमने कहा—'हाँ, यह बात सच है, ऐसा ही हुआ।' हे पुक्कस ! वह हमारी ऐसी बात सुनकर आश्चर्यित हो कहने लगा—'क्या अद्भुत शांति के सहित परिव्रजित व्यक्ति विहार करते हैं कि ऐसी तो घोर वृष्टि हुई जिसका जल कलकल-शब्द करके चारो ओर बहा, बिजली तड़पी, मेघ गरजा, वज्रपात हुआ, किंतु जाग्रत् और सज्ञान अवस्था में रहते हुए भी आपने न वह कुछ देखा और न उसका कुछ शब्द सुना।' हे पुक्कस ! इसके बाद वह व्यक्ति बड़ी श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक हमारी प्रदक्षिणा और हमको प्रणाम करके चला गया।"

भगवान् की यह बात सुनकर मल्ल-युवक पुक्कस भगवान् के चरणों पर गिर पड़ा और कहने लगा—"हे भगवन् ! आपने कृपा करके हमारी आँख खोल दी। आपके संकेत-मात्र से ही हमको सत्य

की झलक दिखलाई पड़ गई। अब हम आज से बुद्ध, धर्म और संघ की शरण ग्रहण करते हैं। अब आप हमको अपने उपासकों में ग्रहण कीजिए। हम मरण-पर्यंत आपकी ही शरण में रहेंगे।"

इसके बाद पुक्कस भगवान् को पहनने योग्य दो बहुमूल्य सुनहले वस्त्र अर्पण करके बोला—"हे भगवन्! हम पर अनुग्रह करके यह युगल वस्त्र आप ग्रहण कीजिए।" भगवान् बोले—"अच्छा, यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है, तो एक वस्त्र हमको ओढ़ा दो और एक आनंद को दे दो।" भगवान् की आज्ञानुसार पुक्कस ने एक वस्त्र भगवान् को ओढ़ा दिया और दूसरा आनंद को दे दिया।

इसके बाद भगवान् ने मल्लदेशीय युवक पुक्कस को अपने धर्म-उपदेश के द्वारा उद्‌बोधित, उत्साहित, अनुरक्त और आनंदित किया। भगवान् के धर्मोपदेश को ग्रहण करके पुक्कस भगवान् को प्रणाम और प्रदक्षिणा करके चला गया।

१३—भगवान् का अंतिम निर्वाण-दिवस

पुक्कस के सोनहले वस्त्रों की क्षीण आभा

पुक्कस के चले जाने के बाद आनंद ने उन दोनो सोनहले वस्त्रों को भगवान् को अच्छी तरह से ओढ़ा दिया। भगवान् के शरीर पर ओढ़ाए जाने के बाद वे दोनो चमकीले सुनहले वस्त्र हीनप्रभ दिखलाई पड़ने लगे। इस बात को देखकर आनंद बड़े कौतूहल में आकर बोले—"हे भगवन्! इस समय आपके शरीर का वर्ण कैसा अद्भुत, आश्चर्यमय, परिशुद्ध और उज्ज्वल है कि ये अत्यंत चमकीले और सोनहले वस्त्र भी आपके शरीर पर पड़ते ही निस्तेज और हीनप्रभ (चमक-रहित) हो गए। आनंद की बात सुन भगवान् बोले—"हे आनंद! दो समय तथागत के शरीर का वर्ण अत्यंत परिशुद्ध और उज्ज्वल होता है—(१) जिस रात्रि में तथागत अनुत्तर सम्यक् संबोधि लाभ करते हैं, और (२) जिस रात्रि में तथागत निरुपाधि-शेष निर्वाण में जाते हैं। हे आनंद! आज रात्रि के पिछले पहर में कुशीनगर उपवन अर्थात् मल्ल लोगों के शालवन में दो यमक शालवृक्ष के बीच में तथागत का परिनिर्वाण होगा। हे आनंद! अब चलो, ककुत्था नदी के किनारे चलें।"

ककुत्था नदी में स्नान और जल-पान

इसके बाद भगवान् बहुसंख्यक भिक्षुओं के संग ककुत्था नदी के किनारे पहुँचे और नदी में स्नान करके जल-पान किया तथा नदी

पार करके चुंद के आम्रवन में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर चुंद से बोले—"हे चुंद, ! चीवर को चौपर्ता करके यहाँ बिछा दो, हम क्लांत हो गए हैं, विश्राम करेंगे।" भगवान् की आज्ञानुसार चुंद ने चीवर को चार पर्त करके बिछा दिया। भगवान् ने दक्षिण पार्श्व से सिंह-शयन की तरह एक पैर के ऊपर दूसरा पैर रखकर शयन किया और स्मृतिवान् एवं संप्रज्ञात-भाव से विराजमान रहे, तथा यथासमय उठने की इच्छा की। चुंद भी, जो अब तक भगवान् के साथ थे, उन्हीं के पास बैठे थे। भगवान् ने उठकर आनंद को संबोधन करके कहा—"हे आनंद ! यदि कोई स्वर्णकार-पुत्र चुंद के मन में यह कहकर अनुताप उपस्थित करे कि 'हे चुंद ! तुम्हारा ही अन्न खाकर तथागत ने शरीर त्याग किया,' तो हे आनंद ! तुम चुंद के मन के अनुताप को यह कहकर निवारण करना कि 'हे चुंद ! तुम बड़े भाग्यशाली हो। तुमने महान् पुण्य लाभ किया जो तुम्हारा भोजन ग्रहण करके तथागत ने परिनिर्वाण लाभ किया। तथागत को जितने भोजन-दान मिले हैं, उनमें दो अत्यंत अधिक फलप्रद हैं। एक सुजाता का पायस-भोजन जिसे खाकर तथागत ने अनुत्तर सम्यक् संबोधि लाभ किया; दूसरा तुम्हारा भोजन, जिसे खाकर तथागत ने महापरिनिर्वाण लाभ किया। यह दोनो दिनों का अन्न-दान सम फल-प्रद और समान मुक्ति-प्रद है। इस भोजन-दान से चुंद को उत्तम जन्म लाभ करने का फल प्राप्त हुआ है, यश-प्रद फल प्राप्त हुआ है, दीर्घायु-फल प्राप्त हुआ है, राज्य-सुख लाभ करने का फल प्राप्त हुआ है, और स्वर्ग लाभ करने का फल प्राप्त हुआ है।' हे आनंद !

इस प्रकार कहकर स्वर्णकार-पुत्र चुंद के अनुताप को दूर करना।"

मल्लों के शालवन में अंतिम शयनासन

इसके बाद भगवान् ने आनंद से कहा—"हे आनंद! चलो, अब हम लोग हिरण्यवती नदी के उस पार कुशी नगर के समीप मल्लों के शालवन में चलें।" आनंद ने "जो आज्ञा" कहकर सम्मति प्रकाश की। इसके बाद भगवान् बहुसंख्यक भिक्षुओं के साथ हिरण्यवती नदी को पार कर कुशीनगर के समीप मल्लों के शालवन में गए-वहाँ पहुँचकर भगवान् ने आनंद से कहा—"हे आनंद! उस युग्म शाल वृक्ष के बीच में उत्तर ओर सिरहाना करके मंच पर चीवर बिछा दो, हम क्लांत हो गए हैं। शयन करेंगे।" आनंद ने "जो आज्ञा" कहकर उसी प्रकार से बिछौना बिछा दिया। तब भगवान् दक्षिण करवट से सिंह-शयन की तरह एक पैर पर दूसरा पैर रखकर शयन करके स्मृतिवान् और संप्रज्ञात-भाव में रहकर विश्राम करने लगे। इसी समय युग्म शाला वृक्षों से अति सुंदर शोभायमान पुष्पों की वृष्टि हुई। यह अकाल-भव पुष्प-वृष्टि होकर भगवान् के शरीर पर चारो ओर बिछ-से गए। इसी समय आकाश से देवता लोगों ने दिव्य स्वर्गीय पुष्पों और गंध की वृष्टि करके भगवान् की पूजा की। इस स्वर्गीय पुष्प और गंध-वृष्टि से भगवान् और उनके चारो ओर की भूमि ढककर और भी अलौकिक शोभा को प्राप्त हुई। भगवान् के स्वागत और सम्मान के लिये देवता लोग आकाश में नाना भाँति के दिव्य वाद्य गीत और नृत्य करने लगे।

इस समय भगवान् ने आनंद से कहा—"हे आनंद! देखो, इन युग्म शाल-वृक्षों में असमय ही फूल फूलकर तथागत पर बरस गए

और तथागत के शरीर की पूजा और सम्मान किया है। दूसरी ओर आकाश से देवगण भी स्वर्गीय दिव्य पुष्पों और गंध की वर्षा करके नाना भाँति के वाद्य, गीत और नृत्य से तथागत की पूजा और प्रतिष्ठा कर रहे हैं। परंतु हे आनंद! इस प्रकार पूजा-प्रतिष्ठा करने पर भी तथागत का यथार्थ सत्कार करना नहीं हो सकता, और न इससे उनकी यथार्थ श्रेष्ठता स्वीकार करके उचित सम्मान, पूजा और आराधना करना ही हो सकता है। किंतु हे आनंद! यदि कोई भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक या उपासिका तथागत के धर्म के अनुशासन के अनुसार विशुद्ध जीवन यापन करे, उसके अनुसार आचरण करे, तो वही तथागत का यथार्थ सत्कार करता है, और वही उनकी श्रेष्ठता को स्वीकार करके उनका उचित सम्मान, पूजा और आराधना करता है। इसलिये हे आनंद! हमारे धर्मानुशासन के अनुसार अपना विशुद्ध जीवन यापन करो, और आचरण करो तथा दूसरों को भी यही शिक्षा दो।"

दस लोक के देवताओं का दर्शनार्थ आगमन

इस समय उपमान भगवान् के सामने खड़े हुए उनको पंखा झल रहे थे। भगवान् ने उनसे कहा—"हे उपमान! तुम यहाँ से हट जाओ, हमारे सामने मत खड़े रहो।" भगवान् की यह बात आनंद को न रुची। उन्होंने अपने मन में यह समझा कि अंतिम समय में भगवान् उपमान पर कहीं असंतुष्ट तो नहीं हो गए। अतएव आनंद ने भगवान् के निकट प्रकट रूप से निवेदन किया—"हे भगवन्! यह उपमान बहुकाल से भगवान् का सेवक और छाया की

भाँति अनुगामी रहा है, फिर किस कारण भगवान् उसपर असंतुष्ट हो गए ?"

भगवान् बोले—"हे आनंद ! तथागत के दर्शन के लिये दस लोक के देवता लोग दिव्य रूप से एकत्रित हुए हैं। इस शालवन के चारो ओर बारह योजन स्थान में तनिक भी जगह नहीं है, सब प्रभावशाली देवताओं से ठसाठस भरा है। इनमें से बहुत-से देवता उत्तेजित होकर ऐसा कह रहे हैं कि हम लोग बहुत दूर से तथागत के दर्शन के लिये आए हैं। बहुकाल के बाद तथागत इस पृथ्वी पर आते हैं, और आज ही रात्रि के शेष प्रहर में वह परिनिर्वापित होंगे। यह एक महत् प्रभावशाली भिक्षु भगवान् के सामने खड़े उनको आच्छादन किए हुए हैं, इस कारण हम लोग भगवान् के अंतिम दर्शन नहीं कर सकते। हे आनंद ! इसी कारण हमने उपमान को सामने से हटा दिया। हम उससे असंतुष्ट नहीं हैं।"

इतना कहकर भगवान् फिर देवताओं के विषय में चर्चा करते हुए बोले—"हे आनंद ! आकाश तथा पृथ्वी पर जो देवता पार्थिव भावापन्न हैं, वे केश बिखराए, हाथ फैलाए और गिरे हुए पेड़ की भाँति पृथ्वी पर लोटते हुए क्रंदन कर रहे हैं कि अति शीघ्र भगवान् परिनिर्वापित होंगे। अति शीघ्र सुगत लोक-चक्षु से अंतर्द्धान हो जायँगे। परंतु हे आनंद ! इन देवताओं में जो वीतराग हैं, वे स्मृतिवान् और संप्रज्ञात-भाव से तथागत के दर्शन कर रहे हैं। वह लोग जानते हैं कि सभी उत्पन्न होनेवाली वस्तुओं का नाश और संयोग होनेवाली वस्तुओं का वियोग होता है। इस कारण तथागत

का शरीर भी अनित्य है, और इसका चिरस्थायी होना असंभव है।"

चार महातीर्थों की घोषणा

भगवान् की बात सुनकर आनंद बोले—"हे भगवन्! अब तक महानुभाव भिक्षु लोग नाना स्थानों में वर्षावास करके वर्षा के अंत में भगवान् के दर्शनों के लिये भगवान् के निकट आते थे, और भगवान् के साथ रहनेवाले हम लोग उन्हें आदर से लेते तथा उन दूर-दूर देशों से आए हुए महानुभाव भिक्षुगणों का दर्शन लाभ करते थे। समागत भिक्षुगण भगवान् के श्रीमुख की वाणी श्रवणकर भगवान् को प्रणाम-वंदना आदि करके पूजन करते थे। अब भगवान् के न रहने पर महानुभाव भिक्षुगण भी नहीं आवेंगे, और हम लोग भी उनके दर्शन नहीं पा सकेंगे। अब भगवान् के भिक्षु-शिष्यों के समागम होने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हो सकेगा।"

आनंद की इस प्रकार की दुःखित वाणी को सुनकर परम कारुणिक भगवान् बोले—"हे आनंद! हमारे बाद भी तुम लोगों के समागम और आलाप के लिये हमारे मुख्य चार स्थान रहेंगे। वह चारो स्थान ये हैं—(१) तथागत के जन्म का स्थान कपिलवस्तु; (२) तथागत के सम्यक् संबोधि लाभ करने का स्थान बुद्धगया; (३) तथागत के सर्वप्रथम धर्म-चक्र-प्रवर्तन का स्थान वाराणसी का मृगदावन; (४) तथागत के परिनिर्वाण का स्थान कुशीनगर। हे आनंद! इन सब स्थानों में श्रद्धावान् भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिकागण आवेंगे, और स्मरण करके कहेंगे—इस स्थान में तथागत ने जन्म

ग्रहण किया था, इस स्थान में तथागत ने सर्वश्रेष्ठ सम्यक् संबोधि लाभ किया था, इस स्थान में तथागत ने अपने सर्वश्रेष्ठ धर्म का पहले-पहल प्रचार किया था, और इस स्थान में तथागत ने महापरिनिर्वाण लाभ किया था।"

स्त्रियों के साथ भिक्षुओं की व्यवहार-मर्यादा

इस प्रकार भगवान् की बात सुनने के बाद आनंद ने फिर पूछा—"हे भगवन्! हम लोगों को स्त्री-जाति के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए?" भगवान् ने कहा—"अदर्शन, अर्थात् उन्हें न देखना।" आनंद ने कहा—"हे भगवन्! यदि उनका दर्शन अर्थात् साक्षात् हो ही जाय, तो क्या करना चाहिए?" भगवान् बोले—"अनालाप, अर्थात् उनसे बातचीत न करना।" आनंद ने कहा—"हे भगवन्! यदि वह लोग आलाप करें, तो क्या करना चाहिए?" भगवान् ने कहा—"स्मृत्युपस्थान, अर्थात् अत्यंत सावधान रहकर आलाप करना, ऐसा न हो कि राग उत्पन्न होकर बंधन का कारण हो।"

अंत्येष्टि-क्रिया के लिये आज्ञा

इसके बाद आनंद ने अवसर देखकर भगवान् से यह पूछा—"हे भगवन्! आपकी मृत्यु के बाद हम लोग आपके शरीर का पूजा-सत्कार कैसे करेंगे?" भगवान् बोले—"हे आनंद! तुम इस विषय की कोई चिंता न करो। तथागत के लिये दृढ़ निष्ठ हो, अपने कल्याण के लिये पूर्ण रूप से नियुक्त हो तथा अपने कल्याण के लिये सदा वीर्यवान् और उत्साही होकर साधन में लगे रहो। तथागत के

शरीर की पूजा और सत्कार करने के लिये विद्वान् क्षत्रिय, ब्राह्मण और गृहपति (वैश्य) गण यथेष्ट हैं। वह लोग तथागत के प्रति महान् श्रद्धा रखते हैं, और उनके शरीर की भी उपयुक्त श्रद्धा-सहित अंत्येष्टि पूजा करेंगे।"

आनंद ने पूछा—"हे भगवन्! आपके शरीर का पूजा-सत्कार कैसे और किस विधि से किया जायगा?" भगवान् ने कहा—"हे आनंद! धार्मिक चक्रवर्ती राजा के मृत शरीर का जिस प्रकार सत्कार किया जाता है, धर्म-चक्रवर्ती तथागत के शरीर का भी उसी प्रकार सत्कार करना चाहिए।" आनंद ने पूछा—"हे भगवन्! धार्मिक चक्रवर्ती राजा के मृत शरीर का सत्कार किस प्रकार किया जाता है?" भगवान् बोले—"धार्मिक चक्रवर्ती राजा के मृतक शरीर को नए कपड़े द्वारा वेष्ठित करते हैं। फिर धुनी हुई रुई से वेष्ठित करते हैं। और फिर उसे कपड़े से वेष्ठित करते हैं, और फिर धुनी हुई रुई से वेष्ठित करते हैं। इसी प्रकार पाँच सौ वार दोनो चीज़ों से वेष्ठित करते हैं। इसके वाद लोहे की संदूक़ में तेल भरकर मृतक शरीर को उसमें रखकर वंद करते हैं। फिर सब प्रकार की सुंगधित वस्तुओं द्वारा चिता रचते हैं, और उस पर धार्मिक चक्रवर्ती राजा के शव को रखकर दग्ध करते हैं। इसके वाद अस्थि-शेष को लेकर जहाँ चार प्रधान रास्ते मिलते हों, ऐसे चौरास्ते पर उसका स्तूप (समाधि) वनाते हैं। हे आनंद! इस प्रकार धार्मिक चक्रवर्ती राजा के मृत शरीर का अंत्येष्टि-संस्कार किया जाता है। हे आनंद! इस संसार में चार व्यक्ति ही स्तूप पाने के उपयुक्त होते हैं—(१) सम्यक् संबुद्ध,

(२) प्रत्येक बुद्ध (जिन्होंने स्वयं संबोधि तो प्राप्त कर ली है किंतु उसका जगत् में प्रचार करके असंख्य प्राणियों का उद्धार नहीं कर सके), (३) तथागत के श्रावक शिष्य, और (४) तथागत के धर्म का प्रचार करनेवाले राजागण। हे आनंद ! इन चारो व्यक्तियों का स्तूप बनवाने से क्या लाभ होता है ? सुनो। वहाँ जानें पर यह स्मरण हो आता है कि यह सम्यक् संबुद्ध तथागत का स्तूप है, उन्होंने अपने जीवन में अमुक-अमुक अमूल्य कार्य करके जगत् का हित-साधन किया था। इन बातों का स्मरण करके लोग शिक्षा लाभ करते हैं। इस प्रकार ये स्तूप सबको प्रसन्नता और शांति देकर सब का हित-साधन करनेवाले होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येकबुद्ध, बुद्ध-श्रावक तथा धार्मिक चक्रवर्ती राजा के स्तूपों से भी लोग अमूल्य और पवित्र शिक्षा ग्रहण करके लाभ उठाते हैं ।"

आनंद का शोक-मोचन

इसके बाद आनंद शालवन के एक आश्रम में, जिसे मल्ल राजाओं ने वहाँ बनवा रक्खा था, जाकर उसकी दीवाल पकड़ खड़े होकर रोने और कहने लगे—"अभी हमें बहुत कुछ सीखना है, हमें अब अपने ही कार्य द्वारा निर्वाण लाभ करना होगा। शास्ता, जो हम पर इतनी दया करते थे, निर्वाण में जा रहे हैं। अब हम कैसे क्या करेंगे ?" उसी समय सर्वज्ञ भगवान् ने भिक्षुओं से पूछा—"आनंद कहाँ हैं ?" उन लोगों ने कहा—"हे भगवन् ! आनंद विहार के भीतर दीवाल पकड़कर खड़े हुए रो रहे हैं।" भगवान् ने एक भिक्षु को भेजा कि आनंद को बुला लाओ। भिक्षु आनंद को बुला लाया।

आनंद उस भिक्षु के साथ आकर भगवान् को अभिवादन करके एक ओर बैठ गए। भगवान् आनंद को देखकर बोले—"हे आनंद ! तुम किसी प्रकार का शोक और विलाप न करो, हमने तुमको पहले ही समझा दिया है कि सभी प्रिय और मनोहर वस्तुओं से एक दिन हमारा संपर्क छूट जायगा। जो वस्तुएँ उत्पन्न हुई हैं और जिन्होंने संस्कार लाभ किया है, वे सब क्षणिक और नश्वर हैं। तब यह कैसे संभव हो सकता है कि देहधारी मनुष्य का शरीर नष्ट न हो ? यह अनिवार्य है। तथागत का शरीर भी उत्पन्नमान है, अतः लय को प्राप्त होगा। यह बात अन्यथा नहीं हो सकती। हे आनंद ! तुम दीर्घ काल से तथागत के आज्ञाकारी रहे हो, और प्रेम के सहित हमारे हित और हमें सुखी करने के लिये तुमने अपने शरीर के द्वारा हमारी अमित और असीम सेवा की है। अपने वचन और अपनी मानसिक चिंताओं के द्वारा हमारी अमित और असीम सेवा की है। हे आनंद ! तुमने ऐसा करके असीम पुण्य का संचय किया है। हे आनंद ! अब तुम तीव्र साधन करो, बहुत शीघ्र आस्रवों से मुक्त हो जाओगे।"

इसके बाद भगवान् भिक्षु-संघ को संबोधन करके बोले—"हे भिक्षुओ ! भूत काल में जितने भी सम्यक् संबुद्ध आते रहे हैं, उन सब लोगों के पास भी आनंद की तरह एक-एक आज्ञाकारी और अनुगत शिष्य होते थे और भविष्य काल में भी जितने सब सम्यक् संबुद्ध अर्हत् लोग आवेंगे, उनके पास भी एक-एक ऐसे ही आज्ञाकारी और अनुगत शिष्य होंगे।" इसके बाद भगवान् ने फिर कहा—"हे भिक्षुगण ! आनंद बड़े पंडित और मेधावी हैं। यह स्वयं अपने

लिये तथागत के पास उपस्थित होकर दर्शन करने के उपयुक्त समय को भली भाँति जानते हैं, और दूसरे भिक्षु-भिक्षुणी लोगों को तथागत के सम्मुख उपस्थित होकर दर्शन करने के उपयुक्त समय को भली भाँति जानते हैं तथा उपासक-उपासिकाओं, राजा-राजमंत्रीगणों और दूसरे धर्म-शिक्षकों एवं उनके शिष्यों को भी तथागत के सम्मुख उपस्थित होकर दर्शन करने के उपयुक्त समय को भली भाँति जानते हैं। हे भिक्षुगण! आनंद में और भी अद्भुत गुण यह है कि यदि कोई भिक्षुमंडली, भिक्षुणी-मंडली, उपासक-मंडली, या उपासिका-मंडली आनंद के दर्शन करने के लिये आती है, तो आनंद का दर्शन करके बहुत प्रीति करती और प्रसन्न होती है। यदि आनंद उन लोगों को कुछ उपदेश प्रदान करते हैं, तो उसको सुनकर वह लोग बड़े प्रीतिमन और प्रसन्न होते हैं, और यदि आनंद कुछ न कहकर चुप बैठे रहें, तो वह लोग बड़े दुःखित होते हैं।"

"हे भिक्षुगण! यही अद्भुत और आश्चर्यमय गुण चक्रवर्ती राजाओं में भी होता है। उनके पास श्रवण, ब्राह्मण या गृहपतियों की मंडली यदि दर्शन करने के लिये आती है, तो उस चक्रवर्ती राजा का दर्शन करके दर्शक-मंडली प्रसन्न होती है; यदि वह कुछ कहते हैं, तो उनकी बात सुनकर सब लोग बड़े प्रसन्न होते हैं, और यदि वह कुछ न कहकर चुप रहें, तो दर्शक लोग दुःखित होते हैं।"

कुशीनगर का पूर्व-वृत्त वर्णन

भगवान् की यह बात समाप्त होने पर आनंद ने कहा—"हे भगवन्! यह कुशीनगर एक वन-वेष्ठित क्षुद्र नगर है, आप यहाँ पर परि-

निर्वापित न हों। हे भगवन्! दूसरे अनेक महानगर हैं। जैसे चंपा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत (अयोध्या), कौशांवी और वाराणसी इत्यादि। इनमें से यथारुचि किसी जगह भगवान् परिनिर्वापित हों। इन सब स्थानों में बहुत-से क्षत्रिय, ब्राह्मण और गृहपति वास करते हैं, और वे लोग तथागत पर बहुत श्रद्धा और विश्वास करते हैं। इस कारण वे तथागत के शरीर का उपयुक्त सम्मान और सत्कार करेंगे।"

भगवान् ने कहा—"हे आनंद! ऐसा मत कहो कि कुशीनगर वन-वेष्ठित क्षुद्र नगर है। तुम्हें मालूम नहीं, पूर्व-काल में महासुदर्शन नाम एक राजा थे। वह बड़े धार्मिक और चक्रवर्ती राजा थे, और सदैव धर्मानुसार राज-शासन करते थे। उन्होंने चारो ओर जय करके धर्म और न्याय का राज्य स्थापित किया था। यह धर्मानुसार प्रजागणों की रक्षा करनेवाले राजा सप्तरत्न के अधीश्वर थे। उन्हीं महाराज महासुदर्शन की यह कुशीनारा नगरी या कुशावती नगरी राजधानी थी। हे आनंद! इस कुशावती नगरी का विस्तार पूर्व से पच्छिम तक १२ योजन और उत्तर से दक्षिण तक ७ योजन था। हे आनंद! जिस प्रकार देवताओं की अलखनंदा नामक राजधानी यक्ष लोगों से पूर्ण महासमृद्धिशाली और सब सुखों की आकर है, उसी प्रकार यह कुशीनगर या कुशावती राजधानी भी महासमृद्धिशाली और सब प्रकार के सुख-भोगों से पूर्ण तथा बहुजनों से आकीर्ण थी। इस कुशावती नगरी में रात-दिन हाथियों के शब्द, घोड़ों के शब्द, रथों के शब्द, भेरी का शब्द, मृदंग का शब्द, पणव का शब्द, वीणा का शब्द, संगीत का शब्द, ताल्वृंत का शब्द, और स्नान करो,

पान करो, आहार करो, इत्यादि दस प्रकार के शब्द हुआ करते थे।”

कुशीनगर के मल्लों का बुलाना

इस प्रकार कुशावती नगरी का वर्णन करने के बाद भगवान् ने आनंद से कहा—“हे आनंद ! तुम कुशीनगर में जाओ और मल्ल-गणों को खबर दो कि हे वाशिष्ठगण ! आज रात्रि के शेष प्रहर में तथागत का परिनिर्वाण होगा। इसलिये तुम लोग प्रसन्नता-पूर्वक आओ, जिसमें पीछे तुम्हें पश्चात्ताप न करना पड़े कि हम लोगों की राज्य-भूमि में ही तथागत का परिनिर्वाण हुआ, फिर भी हम उनका अंतिम दर्शन न कर सके।”

भगवान् की यह बात सुन “जो आज्ञा” कहकर आनंद चीवर-वेष्टित हो भिक्षापात्र हाथ में ले तथा संग में एक और भिक्षु को लेकर कुशीनगर को गए। उस समय कुशीनगर-वासी मल्ल लोग किसी विशेष देवकार्य के लिये मंत्रणा-गृह (कमेटी-घर) में एकत्रित हुए थे। आनंद भी उसी मंत्रणागृह में उपस्थित हुए और बोले—“हे वाशिष्ठगण ! आज रात्रि के शेष प्रहर में तथागत का परिनिर्वाण होगा। इससे हे वाशिष्ठगण ! तुम लोग आओ, और उनके दर्शन करो, जिसमें तुम्हें पीछे से पछताना न पड़े कि हमारी राज्य-सीमा में ही तथागत का परिनिर्वाण हुआ, फिर भी हम लोग उनका अंतिम दर्शन न कर सके।”

आनंद की यह बात सुनकर मल्लगण, मल्लयुवकगण, मल्लवधू और मल्ल-कन्यागण बड़े क्लेशित, दुःखित और शोकार्त हुए। कोई-कोई

केश बिखराकर, कोई हाथ फैलाकर, कोई भूमि में गिरकर लोटते हुए रोने लगे। सब यही कह-कहकर विलाप करते थे कि भगवान् बहुत जल्द निर्वाण लाभ करेंगे, हम लोगों के चक्षु से बहुत जल्दी अंतर्द्धान हो जायँगे। बहुत जल्दी हम लोगों को छोड़कर चले जायँगे। इस प्रकार कुछ देर तक विलाप और रुदन करने के बाद सब लोग धैर्य का अवलंबन करके उसी खिन्नित और शोकार्त दशा में भगवान् के दर्शन के लिये शालवन की ओर चले, और वहाँ जाकर आनंद के निकट उपस्थित हुए। आनंद ने चिंता करके देखा कि यदि इन मल्लों को एक-एक करके अलग-अलग भगवान् की वंदना करने को कहें, तो सब मल्लों के भगवान् की वंदना करने में ही रात्रि समाप्त हो जायगी। अतएव मल्लों के एक-एक परिवार को एकत्र करके एक साथ ही भगवान् की वंदना करावेंगे और कहेंगे—"हे भगवन्! अमुक नामक मल्ल अपने परिवार-सहित भगवान् के पाद-पद्मों पर मस्तक रखकर वंदना करता है।"

इस प्रकार मन में विचारकर आनंद ने मल्लों के एक-एक परिवार को एकत्र करके उसके विषय में परिचय देते हुए भगवान् के पाद-पद्मों की वंदना कराई। इस प्रकार आनंद के द्वारा मल्लों के भगवान् की पूजा-वंदना करने में रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत हो गया।

परिव्राजक सुभद्र की अंतिम प्रव्रज्या

उस समय 'सुभद्र'-नामक एक परिव्राजक कुशीनगर में वास करता था। उसने जब सुना कि आज रात्रि के शेष प्रहर में महा-श्रवण गौतम का परिनिर्वाण होगा, तो उसके मन में चिंता हुई कि

हमने प्राचीन और वृद्ध परिव्राजकों, आचार्यों और शिक्षक लोगों को यह कहते सुना है कि कभी किसी काल में सम्यक् संबुद्ध अर्हत् तथागत लोग इस पृथ्वी पर आते हैं, सो उन अर्हत् सम्यक् संबुद्ध तथागत का आज रात्रि के शेष प्रहर में परिनिर्वाण होगा। और हमारे मन में धर्म के विषय में कुछ संशय है। हमें दृढ़ विश्वास है कि महाश्रमण गौतम अपने निर्मल उपदेश के द्वारा हमारे संशय को दूर कर देंगे। अतएव हमें उचित है कि हम चलकर तथागत के दर्शन करें। ऐसा विचारकर परिव्राजक सुभद्र मल्लों के शालवन में पहुँचकर आनंद के निकट उपस्थित हुए, और आनंद से बोले—"हमने प्राचीन और वृद्ध आचार्यों, परिव्राजकों और शिक्षकों से सुना है कि कभी किसी काल में सम्यक् संबुद्ध इस पृथ्वी पर आते हैं, और हमें ज्ञात हुआ है कि वह भगवान् तथागत आज रात्रि के शेष भाग में परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे। हमें धर्म के विषय में कुछ संदेह है, सो हम उनका दर्शन करके अपने संदेह को दूर करना चाहते हैं। इसलिये हम दर्शन के योग्य प्रार्थी हैं, हमको भगवान् का दर्शन मिलना चाहिए।"

इस बात को सुनकर आनंद सुभद्र परिव्राजक से बोले—"नहीं सुभद्र! अब नहीं, तथागत को अब कष्ट मत दो। भगवान् निर्वाण-शय्या पर हैं और अत्यंत क्लांत हैं।" किंतु दूसरी बार भी सुभद्र परिव्राजक ने फिर वही प्रार्थना की। आनंद ने फिर निषेध किया। तब तीसरी बार सुभद्र ने दर्शन करने के लिये फिर प्रार्थना की, और आनंद ने फिर निषेध किया। . . . . .

भगवान् आनंद और परिव्राजक सुभद्र के परस्पर प्रश्नोत्तर को सुन रहे थे। जिस महापुरुष ने ४५ वर्ष तक अखिन्न चित्त से जिज्ञासुओं के लिये अमृत-वर्षा की हो, वह अंतिम समय में अपनी सहज करुणा को कैसे भूल सकता है। भगवान् ने आनंद को बुलाकर कहा—"हे आनंद! सुभद्र परिव्राजक को हमारे पास आने से मत रोको। सुभद्र तथागत का दर्शन लाभ कर सकता है। हे आनंद! सुभद्र हमसे जो कुछ पूछेगा, वह केवल सत्य जानने की इच्छा से ही पूछेगा, वह हमें कष्ट देने के अभिप्राय से नहीं पूछेगा। उसके पूछने पर जो कुछ हम समझा देंगे, वह बहुत जल्द समझ जायगा।"

यह सुनकर आनंद ने सुभद्र के पास जाकर कहा—"हे सुभद्र! अब तुम भगवान् के निकट जा सकते हो। भगवान् तुमको बुला रहे हैं।"

तदनंतर परिव्राजक सुभद्र भगवान् के निकट जाकर अभिवादन करके भगवान् के एक ओर बैठ गए और बोले—"हे गौतम! इस समय अनेक श्रमण, ब्राह्मण और तीर्थंकर लोग हैं, जो बहुतों के शिक्षक, आचार्य, यशस्वी, शास्त्रकार, बहुजन-समादरित और अग्रगण्य हैं। यथा पूर्णकाश्यप, मस्करीगोशाल, अजित केशकंबल, ककुध कात्यायन, संजय वेलस्थिपुत्र और निर्ग्रंथ-नाथपुत्र। हे भगवन्! क्या ये सभी लोग परम ज्ञातव्य विषय के जानने में समर्थ हुए हैं? या इनमें से कोई-कोई परम ज्ञातव्य विषय के जानने में समर्थ हुए हैं, और कोई-कोई नहीं?"

इस प्रकार सुभद्र की बात सुनकर भगवान् बोले—"हे सुभद्र ! जब कोई दूसरे धर्म का माननेवाला व्यक्ति मेरे इस लोकोत्तर धर्म में आकर प्रव्रज्या और उपसंपदा ग्रहण करने की इच्छा करता है, तो वह पहले चार महीने रहकर शिक्षा ग्रहण करता है। फिर चार महीने की शिक्षा और परीक्षा के बाद उस शिक्षार्थी को जित-चित्त भिक्षु लोग प्रव्रज्या और उपसंपदा दान करते हैं। यद्यपि यह बात ठीक है, तथापि भिक्षु होने की योग्यता में एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में बहुत प्रभेद होता है। इस विषय को हम जानते हैं।"

भगवान् की बात सुनकर सुभद्र बोले—"हे भगवन् ! यदि कोई व्यक्ति दूसरे धर्म या विनय से आकर आपके इस लोकोत्तरीय धर्म में प्रव्रज्या और उपसंपदा ग्रहण करके दीक्षित होना चाहे, तो उसे पहले चार महीने शिक्षाधीन रहना पड़ता है। बाद इस चार महीने के उस शिक्षार्थी व्यक्ति को जित-चित्त भिक्षु लोग प्रव्रज्या और उपसंपदा प्रदान करते हैं। यदि वास्तव में यही बात है, तो हम चार महीने तो क्या चार वर्ष शिक्षाधीन रहने को तैयार हैं। इसके बाद जित-चित्त भिक्षु लोग हमको प्रव्रज्या और उपसंपदा देकर भिक्षु-धर्म में दीक्षित करें। हमको इसमें बड़ी प्रसन्नता है।"

सुभद्र की बात सुनकर भगवान् बड़े प्रसन्न हुए और आनंद को बुलाकर कहा—"आनंद ! सुभद्र को प्रव्रज्या और उपसंपदा प्रदान करो।" आनंद ने "जो आज्ञा" कहकर सम्मति प्रकाश की।

परिव्राजक सुभद्र ने आनंद से कहा—"आप लोग अत्यंत सौ-भाग्यमान् हैं, जो आप इस प्रकार के शास्ता के साथ रहते हैं, और उनके कर-कमलों से अभिषिक्त हुए हैं।"

आनंद ने कहा—"भाई सुभद्र ! तुम भी तो आज भगवान् के अंतिम दर्शन लाभ करके उनके सामने, उन्हीं के कर-कमलों से अभिषिक्त हो रहे हो। यह क्या थोड़े सौभाग्य की बात है ?"

तदनंतर परिव्राजक सुभद्र ने भगवान् से प्रव्रज्या और उपसंपदा लाभ की। भिक्षु-धर्म में दीक्षित होने के बाद से ही सुभद्र एकाकी, अप्रमत्त भाव और परम उत्साह के साथ दृढ़प्रतिज्ञ होकर विचरण करने लगे। मनुष्य लोग जिस पद के लिये सब प्रकार के सुख और घर-बार त्यागकर संन्यासी होते हैं, सुभद्र ने बहुत जल्द उस परम श्रेष्ठ अर्हत्-पद को लाभ किया। यह सुभद्र भगवान् के अंतिम साक्षात् शिष्य थे।

आनंद और भिक्षु-संघ को अंतिम उपदेश

इसके बाद भगवान् आनंद को संबोधन करके बोले—"हे आनंद ! हमारे बाद तुम लोगों में यह बात हो सकती है कि हम लोगों के शास्ता गत हो गए, इसलिये उनका प्रवचन भी शेष हो गया। हम लोगों का अब कोई शास्ता नहीं है। किंतु हे आनंद ! तुम लोग अपने मन में कभी ऐसा विचार न करना और हमने जिस धर्म-विधि और शासन-विधि का उपदेश किया तथा सबके सामने वर्णन करके समझाया है, हमारे चले जाने के बाद वही धर्म-विधि और वही शासन-विधि तुम लोगों की शास्ता होगी।"

"हे आनंद ! अब तक एक भिक्षु दूसरे भिक्षु को आवुसो (बंधु) कहकर संबोधन करते थे, अब हमारे चले जाने के बाद उस तरह का व्यवहार करना उचित न होगा। अब से प्राचीन भिक्षु नवीन भिक्षु का नाम लेकर या उसके गोत्र का नाम लेकर या आवुसो (बंधु) कहकर संबोधन करेंगे। नवीन भिक्षु प्राचीन भिक्षु को 'भंते' कहकर संबोधन करेंगे।"

"हे आनंद ! हमारे चले जाने के बाद भिक्षु-संघ इच्छा करने पर हमारे दिए हुए छोटे-मोटे शिक्षा-पद (शासन-विधान) का परित्याग भी कर सकते हैं। अतएव, हे आनंद ! हमारे गमन के बाद छंद-भिक्षु के प्रति 'ब्रह्म-दंड' देना कर्तव्य है।"

आनंद ने पूछा—"हे भगवन् ! ब्रह्म-दंड किसे कहते हैं ?"

भगवान् ने कहा—"छंद-भिक्षु अपनी इच्छानुसार चाहे जो कहे, परंतु कोई भिक्षु उससे बातचीत न करे और न उसको कुछ सलाह दे।"

इसके बाद भगवान् सब भिक्षु-संघ को संबोधन करके बोले—"हे भिक्षुगण ! यदि तुम लोगों में से किसी को भी बुद्ध, धर्म, संघ और मार्ग या प्रतिपद (विधान) के विषय में कोई संदेह या दुविधा हो, तो हमसे पूछ सकते हो। जिसमें तुम लोगों को पीछे पश्चात्ताप न करना पड़े।"

भगवान् की बात सुनकर सब भिक्षु लोग मौन भाव से बैठे रहे। भगवान् ने फिर इस बात को दोहराया। भिक्षु लोग फिर उसी

प्रकार तूष्णीं भाव से बैठे रहे। भगवान् ने फिर तीसरी वार यही वात कही। तीसरी वार भी भगवान् की वात सुनकर सब भिक्षु लोग नीरव बैठे रहे।

भगवान् ने कहा—"हम यह वात तीन वार कह चुके हैं कि यदि भिक्षु-संघ में से किसी को भी बुद्ध, धर्म, संघ और मार्ग या प्रतिपद के विषय में कोई संदेह या द्विविधा हो, तो हमसे पूछ लो, जिसमें तुम लोगों को पीछे पश्चात्ताप न करना पड़े। परंतु सब भिक्षु लोग तूष्णीं भाव से बैठे हैं। तो क्या यह वात तो नहीं है कि तुम लोग शास्ता के संभ्रम-वश (अदव के कारण) कुछ नहीं कह रहे हो। यदि ऐसा हो, तो आपस में एक दूसरे से कहकर जनाओ।"

भगवान् की इस वात को भी सुनकर भिक्षु लोग नीरव रहे।

इसके वाद आनंद भगवान् को संबोधन करके बोले—"हे भगवन! यह कैसी अद्भुत और आश्चर्यजनक वात है कि आप अपने इस भिक्षु-संघ से ऐसी वात कहते हैं। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि इस भिक्षु-संघ में से ऐसा कोई भी नहीं है जिसको बुद्ध, धर्म, संघ और मार्ग या प्रतिपद के विषय में कुछ संदेह या द्विविधा हो।"

आनंद की वात सुनकर भगवान् बोले—"हे आनंद! तुमने अपने दृढ़ विश्वास की जो वात कही है, वह ठीक है और हम भी यह जानते हैं कि इस भिक्षु-संघ में से ऐसा एक भी भिक्षु नहीं है जिसको कुछ संदेह हो। हे आनंद ! इन पाँच सौ भिक्षुओं के मध्य सबसे निकृष्ट व्यक्ति भी स्रोतापन्न अर्थात् निर्वाण के स्रोत में पड़ गया है,

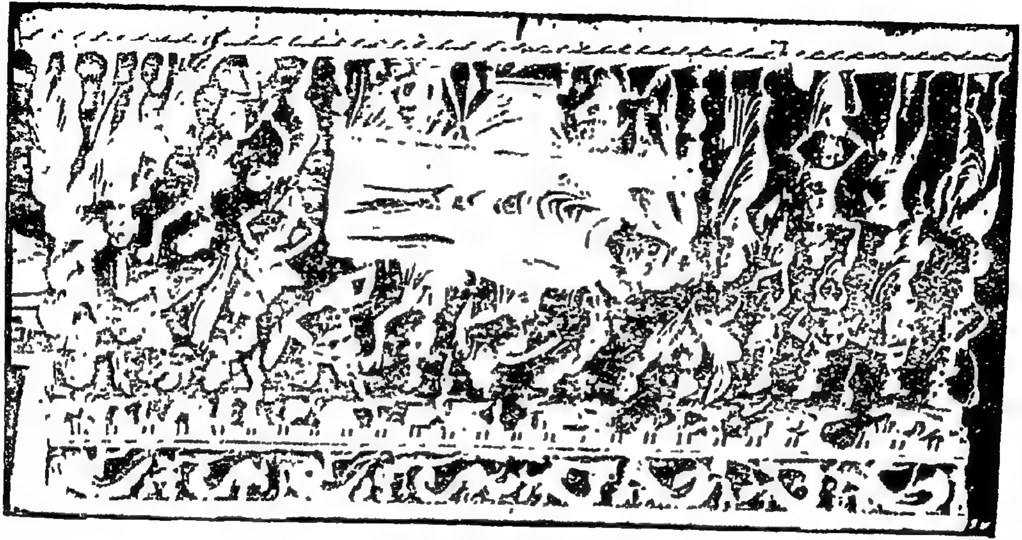
अर्थात् उसने दुःख-पूर्ण जन्म से अतीत स्थान को प्राप्त कर लिया है और यह निश्चय है कि वह संबोधि लाभ करेगा।"

इस प्रकार भगवान् सबके मन के संदेह और दुविधा को दूर करके संतोष प्रदान करते हुए सब भिक्षुओं को संबोधन करके अपना अंतिम वाक्य बोले—"हे भिक्षुगण! सावधान होकर सुनो, समस्त संयोग और [illegible]ग से उत्पन्न होनेवाली वस्तुओं का वियोग और नाश अवश्य होता है। तुम लोग अप्रमत्त (सचेत) और एकाग्र-चित्त होकर अपने-अपने साधन को संपन्न करो, अपने लक्ष्य को लाभ करो।"

इस प्रकार संसार के सर्वोपरिय महान् शिक्षक और महान् गुरु अपनी अंतिम अवस्था में अपने शिष्यों को सबसे अंतिम उपदेश देकर मौन हो गए।

भगवान् का महापरिनिर्वाण

इसके बाद भगवान् ने प्रथम ध्यान में प्रवेश किया। फिर प्रथम ध्यान से उत्तीर्ण होकर द्वितीय ध्यान में प्रवेश किया। द्वितीय ध्यान से उत्तीर्ण होकर तृतीय ध्यान में प्रवेश किया। तृतीय ध्यान से उत्तीर्ण होकर चतुर्थ ध्यान में प्रवेश किया। चतुर्थ ध्यान से उत्तीर्ण होकर आकाशानंत्यायतन में प्रवेश किया। आकाशानंत्यायतन से उत्तीर्ण होकर विज्ञानानंत्यायतन में प्रवेश किया। विज्ञानानंत्यायतन से उत्तीर्ण होकर अकिंचन्यायतन में प्रवेश किया। अकिंचन्यायतन से उत्तीर्ण होकर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन में प्रवेश किया। और नैवसंज्ञानासंज्ञायतन से उत्तीर्ण होकर संज्ञावेदयितृ-निरोध (ज्ञाता और ज्ञेय की अतीत अवस्था) में पहुँचकर विहार करने लगे।



भगवान् बुद्ध की कुशिनगरमें निर्वाण-प्राप्ति ।

भगवान बुद्धने यहीं हमेशा के लिए निर्वाण प्राप्त किया था। यह हमारी चौथी विजय है। उन्होंने नश्वर शरीर का हमेशा के लिए परित्याग कर दिया। यह उनके लिए कैसा आनन्द, कैसा प्रकाश, कैसा सौभाग्य है; उन्होंने ४५ वर्ष तक बौद्ध धर्म का प्रचार किया। उन्होंने दुःखसंतप्त मनुष्यमात्र के कष्ट को दूर करने के लिए सर्वोत्तम निर्वाणरूपी औषधि प्रदान की। उनका धर्म शक्तिशाली था। उनका कार्य समाप्त हो गया था; उन्हें करने के लिए कोई कार्य बाकी न था; इसलिए उन्होंने "अन-उपादिशेष-परि-निब्बान" के सुख पर विजय पाने के लिए इस नश्वर शरीर का परित्याग किया उन्होंने अपने इस नश्वर शरीर को त्याग दिया, जिससे वे स्वतंत्र और बंधन-मुक्त होकर अमरत्व के जल में सदा विहार किया करें।

उस समय भगवान् की अवस्था देखकर आनंद ने अनिरुद्ध से संबोधन करके कहा—"हे अनिरुद्ध ! भगवान् महापरिनिर्वाण को प्राप्त हो गए।"

अनिरुद्ध ने कहा—"हे बंधु ! भगवान् अभी महापरिनिर्वाण को प्राप्त नहीं हुए हैं। अभी भगवान् संज्ञावेदयितृ-निरोध अर्थात् ज्ञाता और ज्ञेय के अतीत-अवस्था में विहार कर रहे हैं।"

इसके बाद भगवान् संज्ञा-वेदयितृ-निरोध अवस्था से नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतन में आए, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन से अकिंचन्यायतन में आए, अकिंचन्यायतन से विज्ञानानंत्यायतन में आए, विज्ञानानंत्यायतन से आकाशानंत्यायतन में आए, आकाशानंत्यायतन से चतुर्थ ध्यान में आए, चतुर्थ ध्यान से तीसरे ध्यान में आए, तीसरे ध्यान से दूसरे ध्यान में आए, और दूसरे ध्यान से पहले ध्यान में आए।

इसके बाद भगवान् फिर प्रथम ध्यान से दूसरे ध्यान में गए, दूसरे ध्यान से तीसरे ध्यान में गए, और तीसरे ध्यान से भगवान् ने चौथे ध्यान में प्रवेश किया। इसी चतुर्थ ध्यान के विहार-काल में भगवान् महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

इस प्रकार से संसार के एक सबसे बड़े महापुरुष, जगद्गुरु और महान् उपदेशक ने संसार को अपना आदर्श तथा कल्याण का सुपथ प्रदर्शन कराकर, एवं दुर्दशा-पीड़ित जनता को शांति-दायक सुगम सत्पथ बताकर, संसार से अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी।

भगवान् के परिनिर्वापित होते ही महाभयंकर भूकंप हुआ तथा अति भीषण और लोमहर्षण वज्र-ध्वनि और विद्युत्-पात हुआ।

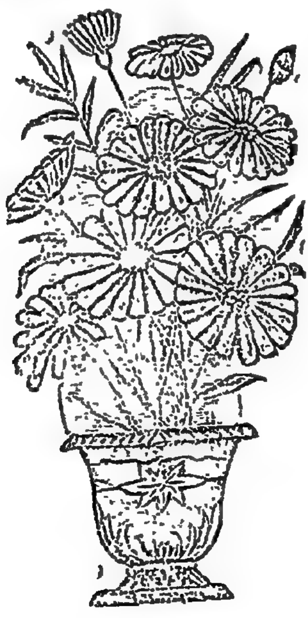
भगवान् के परिनिर्वापित होने पर सहंपति ब्रह्मा और देवराज शक्र ने आकर अनित्यता की भावना करते हुए भगवान् की स्तुति की। अनिरुद्ध और आनंद ने भी अनित्यता की भावना करते हुए भगवान् की स्तुति की। और वहाँ जितने भिक्षु लोग उपस्थित थे, उनमें से जिनकी आसक्ति दूर नहीं हुई थी, वह लोग अति विकल होकर विलाप करने लगे। किंतु उनमें से जो भिक्षु वीतराग या अनासक्त थे, वह लोग स्मृतिवान् और संप्रज्ञात-भाव से अवस्थित रहे, और उन क्रंदन करते हुए भिक्षुओं को समझाया कि "समस्त यौगिक और उत्पन्नवान् वस्तुएँ क्षणिक और अनित्य हैं, उनका नाश न हो, यह असंभव है।"

अनिरुद्ध सब भिक्षुओं को संबोधन करके बोले—"हे बंधुवर्गो! अब शोक और दुःख मत करो। क्योंकि भगवान् पहले ही आप सब लोगों को ज्ञात करा गए हैं कि समस्त मनोरम और प्रिय वस्तुओं से हम पृथक् होंगे, उनसे संपर्क त्यागकर दूर हो जायँगे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि जिसका जन्म हुआ है, जो अनित्य में आता है, जिसने शरीर धारण किया है, वही काल-धर्म (मृत्यु) के अधीन है। इसके विरुद्ध कभी नहीं हो सकता। हे बंधुवर्गो! आप लोग शोक और दुःख न कीजिए, रुदन न कीजिए, नहीं तो देवता लोग हम लोगों को हँसेंगे।"

अनिरुद्ध की बात सुनकर भिक्षुओं में से किसी ने कहा—"हे अनिरुद्ध! आकाश और पृथ्वी के अनेक देवता लोग तो स्वयं केश बिखराए और हाथ फैलाए हुए रो रहे हैं। कितने ही शोक से व्याकुल

होकर लोटते हुए रो रहे हैं। उनमें से जो वीतराग देवता लोग हैं, वह स्मृतिवान् और संप्रज्ञात-भाव से अवस्थान करते हुए सबको समझाकर धैर्य दे रहे हैं कि समस्त यौगिक और उत्पन्नवान् वस्तुएँ निःसंदेह अनित्य और नाशवान् हैं। इसमें कभी अंतर नहीं पड़ सकता।"

आनंद और अनिरुद्ध ने अवशिष्ट रात्रि इसी प्रकार धर्मालोचना करते हुए सबके साथ बिताई।



१४—धर्मचक्रवर्ती सम्राट् के शव की अंत्येष्टि

भगवान् के शव की मल्लों द्वारा पूजा-वंदना

सवेरा होते ही अनिरुद्ध ने आनंद से कहा—"हे बंधु ! तुम कुशी-नगर में जाकर मल्ल लोगों को खबर करो कि भगवान् परिनिर्वापित हुए हैं। अब तुम लोगों को जैसा उचित जान पड़े, करो।"

अनिरुद्ध की आज्ञानुसार आनंद चीवर-वेष्टित हो, पिंडिपात्र ग्रहणकर एक भिक्षु के साथ कुशीनगर गए। इस समय मल्लगण भगवान् की अंतिम अवस्था के विषय में विचार करने के लिये मंत्रणा-गृह (कमेटी-घर) में एकत्रित हुए थे। आनंद उसी मंत्रणा-गृह में उपस्थित होकर बोले—"हे वाशिष्ठगण ! भगवान् महापरिनिर्वाण को प्राप्त हो गए। अब आप लोग जैसा उचित समझें, करें।"

आनंद के मुख से यह बात निकलते ही बात की बात में सारे नगर में फैल गई। समस्त मल्ल, मल्ल-युवक, मल्ल-वधू और मल्ल-कन्या-गण अत्यंत दुखित होकर शोकनाद करने लगे। कोई केश बिखरा-कर, कोई हाथ फैलाकर, कोई ज़मीन में गिरकर लोटते हुए और कोई-कोई घोर चीत्कार करके रोने और कहने लगे—"हा हंत ! भगवान् अति शीघ्र महापरिनिर्वाण को प्राप्त हो गए, सुगत अति शीघ्र लोक-चक्षु से अंतर्द्धान हो गए; हा दैव ! अब हम लोग क्या करेंगे ? अब हमें उस प्रकार का सदुपदेश देकर कौन शांत करेगा ? अब हमें कौन धैर्य प्रदान करेगा ? हा भगवन् ! अब आपकी वह

करुणा हम लोगों को कहाँ मिलेगी ? आप हम लोगों को छोड़कर चले गए, अब हम आपको कैसे पावेंगे ?"

इसके अनंतर धैर्य धारणकर मल्लगण अनेक प्रकार के वाद्य-यंत्र, गंध, माला और पाँच सौ जोड़ा नवीन वस्त्र लेकर शालवन के उपवन में भगवान् तथागत के शरीर के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने चंदनादि सुगंधित पदार्थ और मालाओं से भगवान् के शरीर की भक्तिभाव-पूर्वक पूजा करके वंदना की तथा अनेक प्रकार के बाजे बजाकर नृत्य और गीत के द्वारा भगवान् के शरीर का श्रद्धा-पूर्वक सम्मान किया तथा वस्त्रों का वितान तैयार करके उसे फूल और मालाओं से खूब सजाया। इस प्रकार करते-करते वह दिन व्यतीत हो गया। दूसरे दिन मल्ल लोगों ने फिर उसी प्रकार भगवान् के शरीर की गंध, माला, नृत्य, गीत आदि द्वारा पूजा और वंदना की। इसी प्रकार छः दिन तक वह लोग पूजा-वंदना करके भगवान् के शरीर का सम्मान और सत्कार करते रहे। सातवें दिन मल्ल लोग यह विचार करने लगे कि भगवान् के शरीर को नगर के दक्षिण ओर से बाहर-बाहर ले जाकर नगर के दक्षिण ओर ही दाह करेंगे। इस समय मल्लों के आठ प्रधान नेताओं ने अपने-अपने शिरों को धोकर नए वस्त्र पहने और बोले—"हम लोग भगवान् के शरीर को उठाकर ले चलेंगे।" किंतु जब उठाने लगे, तो वह आठो आदमी मिलकर भी भगवान् के शरीर को न उठा सके। तब मल्ल लोगों ने अनिरुद्ध को संबोधन कर कहा—"भंते ! क्या कारण है कि हम आठ प्रधान मल्ल लोगों ने भगवान् के शरीर को उठाकर ले चलना चाहा, परंतु हमसे

भगवान् का शरीर उठाए न उठा ?" अनिरुद्ध ने कहा—"हे वाशिष्ठ-गण ! आप लोगों का जैसा अभिप्राय है, देवतों का वैसा अभिप्राय नहीं है।" मल्लों ने कहा—"भंते ! देवताओं का क्या अभिप्राय है ?" अनिरुद्ध ने कहा—"हे वाशिष्ठगण ! आप लोगों का अभिप्राय है कि भगवान् के शरीर को पुष्प, माला, गंध आदिकों से सजाकर, नाना भाँति के वाद्य, गीत, नृत्य के साथ नगर के दक्षिण ओर से बाहर ही बाहर ले जाकर दक्षिण ओर दाह करें ; परंतु देवताओं का अभिप्राय है कि हम लोग अपने स्वर्गीय गंध, पुष्प, मालाओं से सजाकर और स्वर्गीय बाजाओं को बजाकर नृत्य, गीत के द्वारा भगवान् के शरीर को पूजा-वंदना करके श्रद्धा-सम्मान-सहित नगर के उत्तर ओर ले जाकर बीच में ले आवें और वहाँ से पूर्व-द्वार से बाहर ले जाकर नगर के पूर्व-भाग में स्थित मल्लों के मुकुट-बंधन नामक मंदिर में भगवान् के शरीर का दाह करें।"

मल्ल लोगों ने कहा—"भंते ! देवताओं का जैसा अभिप्राय हो, वैसा ही कार्य किया जाय।"

मल्लों के सम्मति प्रकाश करते ही उसी क्षण धूलि और जल-पूर्ण कुशीनगर के सब स्थान पुष्प-वृष्टि से परिपूर्ण हो गए। इसके बाद देवगण तथा कुशीनगर के मल्लगण स्वर्गीय और पार्थिव गंध, माला और पुष्प आदिकों के द्वारा भगवान् के शरीर की पूजा और वंदना करके नाना भाँति के स्वर्गीय और पार्थिव बाजे बजाकर नृत्य, गीत करते हुए भगवान् के शरीर को अति श्रद्धा और सम्मान के सहित नगर के उत्तर ओर से ले जाकर, उत्तर द्वार को लाँघकर नगर के

बीच में पहुँच और फिर वहाँ से पूर्व द्वार से निकलकर नगर के पूर्व दिशा में मल्लों के मुकुट-बंधन नामक मंदिर के पास ले जाकर रक्खा।

भगवान् के शरीर का चक्रवर्ती सम्राटों-जैसा दाह-कर्म

इसके बाद मल्ल लोगों ने आनंद से पूछा—"भंते! भगवान् के शरीर की अंत्येष्टि-क्रिया किस प्रकार से की जाय?" आनंद ने कहा—"हे वाशिष्ठगण! भगवान् के शरीर का दाह-कार्य धार्मिक चक्रवर्ती राजा के शरीर के दाह-कर्म के समान होना चाहिए, क्योंकि भगवान् धर्मचक्रवर्ती थे।"

आनंद की बात सुनकर मल्ल लोगों ने अपने अनुचरों को कुशीनगर से तमाम धुनी हुई रुई और वस्त्र लाकर एकत्रित करने की आज्ञा दी। अनुचरों ने आज्ञानुसार बात की बात में कपड़े और धुनी हुई रुई को लाकर वहाँ ढेर लगा दिए। इसके बाद मल्ल लोगों ने नए वस्त्र से भगवान् के शरीर को लपेटा। वस्त्र द्वारा लपेटने के बाद भगवान् के शरीर को धुनी हुई रुई से लपेटा। फिर नए वस्त्र से लपेटा और फिर धुनी हुई रुई से लपेटा। इसी प्रकार दोनो वस्तुओं के द्वारा भगवान् के शरीर को पाँच सौ बार लपेटा। इसके बाद तेल-भरे हुए लोहे के संदूक में रखकर लोहे के ढक्कन से ढाँक दिया। फिर सब प्रकार की सुगंधित वस्तुओं द्वारा चिता रचकर उसपर उस संदूक-सहित भगवान् के शरीर को स्थापित कर दिया।

इधर यह हो रहा था, उधर भगवान् के परमप्रिय शिष्य महाकाश्यप ५०० भिक्षुओं के साथ पावा से कुशीनगर की ओर आ रहे थे और मार्ग में रास्ते से हटकर एक वृक्ष के नीचे बैठकर विश्राम कर

रहे थे। इसी समय महाकाश्यप ने देखा कि आजीवक संप्रदाय का एक नग्न संन्यासी कुशीनगर की ओर से स्वर्गीय मंदार-पुष्प हाथ में लिए पावा की ओर जा रहा है। उसके निकट आने पर महाकाश्यप ने पूछा—"हे भाई ! तुम कुशीनगर की ओर से आ रहे हो। क्या हमारे गुरुजी का भी कुछ हाल कह सकते हो ?"

महाकाश्यप की बात सुनकर उसने कहा—"हा बंधु ! जानत हूँ। आपके गुरु महाश्रमण गौतम की मृत्यु हुए आज एक सप्ताह हो गया और यह स्वर्गीय मंदार हम वहीं से लाए हैं।" इस संवाद के सुनते ही महाकाश्यप के संग के भिक्षुओं में से जिनकी आसक्ति पूर्ण रूप से दूर नहीं हुई थी, वह लोग अत्यंत विलाप करने लगे। उनमें से बहुत-से पृथ्वी पर गिरकर लोटते हुए रोने और विलाप करने लगे। किंतु इन भिक्षुओं में से जो वीतराग थे, वह स्मृतिवान् और सप्रंज्ञात-भाव से रहकर सबको समझाने लगे कि "जितनी यौगिक और उत्पन्नवान् वस्तुएँ हैं, वह सब अनित्य और नाशवान् हैं, उनका विच्छेद अवश्य होगा।" महाकाश्यप भी सब भिक्षुओं को समझाने लगे कि "हे बंधुओ ! भगवान् तो इस विषय में पहले ही कह गए हैं कि हम सब प्रिय और मनोरम वस्तुओं से अलग हो जायँगे। उनसे हमारा संग छूट जायगा। जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु भी अवश्य होगी। इसमें किंचित् मात्र भी अन्यथा नहीं हो सकता।"

इधर ये बातें हो रही थीं, उधर मल्लों के चार प्रधान व्यक्तियों ने मस्तक धोकर नए वस्त्र पहने और भगवान् की चिता को प्रज्वलित

करने लगे। परंतु अत्यंत प्रयत्न करने पर भी चिता प्रज्वलित नहीं हुई। तब मल्लगण अनिरुद्ध से संबोधन करके बोले—"भंते! क्या कारण है कि इतनी चेष्टा करने पर भी भगवान् की चिता प्रज्वलित नहीं होती है?" अनिरुद्ध ने कहा—"हे वाशिष्ठगण! तुम लोगों का अभिप्राय कुछ और है, और देवताओं का कुछ और।" मल्लों ने कहा—"भंते! देवताओं का क्या अभिप्राय है?" अनिरुद्ध ने कहा—"देवताओं का अभिप्राय है कि महाकाश्यप ५०० भिक्षुओं के साथ पावा नगर से कुशी नगर आ रहे हैं। जब तक महाकाश्यप भिक्षु-संघ सहित भगवान् की पाद-वंदना न कर लें, तब तक चिता प्रज्वलित न हो।"

महाकाश्यप का ५०० भिक्षुओं-सहित शव-दर्शन

इसी अवसर में महाकाश्यप ५०० भिक्षुओं के साथ आ पहुँचे और चिता के निकट उपस्थित हो, दाहिना कंधा खुला और बायाँ कंधा ढका चीवर ओढ़कर, दोनो हाथ जोड़कर प्रणाम करके तीन बार चिता की प्रदक्षिणा की और बारी-बारी से भगवान् के पदों पर मस्तक रखकर वंदना की। इस प्रकार जब महाकाश्यप और उनके ५०० भिक्षुओं का वंदनादि कार्य समाप्त हुआ, तब भगवान् की चिता अपने आप ही प्रज्वलित हो उठी और भगवान् के शरीर का दाह होने लगा। वर्ण, चर्म, मांस, स्नायु और गाँठों के पास का जलीय भाग सब जल गया। किंतु मसि और भस्म नहीं दिखलाई पड़ी, केवल अस्थि-मात्र शेष रह गया। जिस प्रकार घृत अथवा तेल जलने पर मसि या भस्म नहीं दिखाई पड़ती, उसी प्रकार

वह ५०० जोड़ा वस्त्र और रुई के तह, जो भगवान् के शरीर में लपेटे गए थे, तथा भगवान् के शरीर का चर्म, मांस, स्नायु और ग्रंथि-स्थान का जलीय भाग सब जल गया, परंतु मसि और भस्म नहीं दिखलाई पड़ा। केवल अस्थिमात्र अवशिष्ट रह गया।

जब भगवान् का शरीर अच्छी तरह जल गया, तो ठीक अवसर पर आकाश से जल-वृष्टि हुई, और पृथ्वी के अभ्यंतर के जल-भंडार से स्वतः जल-धारा निकली जिसने भगवान् की चिता की अग्नि को बुझाया। इधर कुशीनगर के मल्ल लोगों ने भी विविध भाँति के सुगंधित जल द्वारा भगवान् की चितानल को बुझाया।

अस्थियों के लिये ७ राजाओं की चढ़ाई

इस प्रकार चिता ठंडी होने पर मल्ल लोगों ने भगवान् की अस्थियों का चयन करके उन्हें एक कुंभ में रक्खा और उस कुंभ को बड़े सजाव-सम्मान के साथ मंत्रणा-सभा-गृह में ले जाकर स्थापित किया। फिर उसके चारो ओर बाणों और धनुषों से घेरकर हदबंदी की दीवार-सी रचना करके एक सप्ताह तक नृत्य, गीत, वाद्य, पुष्प-माला और गंध धूप आदि वस्तुओं द्वारा अस्थियों का सम्मान और पूजा-वंदना करते रहे।

जब भगवान् बुद्ध के मल्लों की राजधानी कुशीनगर में परिनिर्वाण प्राप्त होने का समाचार चारो ओर फैला, तो उसे सुनकर मगध-सम्राट् महाराज अजातशत्रु, वैशाली के लिच्छिवी लोग, कपिलवस्तु के शाक्य लोग, अल्लकल्प के बूलय लोग, रामग्राम के कोलिय लोग,

और पावा के मल्लराज आदि सब क्षत्रिय राजा और राजवंशों ने अपने-अपने दूतों द्वारा भगवान् के अस्थि-भाग को लेने के लिये कुशीनगर के मल्लराज के पास यह लिखकर भेजा—"भगवान् क्षत्रिय थे। हम भी क्षत्रिय हैं। इसलिये उनके शरीर के अंश पर हमारा भी स्वत्व है, और उनके शरीर का अस्थि-भाग हम लोगों को मिलना चाहिए।"

इसी अवसर पर वेठ द्वीप के ब्राह्मणों ने भी अपने दूत के द्वारा भगवान् बुद्ध का शरीरांश प्राप्त करने के लिये कुशीनगर के मल्लराज को लिख भेजा—"हम लोग भगवान् पर बड़ी श्रद्धा-भक्ति रखते थे, इस नाते से हमें भी भगवान् का शरीरांश अवश्य मिलना चाहिए। हम लोग उस पर स्तूप निर्माण करके पूजा-वंदनादि करेंगे।"

जब कुशीनगर के मल्लगणों ने देखा कि यह तो सब लोग भगवान् के शरीर का अवशिष्ट अस्थि-भाग माँग रहे हैं, उन्होंने कहा—"कुछ हो, भगवान् बुद्ध ने हमारे नगर की सीमा में परिनिर्वाण प्राप्त किया है। इसलिये उनके शरीर का अवशिष्ट भाग हम किसी को नहीं देंगे।"

ब्राह्मण द्रोण द्वारा अस्थियों के आठ विभाग

जब कुशीनगर के मल्लों के इस इन्कार की बात मगध, कौशांबी आदि के सब राजाओं ने सुनी, तो वे लोग भगवान् के शरीर का अस्थि-भाग लेने के लिये अपनी-अपनी सेना लेकर कुशीनगर पर एकदम चढ़ आए और घोर संग्राम होने की संभावना उपस्थित हो गई। उस समय द्रोण नामक एक ब्राह्मण ने, जो भगवान् बुद्ध का

बहुत बड़ा भक्त था, विचार किया कि बात की बात में घोर जन-क्षय-कारी युद्ध हुआ चाहता है, अतः उसने सब लोगों के बीच में खड़े होकर उच्चस्वर से सबको संबोधन कर इस प्रकार कहा—

सुनांतु भोन्तो मम एक वाक्य,
अम्हाक बुद्धो अह खन्तिवादो।
नहि सधइप उत्तम पुग्गलस्स,
सरीर भंगे सि या संपहारो॥
सब्बेव भोगो सहिता समग्गा,
सम्मोद माना करोमट्ठभागे।
वित्थारिका होन्ति दिसासु थूपा,
बहुजना चक्खु मंतो पसन्ना॥

अर्थात्—"हे क्षत्रिय वर्ग! आप लोग मेरी बात सुनिए। भगवान् बुद्ध शांतिवादी थे। यह उचित नहीं है कि ऐसे महापुरुष की मृत्यु पर आप लोग घोर संग्राम मचावें। आप लोग सावधान होकर शांति धारण करें। मैं उनकी अस्थियों के आठ भाग किए देता हूँ। यह अच्छी बात है कि सब दिशाओं में उनकी धातु पर स्तूप बनवाए जायँ, जिनको देखकर सब चक्षुवान् लोग प्रसन्न हों।"

द्रोण की बात सुनकर उससे सहमत हो सब लोग शांत हुए। द्रोण ने भगवान् बुद्ध के अस्थि-धातु के आठ भाग करके एक भाग कुशीनगर के मल्लों, पावा के मल्लों, वैशाली के लिच्छिवियों, मगध-सम्राट् वैदेही पुत्र अजातशत्रु, कपिलवस्तु के शाक्यों, रामग्राम के कोलियों, अल्लकल्प के बुलियों और बेठ-द्वीप के ब्राह्मणों को

दिया। इस प्रकार बँटवारा होने के बाद पिप्पलवती के मौर्य-क्षत्रियों का दूत भी अस्थि-भाग के लेने के लिये आ पहुँचा। तब द्रोण ने उसे समझा-बुझाकर चिता का अंगार देकर विदा किया, और उस कुंभ (घड़े) को जिसमें भगवान् की अस्थियाँ रक्खी थीं, सब लोगों से अपने लिये माँग लिया। द्रोण के इस प्रकार बँटवारा करके सबको शांत कर देने के बाद सब भिक्षुओं ने एकस्वर होकर इस गाथा का गान किया —

देविन्द, नागिन्द नरिन्द पूजितो
मनुस्सिन्द सेट्ठेहि तथैव पूजितो।
तं वन्दथ पञ्जालिका भवित्वा
बुद्धो हवे कप्प सतेहि दुल्लभो॥

अर्थ—देवराज, नागराज और श्रेष्ठ मनुष्यों के द्वारा पूजित भगवान् बुद्ध को हम लोग कृतांजलि-पूर्वक वंदना करते हैं, क्योंकि सैकड़ों कल्पों के बाद भी इस प्रकार के भगवान् तथागत बुद्ध का जन्म होना दुर्लभ है।

अस्थियों पर ८ नगरों में स्तूप-निर्माण

इसके बाद (१) मगध के सम्राट् वैदेही-पुत्र महाराज अजातशत्रु ने राजगृह में, (२) लिच्छिवी लोगों ने वैशाली नगर में, (३) शाक्यों ने कपिलवस्तु में, (४) बुलियों ने अल्लकल्प में, (५) वेठ-द्वीप के ब्राह्मणों ने वेठ-द्वीप में, (६) कोलियों ने रामग्राम में, (७) पावा के मल्लों ने पावा में और (८) कुशीनगर के मल्लों ने कुशीनगर में भगवान् की अस्थियों को ले जाकर, अपने-अपने यहाँ स्तूप निर्माण

करके महोत्सव किया। पिप्पलवती के मौर्य लोगों ने पिप्पली में भगवान् की चिता के अंगारे पर स्तूप निर्माण करके महोत्सव मनाया और द्रोणाचार्य ब्राह्मण ने जिस कुंभ में भगवान् की अस्थियाँ रक्खी थीं, उसपर स्तूप निर्माण करके महोत्सव मनाया। इस प्रकार आठ अस्थि-स्तूप, एक अंगार-स्तूप और एक-एक कुंभ-स्तूप, सब दस स्तूप भिन्न-भिन्न स्थानों में भगवान् की स्मृति में बनाए गए।

ब्रह्मिन्द देविन्द नरिन्द-राजं,
बोधिं सबोधिं करुणा-गुणग्गं।
पञ्ञापदीप ज्वलितं जलंतं,
वन्दामि बुद्धं भव पार तिण्णं॥

अर्थ—जो ब्रह्माधिपति, देवाधिपति, नरेंद्राधिपति और जगत् में उत्तम बोधि (ज्ञान) लाभ करने तथा करुणा-गुण में सर्वश्रेष्ठ हैं, ऐसे प्रज्ञा-रूपी प्रदीप से आलोकित, जाज्वल्यमान, भवसागर से पार, भगवान् बुद्ध की मैं वंदना करता हूँ।

* इति *

लखनऊ के सुप्रसिद्ध

हिंदू-समाज-सुधार कार्यालय का

संक्षिप्त विवरण और सूचीपत्र

'हिंदू' की परिभाषा

आसिंधु-सिंधुपर्यंता यस्य भारतभूमिका ; पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै हिंदुरितिस्मृतः।

अर्थ— सिंधु-नद से लेकर सागर-पर्यंत घिरी हुई भारत-भूमि जिनके पूर्वजों की भूमि और पुण्यभूमि है, वे सब 'हिंदू' हैं।

उद्देश्य

हिंदू-समाज में फैली हुई समस्त रूढ़ियों, कुरीतियों, कुसंस्कारों और कुमतियों को मिटाकर उसे सुसभ्य, सुसंगठित, समुन्नत, समयानुकूल, सार्वभौमिक एवं शक्तिशाली राष्ट्र बनाना हिंदू-समाज-सुधार-कार्यालय का उद्देश्य है।

स्थापन और कार्य-संचालन

इस उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर सं० १६८६ वि० की वसंत-पंचमी को इस कार्यालय की स्थापना हुई। इसके द्वारा देश में फैली हुई गाने की गंदी किताबों की जगह, अखिल भारतवर्षीय हिंदू-महासभा, राष्ट्रीय महासभा (Indian National Congress) तथा विश्ववंद्य महात्मा गांधी एवं देश के अन्यान्य सर्वमान्य नेताओं के मंतव्यों और सिद्धांतों को घर-घर प्रचार करने के संकल्प से सचित्र संगीतमय ट्रैक्टों का प्रकाशन, और प्रचारकों द्वारा गा-गाकर उनके प्रचार करने. का कार्य आरंभ हुआ।

प्रचार-कार्य और सफलता

यह आनंद का विषय है कि कार्यालय द्वारा प्रकाशित ट्रैक्टों को हिंदू-

जनता ने ख़ूब पसंद किया। केवल दो ही साल के अल्प-काल में लगभग दस लाख ट्रैक्टों का प्रचार हुआ! इस समय लगभग ६० प्रचारक यू० पी०, सी० पी०, बंबई, राजपूताना, पंजाब, बिहार-उड़ीसा, बंगाल, आसाम और बर्मा में हिंदू-समाज-सुधारमाला के ट्रैक्टों को गा-गाकर प्रचार करते हैं। ये प्रचारक वैतनिक और अवैतनिक दो तरह के हैं। इस भारी प्रचार-कार्य से देश में कहाँ-कहाँ कितनी जागृति हुई और हो रही है, प्रचारकों को किन-किन विपत्तियों का सामना करना पड़ा और पड़ रहा है, इसे इस संक्षिप्त विवरण में बताने को न स्थान है, न कोई आवश्यकता।

विघ्न-बाधा और हानि

"श्रेयांसि बहु विघ्नानि"-लोकोक्ति के अनुसार इस कार्यालय को भी अनेक विघ्नों का सामना करना पड़ा। भारत में स्वाधीनता-संग्राम छिड़ जाने से, माँग के अनुसार, माला का पंद्रहवाँ ट्रैक्ट "राष्ट्रीय डंका और स्वदेशी खादी"-नाम से प्रकाशित हुआ। यह ट्रैक्ट लाहौर-कांग्रेस का पूरा प्रोग्राम था। इसका आशातीत प्रचार हुआ। साथ ही दो ओर से विपत्तियों का भी प्रहार हुआ। एक ओर सरकार ने इसके हिंदी-उर्दू, दोनो एडीशन ज़ब्त कर लिए, दो बार कार्यालय की तलाशी हुई और कार्यालय के सुयोग्य संचालक श्रीचंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु को, दफ़ा १२४ ए० के अनुसार, जेल जाना पड़ा; दूसरी ओर कुछ लोभी और शैतान नक़्क़ालों ने माला के ट्रैक्टों के गाने, विज्ञापन और पूरे ट्रैक्ट-के-ट्रैक्ट जाली नामों से छपा-छपाकर बेचना, कार्यालय को आर्थिक हानि पहुँचाने के लिये ग्राहकों आदि को भड़काना, कार्यालय पर विपत्ति लाने के लिये पुलीस से झूठी चुग़ली खाना इत्यादि अनेक पाजीपन और कमीनेपन के काम करने शुरू किए! इन सब दुष्टताओं से संस्था को भारी क्षति पहुँची। किंतु ईश्वर की कृपा, और गुणग्राही हिंदू-जनता के प्रेम के भरोसे, नाना विघ्नों से युद्ध करता हुआ भी, कार्यालय उत्तरोत्तर नए ट्रैक्टों के प्रकाशन एवं उनके प्रचार-कार्य में लगा हुआ है। (परमेश्वर इन पतित भाइयों को सुमति प्रदान करे!)

सफलता और धन्यवाद

इस सफलता का श्रेय उन दीनबंधु प्रभु को है जिनकी इच्छा-मात्र से ही अनंत कोटि ब्रह्मांडों का सृजन और संहार होता रहता है! इसके सुयोग्य संचालक को है जो निष्काम कर्तव्य-पालन ही अपना पवित्र धर्म समझते हैं; उन सहृदय कवियों को है जो अपनी मनोहर रचनाओं को इस ट्रैक्टमाला में प्रकाश कराते हैं; उन प्रचारकों को है जो ट्रैक्टों के गाने गा-गाकर उनका गली-गली गाँव-गाँव प्रचार करते हैं; उन एजेंटों और बुकसेलरों को है जो इन मनोहर ट्रैक्टों को अपने यहाँ मँगाकर विक्रयार्थ रखते हैं; तथा उन देश और समाज-हितैषी नररत्नों को है जो इन पुस्तकों को सैकड़ों की संख्या में मँगाकर कन्या-पाठशालाओं, स्कूलों एवं उत्सवों में मुफ़्त वितरण करके देश-सेवा का पुण्य और यश संचय करते हैं! ये सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

नई योजना

विशेषज्ञों का मत है कि हमारा भारत-देश इस पृथिवी का हृदय है। यही कारण है कि यह देश समस्त प्राकृतिक छटाओं से परिपूर्ण, भावमय और संगीतमय है। यहाँ का गणितशास्त्र-जैसा शुष्क विषय भी कविता में है। यहाँ ब्रह्मा ने साम-गायन किया, शिव ने तांडव-नृत्य किया और महा-योगेश्वर भगवान् कृष्ण ने विश्व-विमोहिनी वंशी बजाई। भावमय भारतीयों के हृदयों पर संगीत जादू का असर करता है। संगीत के द्वारा जिस तत्त्व का प्रचार किया जाता है, वह समाज में स्थायी-रूप ग्रहण करता है। यही सोच-समझकर आरंभ में कार्यालय द्वारा संगीतमय सचित्र ट्रैक्टों का प्रकाश किया गया और सफलता हुई। किंतु अब संस्था के हितैषियों की सम्मति है कि राष्ट्र एवं समाज के नव-निर्माण-कार्य में सहायता पहुँचाने तथा नई-नई कठिन सामाजिक समस्याओं पर, जो आए दिन उठा करती हैं, संगठित-रूप से प्रचार-कार्य करने के लिये इस संस्था को गद्य और पद्य दोनो तरह के ट्रैक्टों को प्रकाश करना चाहिए। अतएव यह प्रबंध किया गया है कि प्रति मास, कम-से-कम चार नए ट्रैक्ट, चाहे वे गद्य में हों या पद्य, प्रकाशित हों और उनका देश-व्यापी प्रचार किया जाय।

सहायता के लिये अपील

किंतु इस उद्योग की सफलता ईश्वर की अनुकंपा और गुणग्राही देश-बंधुओं की सहायता पर निर्भर है। इस संस्था ने किसी भाई से एक पैसा चंदा नहीं लिया और न किसी धनवान् भाई से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता की ही याचना की। केवल ईश्वर के भरोसे, अल्प-शक्ति और स्वल्प पूजी से, देश और समाज की विशुद्ध सेवा की भावना से प्रेरित हो, फल की आशा न करके, निष्काम कर्तव्य का पालन किया गया, और दयालु परमेश्वर ने अयाचित सहायता की! इसीलिये, अब इस नई योजना की सफलता के लिये भी, उसी समर्थ प्रभु के चरणों में अपील है, वह यदि उचित समझे, तो देश-बंधुओं को इस ओर प्रेरित करे!

महापुरुषों से निवेदन

देश के ज्ञानवान्, तत्त्वदर्शी, भूत-भविष्य के ज्ञाता, त्यागी, तपस्वी, महादानी, सर्वभूतहितरत, लोक-संग्रही एवं देश और समाज के हितैषी महापुरुषों की सेवा में सविनय निवेदन है कि वे इस कार्यालय को अपनी कल्याणकारिणी कर्तव्यादेशिका सम्मति प्रदान करने की कृपा करें।

कवियों और लेखकों से

जो कवि या लेखक महोदय अपने देशोद्धार या समाज-सुधार-संबंधी गाने किंवा नई-नई विकट सामाजिक समस्याओं पर समाज को सचेत और सावधान करनेवाले निबंध सुविख्यात हिंदू-समाज-सुधार-ट्रैक्टमाला में प्रकाश्य कराना चाहें, वे अपनी रचनाएँ कार्यालय में भेजने की कृपा करें। स्वीकृत रचनाओं के प्रकाशित होने पर, इच्छा रखनेवालों को, नियत पुरस्कार दिया जायगा; अस्वीकृत लेख पोस्टेज मिलने पर वापस किए जायँगे। और जो सज्जन, फ़र्मायश के अनुसार घर-बैठे, आनरेरी तौर से या पुरस्कार लेकर, यह सेवा करना चाहें, वे अपने परिचय के साथ पत्र-व्यवहार करने की कृपा करें।

सहायक महानुभावों से

जो सज्जन १) प्रवेश-फ़ीस देकर इस संस्था के सहायक बन जाते हैं, उन्हें कार्यालय द्वारा प्रकाशित सभी पुस्तकें सदैव पौने मूल्य में मिलती हैं,

और १) तक की पुस्तकें बिना डाक-महसूल लिए, फ़्री-पोस्टेज वी० पी० द्वारा, भेजी जाती हैं। इस संस्था के, स्त्री और पुरुष, सभी कोई सहायक हो सकते हैं, और सहायता का रुपया, पार्सल के साथ, वी० पी० द्वारा भी वसूल किया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं कि सहायक स्त्री-पुरुष सभी पुस्तकें ख़रीदें; जो उन्हें पसंद हों, चुनकर मँगावें। सहायकों को कार्यालय में रहनेवाली बाहरी पुस्तकों पर भी =) रुपया कमीशन दिया जाता है।

ग्राहक महानुभावों से

सब कोई सहायक नहीं बन सकते और सब समय सर्वत्र एजेंट वा प्रचारक भी नहीं पहुँच सकते, किंतु इन पुस्तकों का प्रचार घर-घर होना आवश्यक है। इसलिये संस्था के सहायकों की सम्मति से, पहली जुलाई सन् १९३१ ई० से, यह नियम बनाया गया है कि माला की पुस्तकें प्रत्येक ग्राहक को, जो कम-से-कम १) मूल्य तक की मँगावें, बिना डाक-महसूल लिए, फ़्री-पोस्टेज वी० पी० द्वारा, भेजी जायँ। इससे सिर्फ़ एक कार्ड लिखकर डाल देने से ही, सर्वत्र, सब समय, घर-बैठे, माला की सब पुस्तकें नियत मूल्य पर और बाहरी पुस्तकें =) रुपया कमीशन पर, सभी को मिल जाया करेंगी—घर के भीतर रहनेवाली हिंदू-देवियाँ भी पार्सल मँगा सकेंगी।

एजेंटों की आवश्यकता

हिंदू-समाज-सुधारमाला के ट्रैक्टों के देश-व्यापी प्रचार के लिये प्रत्येक हिंदी-भाषी नगर में एजेंटों की आवश्यकता है। केवल १२) की अल्प-पूँजी से ही एजेंसी खुल जाती है। और ईश्वर की कृपा से, हमारे बताए विधान के अनुसार सचाई से काम करने पर, एक साल में ही १२) के दो सौ हो जाते हैं! और क्या चाहिए? परीक्षा करके देख लें। जो महाशय एजेंट होना चाहें, वे एजेंसी के नए नियम मँगाकर ख़ूब समझ लें।

प्रचारकों की आवश्यकता

ऐसे सुधार-प्रेमी देशभक्त प्रचारकों की हर शहर और हर क़सबे में आवश्यकता है जो हमारे ट्रैक्टों के सुधार-संबंधी तथा राष्ट्रीय मनोहर और नित-नए गानों को गा-गाकर प्रचार कर सकें। वेतन प्रतिज्ञानुसार २०), ३०),

४०) मासिक। जो नेकचलन हों, जिनमें देश और समाज-सुधार की लगन हो, जो हिंदी पढ़ सकते हों, जिनकी आवाज़ सुरीली और तेज़ हो, जो गाना जानते हों, और जो कम-से-कम १५) नक़द ज़मानत दे सकते हों, वे ही भाई ⌐) का टिकेट भेजकर विधानपत्र मँगावें।

डाक-पार्सल का महसूल बढ़ गया

विदित हो कि पहली जून सन् १६२१ ई० से सरकारी पोस्टआफ़िस ने पार्सलों का महसूल =) सेर के हिसाब से एकदम बढ़ा लिया है। इस कारण अब माला की एक सौ पुस्तकें डाक द्वारा मँगाने में १) डाक-ख़र्च बैठ जाता है। अतः सौ पुस्तकें एकसाथ मँगानेवाले सज्जनों को या तो वह ख़र्च बर्दाश्त करना चाहिए या अपने निकट की एजेंसी से पुस्तकें लेना चाहिए। कार्यालय पूर्व-सूचनानुसार ३=) में और एजेंसी उसपर ।=) ख़र्च जोड़कर प्रचारार्थ सौ पुस्तकें देने पर सदैव बाध्य है।

पार्सल मँगाने के नियम

(१) पार्सल मँगानेवाले अपना नाम और पूरा पता साफ़-साफ़ लिखें। (२) बैरंग पत्र कभी मत भेजें। (३) उधार भेजने के लिये कभी अनुरोध न करें। (४) एक रुपया से कम मूल्य का वी० पी० नहीं भेजा जाता, कम के लिये लिफ़ाफ़े में टिकेट भेजें। (५) रेल-पार्सल मँगानेवाले रेलवे-स्टेशन का नाम और लाइन लिखना कभी न भूलें। (६) फ़र्मायश भेजकर वी० पी० वापस करनेवालों को दोनो ओर का ख़र्च देना होगा। (७) एजेंटों के सिवा ८) से ऊपर माल मँगानेवाले आर्डर के साथ चौथाई पेशगी अवश्य भेजें, और मनीआर्डर के कूपन पर अपना नाम और पता अवश्य लिखें। (८) सहायक महानुभाव अपना सहायक-नंबर लिखना कभी न भूलें।

पत्र-व्यवहार में पता

कार्यालय-संबंधी समस्त पत्रों में किसी विशेष व्यक्ति का नाम न लिखकर हमेशा इस तरह पता लिखना चाहिए—

मैनेजर, हिंदू-समाज-सुधार कार्यालय
सआदतगंज रोड, लखनऊ

हिंदू-समाज-सुधार-ट्रैक्टमाला की पुस्तकें

(सभी पुस्तकें सचित्र और मूल्य एक-एक आना है)

१. ईश्वर-विनय—इसमें ईश्वर की सार्वभौमिक स्तुति और प्रार्थना के अति सुंदर भजन और ग़ज़लें हैं, और आवरण-पृष्ठ पर कृष्ण भगवान् का दर्शनीय चित्र है। (दूसरी बार)

२. नारी-संगीत-रत्न, प्रथम भाग—इसमें हिंदू-गृहिणी को आदर्श नारी रत्न बनानेवाले प्रायः सभी पारिवारिक और व्यावहारिक विषयों पर सुधार-संबंधी अत्यंत सरस और मनोहर गाने हैं। ऊपर वीणापाणि सरस्वती देवी का मनोहर चित्र है। (बारहवाँ एडीशन)

३. नारी-संगीत-रत्न, द्वितीय भाग—विषय वही। (तीसरी बार)

४. सीता सती—इसमें कविता में श्रीसीताजी की पूरी जीवनी तथा उनके आदर्श चरित्र-संबंधी फुटकल गाने हैं। ऊपर वनगामिनी सीताजी का मनोहर चित्र है। (दूसरी बार)

५. सोहागरात के वादे—नव-विवाहिता पत्नी और नए उमंगभरे पति के प्रथम मिलन के समय के प्रेमपूर्ण, सुधार-संबंधी मनोहर गाने, जिन में आजीवन प्रीति-निबाहने की प्रतिज्ञाएँ हैं। ऊपर सोहागरात में पति-पत्नी का सुंदर चित्र है। नव-दंपति अवश्य देखें। (चौथी बार)

६. अनमेल विवाह—सभ्य-शिक्षित पति की गँवार ज़ेवरपसंद लड़ाका स्त्री ; सभ्य सुशिक्षिता देवी का गँवार-भँगेड़ी-उजड्ड पति ; जवान मदमाती औरत का बालक अनजान पति ; अबोध बालिका का बूढ़ा खूसट पति। इन चारो तरह के बेमेल-विवाहों पर हृदय हिलानेवाले गाने हैं और चारो के हाफ़टोन चित्र। (चौथी बार)

७. विधवा-विलाप—इसमें हिंदू-विधवाओं की शिकायतों और उनके दुःखों का उन्हीं के मुख से वर्णन है। इन गानों को सुनकर और बिलपती विधवाओं का चित्र देखकर पत्थर भी पिघल जाता है ! (चौथी बार)

८. कन्या-संगीत-रत्न—सुघर कन्या, फूहर कन्या और देशभक्त कन्या के लक्षण ; कन्याओं का सुधार ; सुसभ्य कन्या और बूढ़ी दादी का संवाद ; मेलों-तमाशों-तीर्थों और पंडे-पुजारियों की पोल ; समाज-सुधार और राष्ट्रीय जागृति में कन्याओं का कर्तव्य। एक शब्द में इसके मनोहर गाने हिंदू-कन्याओं को देवी बनाने की कुंजी हैं। ऊपर कुमारी का मनोहर चित्र है।

९. औंधी खोपड़ी और घोंघावसंत—इसमें हिंदू-समाज की रूढ़ियों, अंध-विश्वासों, सामाजिक और धार्मिक सत्यानाशियों, धर्मगुरुओं का दंभ और धूर्तता तथा जड़-मूढ़ हिंदू-रईसों और लाला आदि घोंघावसंतों का ऐसा ख़ाका उड़ाया गया है कि पढ़ते ही क्रोध, हँसी और सामाजिक दुर्दशा से जी उबल पड़ता है ! चित्र बड़ा ही अपूर्व है। (दूसरी बार)

१०. वेश्या-दोष-दर्शन—वेश्यागामियों का चरित्र, वेश्याओं की दशा, वेश्याओं से देश और समाज का नाश, वेश्यागामी पतियों को उनकी पत्नियों का समझाना, वेश्याओं को देश और राष्ट्र-सेवा का उपदेश आदि विषयों पर अपूर्व गाने और ग़ज़लें। चित्र अत्यंत मनोहर है। ऊपर वेश्याएँ हैं, द्वार पर वालंटियर पिकेटिंग कर रहा है, घर में वेश्यागामी पति को उसकी स्त्री समझा रही है। (चौथी बार)

११. जुआ-दोष-दर्शन—क्या जुआ खेलना धर्म है ? इस पर गंभीर शास्त्रीय निबंध और बाद में जुआरियों की दशा, जुए से समाज का नाश, जुआरियों को उनकी पत्नियों का समझाना, जुए का बुरा परिणाम, जुआरियों को उपदेश और धिक्कार ! गाने बेमिसाल हैं। जुआरी पति की छल्ला-छल्ला ख़ाली स्त्री का व्याकुल चित्र हृदय को हिला देता है। (दूसरी बार)

१२. नशा-दोष-दर्शन—शराब, ताड़ी, अफ़ीम, चंडू, गाँजा, चरस, सिगरेट, बीड़ी, भाँग, खैनी-पीनी और सुँघनी तंबाकू, कोकेन, जीनतान और तरह-तरह के पान के मसाले आदि नशीली चीज़ों से देश तबाह हो रहा है ! इस पुस्तक के मनोहर गाने और ग़ज़लों में नशों की बुराई और उनके त्याग का दिल दहला देनेवाला वर्णन है। नशेबाज़ों का चित्र देखकर नशों से जी ऊब उठता है। पुस्तक नशों की प्रभावकारी पिकेटिंग है ! (तीसरी बार)

१३. होली हिंदू-सुधार—होली में हिंदुओं का हुरदंग, होली की नशाख़ोरी, होली-त्योहार की असलियत, होली का सुधार, होली का प्रेम, होली की कबीरें, होली का सभी मसाला है। किताब लाजवाब है।

१४. अछूत-पुकार—अछूत-भाइयों ने अपनी दुर्दशा और अपनी दर्द-भरी दास्तान स्वयं अपने मुख से महात्मा गांधी और देश के आगे पेश की है। गाने हृदय हिला देनेवाले हैं। पुस्तक अछूतोद्धार का बीजमंत्र है। चिंतित महात्मा गांधी के सामने अछूतों के पेशवा स्वामी अछूतानंद का चित्र और भी ग़ज़ब है। अद्भुत दृश्य है! (तीसरी बार)

१५. अछूत-पुकार—वही पुस्तक उर्दू में।

१६. राष्ट्रीय डंका और स्वदेशी खादी—(ज़ब्त)

१७. क़ौमी डंका और स्वदेशी खादी—(उर्दू में, ज़ब्त)

१८. स्वतंत्र भारत का सिंहनाद—(ज़ब्त)

१९. स्वदेशी गायन-रत्न—इसमें वंदेमातरम्, राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरू की गुणावली, राष्ट्रीय झंडा एवं अन्य जोशीले चुने हुए २० राष्ट्रीय गायन-रत्न हैं, और कवर पर राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरू का भव्य चित्र है।

२०. द्विजाति कौन हैं? उन्हें जनेऊ क्यों पहनना चाहिए?—यह गद्य-पुस्तक उन हिंदू-जातियों के लिये लिखी गई है जो अब नए सिरे से जनेऊ पहनकर अपने द्विजत्व की घोषणा कर रही हैं। इसमें विरोधियों को मुँहतोड़ जवाब और जनेऊ पहनने के अकाट्य शास्त्रीय प्रमाण हैं। एक शब्द में यह पुस्तक जनेऊ का शंखनाद है! पुस्तक संग्रहणीय है।

२१. आज़ाद भारत के गाने—(ज़ब्त)

२२. स्वदेशी-प्रचार और विदेशी-बहिष्कार—विषय नाम से ही प्रकट है। इसके गाने ऐसे सुंदर, हृदयस्पर्शी और प्रभावकारी हैं कि गाने और सुननेवाला स्वदेशी का भक्त हुए बिना नहीं रहता। पुस्तक स्वदेशी-प्रचार का ढिंढोरा और विदेशी-बायकाट के लिये ख़तरे का घंटा है! आवरण पर राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरू का हँसता हुआ विशाल बस्ट चित्र है। (तीसरी बार)

२३. सुदर्शनचक्र चरखा—चरखे की उपयोगिता, चरखे की गुण-

वली, चरखे की महिमा, चरखे से लाभ, चरखे की प्राचीनता, चरखे से उद्धार, चरखे से प्रेम, और तकली की गुणावली आदि पर अत्यंत सरस और मनोहर गाने हैं। पुस्तक अद्वितीय है, घर-घर प्रचार होने योग्य है। ऊपर चरखा कातती हुई गांधीभक्त गृहिणी का हाफ़टोन चित्र है। (चौथी बार)

२४. राष्ट्रपति मोतीलाल नेहरू—राष्ट्रपति के स्वर्ग-पयान पर उनके शोक में हृदय हिलानेवाली कविताएँ और गाने हैं जिनमें उनके अपूर्व त्याग एवं अटूट राष्ट्र-प्रेम का वर्णन है। और अंत में भारतवासियों के नाम उनका जीवनदायक संदेश है। आवरण पर राष्ट्रपतिजी का दर्शनीय चित्र है।

२५. भवगान् गांधी और उनका धर्मराज्य—नई पुस्तक। गांधी-अवतार, राम और कृष्ण से उनकी तुलना, गांधी-स्तुति, साबरमती के संत, धर्म की नैया के खेवैया, गांधी-गुण-गान, सोलह कला अवतार, गांधी-उपदेश की चेतावनी, गांधी-भक्ति और अंत में महात्मा गांधी की कराची-कांग्रेसवाली २० शर्तों वाले धर्म-राज्य का वर्णन। गाने अपूर्व हैं। गांधी-भक्ति-प्रचार का अपूर्व साधन है। आवरण पर भगवान् गांधी का दिव्य तेजोमय दर्शनीय चित्र है।

२६. भजन कुरीति-निवारण—हिंदू-तीर्थों की दशा, बिगड़ैलों का सुधार, हिंदू-त्योहारों की दशा, जगत् की लीला, विद्या-प्रेम, धर्म-उपदेश, ठहरौनी, परदा, ब्याहों में गाली गाना, नाउत और स्याने, मिथ्या विश्वास तथा सद्ज्ञान का उपदेश आदि विषयों पर अत्यंत मनोहर गाने हैं। पुस्तक गृह सुधार की कुंजी है। ऊपर एक सुसभ्य हिंदू-देवी का मनोहर चित्र है।

२७. कानपुर का दंगा और हिंदू-मुसलिम-प्रेम—इसमें एक मुसलमान कवि हाफ़िज़ करमइलाही "कमतर" की कानपुर के ख़ौफ़नाक दंगे पर हृदयवेधी कविता, स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी का बलिदान और अंत में हिंदू-मुसलिम-प्रेम तथा देश-भक्ति के लिये मर्म स्पर्शी कविता में हिंदू-मुसलमानों से अपील है। आवरण पर कानपुर के दंगे का लोमहर्षण चित्र है।

२८ कानपुरी फ़साद व हिंदू-मुसलिम-इत्तिहाद—वही उर्दू में।

२९. धर्मोद्यान—लखनऊ में एक सर्व-धर्म-सम्मेलन हुआ था जिसमें ईसाई, मुसलमान, हिंदू, आर्य, बौद्ध, थियोसोफ़िस्ट, सिख, अहमदिया

आदि सभी धर्मों के बड़े-बड़े वक्ताओं ने अपने-अपने धर्मों की गुणावली, बिना दूसरे धर्मों पर कटाक्ष किए, वर्णन की थी। इस पुस्तक में उन्हीं सब व्याख्यानों का सार दिया गया है। धार्मिक सहिष्णुता के अभिलाषियों को अवश्य इसका प्रचार करना चाहिए।

३०. नए राष्ट्रीय गाने—लेखक, हाफ़िज़ करमइलाही "कमतर"। इसमें ईश-प्रार्थना, पूज्य मालवीयजी की गुणावली, हिंद की ज़मीन, स्वराज्य, गांधी-उपदेश, किसानों की फ़र्याद, नशेबाज़ी, ग़मे-हिंदोस्तान, देवियों से निवेदन, भारतीयों से विनय आदि विषयों पर नए, जोशीले, राष्ट्रीय गाने हैं। आवरण पर पूज्य मालवीयजी का भव्य दर्शनीय चित्र है।

३१. नारी-उपदेश-भंडार—इसमें स्त्रियों को वीर, कर्तव्य-परायण, ज्ञानी, देश और समाज-सेवी बनानेवाले मनोहर उपदेश-पूर्ण गाने हैं। कवर पर श्रीमती देवी सरोजनी नायडू का अति सुंदर चित्र है।

अन्य नई पुस्तकें, जो सूची के बाद छपी

हिंदू-समाज-सुधार-ट्रैक्टमाला के प्रतिभाशाली संपादक, सुलेखक और सुकवि श्रीचंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु (प्रकाश) द्वारा लिखित, संपादित एवं अनुवादित अन्यान्य पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण

१—हिंदू-संगीत-रत्नाकर (सचित्र)

पूर्वोक्त लोक-विख्यात हिंदू-समाज सुधार-ट्रैक्टमाला के प्रथम १६ गायन-गुच्छों का पहला गुलदस्ता। इसमें ईश्वर-विनय, ज्ञान वैराग्य, नीति-सदाचार, स्त्री-शिक्षा, गृह-सुधार, कुरीति-निवारण, कन्या-उपदेश, पतिव्रता धर्म, सती सीताचरित्र, पतिभक्ति, पतिपत्नीप्रेम, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल-विवाह के दोप, विधवाओं का करुण क्रंदन, धूर्त ठगों के चरित्र, अछूत-पुकार, समाज-सुधार, होली-सुधार, वेश्या-जुआ-नशा-निषेध, स्वदेश-प्रेम, स्वदेशी-प्रचार, विदेशी-बहिष्कार, चर्खा तकली इत्यादि सभी आवश्यक विषयों पर अत्यंत ललित, शुद्ध और मनोहर ग़ज़लें, दादरे, लावनी, क़व्वाली, रसिया आदि नवीन राग-रागिनियों का संग्रह है। प्रत्येक हिंदू-गृह में अवश्य रहना चाहिए। पृष्ठ-संख्या २००; मूल्य सादी १); सजिल्द १।)

२—नारी-संगीत-रत्नाकर (सचित्र)

हिंदू संसार में, आज तक, स्त्रियों के गाने-योग्य कोई ऐसी गायन-पुस्तक न थी, जो प्राचीन हिंदू-आदर्श की रक्षा के साथ-साथ उन्हें नवीन वैज्ञानिक एवं राष्ट्रीय नवजीवन का ज्ञान कराते हुए संसार के स्वाधीन देशों की नारियों को लज्जित करनेवाली वीर-विदुषी एवं देशभक्त हिंदू-रमणी बनावे। इस पुस्तक की रचना करके श्रीजिज्ञासुजी ने एक महान् अभाव की पूर्ति की है। इसमें ईश्वर-भक्ति, मातृ-भूमि-वंदना, कुमारी-व्रत, सेवा-धर्म, प्रेम-महिमा, पतिव्रता-धर्म, कुरीति-निवारण, देश-सुधार, नारी-अधिकार, विधवा-धर्म, प्राचीन देवियाँ, नवीन देवियाँ, ऋतु-गीत, उत्सव-गीत, नीति के उपदेश, ज्ञान, वैराग्य, मोक्ष-साधन इत्यादि आदर्श हिंदू-नारी-जीवन के

प्रायः सभी अंगों का सुंदर विकाश करनेवाली अत्यंत मनोहर जोशीली ग़ज़लें, दादरे, लावनी, क़व्वाली, भजन, चलंत, होली, रसिया, कजली, थिएटर आदि गायन हैं। गाने प्रायः सब नए हैं और पुस्तक अनेक चित्रों से सुशोभित है। आवरण का तिरंगा चित्र अत्यंत मनोमोहक है। पृष्ठ-संख्या लगभग १६०; (पुस्तक छप रही है)

३—राष्ट्रीय गीतांजलि (सचित्र)

ईश्वर-विनय, मातृभूमि-वंदना, वंदेमातरम्, राष्ट्रीय झंडा, स्वदेश-भक्ति, देश-प्रेम, स्वदेशी प्रचार, विदेशी-बहिष्कार, नशा-निषेध, हिंदू-मुसलिम-प्रेम, अछूत-निवारण, स्वतंत्र-भारत-गान, शहीदों की महिमा, नेताओं की गुणा-वली, महिलाओं की देश-भक्ति आदि सभी राष्ट्रीय विषयों पर चुने हुए मनोहर जोशीले गायन-रत्नों का अद्वितीय संग्रह। आवरण पर एक ओर नौ राष्ट्रीय नारी-नेताओं का और दूसरी ओर महात्मा गांधी आदि नौ पुरुष नेतारत्नों का मनोहर हाफ़टोन चित्र है। पृष्ठ-संख्या ६० ; मूल्य ।=)

४—साम्य-तत्त्व (हिंदू-साम्यवाद)

साम्यवाद (Communism) बीसवीं शताब्दी में समाज-तत्त्व का युगांतरकारी आविष्कार है ! इस पुस्तक में साम्य-तत्त्व का विवेचन, साम्य-वाद का इतिहास, राजा और क़ानून की उत्पत्ति, संसार के राजा और रईसों का भीषण स्वेच्छाचार, मज़दूर और किसानों की दयनीय दुर्गति, सभ्यता के उदय से दुर्बल मानव-समाज का पीड़न, हिंदू-वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति के मूल-कारण तथा अबला नारी-जाति की पराधीनता का जादू-भरी भाषा में सजीव वर्णन है !! पुस्तक इतिहास और मानव-समाज का नंगा चित्र है !!! मूल-लेखक हैं, बंगसाहित्यसम्राट् श्रीबंकिमचंद्रचटर्जी और अनुवादक श्रीचंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु। आवरण पर राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू का भव्य चित्र है, भीतर लेखक की जीवनी और चित्र। पृष्ठ सवा सौ; मूल्य ॥=)

५—मूल-भारतवासी और आर्य

(ले०, भदंत बोधानंदजी महास्थविर; संपादक, श्रीचंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु)

वर्तमान हिंदू-समाज आजदिन जाति-भेद, वर्ण-भेद, ऊँच-नीच, छूत-

अछूत के घोर वैषम्य-पूर्ण भयानक दलदल में ऐसा फँसा हुआ है कि लाख-लाख प्रयत्न करने पर भी उससे निकल नहीं पाता। इसका मूल-हेतु क्या है, उसे इस गवेषणा-पूर्ण ग्रंथ में ग्रंथकार ने सप्रमाण दिखाकर यह सिद्ध कर दिया है हिंदू-समाज में महान् क्रांति के बिना सुधार असंभव है! ब्राह्मण-आदि द्विजातियों की घोर स्वार्थपरता एवं आर्य-हिंदू-शास्त्रकारों की नीच स्वार्थपूर्ण नीति की इस पुस्तक में इस तरह क़लई खोली गई है कि अब उसपर मुलम्मा करना असंभव है!! आर्य-द्विजातियों एवं मूल-भारत-निवासियों का यह लोमहर्षण देवासुर-संग्राम प्रत्येक देश-हितैषी समाज-सुधारक के मनन करने योग्य है। कोरी डींग से काम न चलेगा; पापों का प्रायश्चित्त करना होगा! सामाजिक शांति के लिये चित्त की शुद्धि करनी होगी!! और मानना होगा कि समाज-संगठन के लिये 'साम्य-तत्व' के सिवा दूसरा मार्ग नहीं है!!! पृष्ठ-संख्या २६०; मूल्य १॥)

६—आर्य और वेद

(ले०, पं० जगन्नाथप्रसाद पंचोली गौड़; सं०, श्रीचंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु)

आर्य-जाति का आदिम निवास कहाँ था? वे वहाँ से कब, किसलिये, किधर-किधर गए? और किस मार्ग से भारत आकर यहाँ अपनी वैदिक सभ्यता का प्रचार किया? वेदों का वर्तमान रूप, वेदों का वाममार्गियों द्वारा दुरुपयोग, वेदों का अंतर्विभाग, ब्राह्मणी धर्म और यज्ञ-कर्म, वेदों में वैज्ञानिक तत्त्व, वेदों में संसार का भौगोलिक और ऐतिहासिक वर्णन, ध्रुव-प्रदेश की तुषार-प्रलय, आर्य-जीवन और अनार्य जीवन का भेद, इत्यादि विषयों का वर्णन मूल-ऋग्वेद का मंथन करके, पुरातत्त्व की खोज के साथ तुलना करते हुए, किया गया है। पुस्तक बड़ी खोज-पूर्ण है। प्रत्येक आर्य को पढ़ना चाहिए। छपाई और काग़ज़ बढ़िया। पृष्ठ १८६; मूल्य ॥=); सजिल्द १)

७—वेदानुवचन

वेदांत-शास्त्र का यह अद्वितीय ग्रंथ आत्मदर्शी मुनि बाबा नगीनासिंह साहब वेदी के सुविख्यात उर्दू-ग्रंथ का सरल-सुबोध हिंदी-अनुवाद है। अनुवादक हैं, श्रीचंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु। यह वही ग्रंथरत्न है जिसे पढ़कर

प्रोफ़ेसर तीर्थराम गोसाईं एम्० ए० का मन-मयूर नाच उठा था, ज्ञान की लाली उनके भीतर समा न सकी, और सब छोड़ विरक्त हो वे परमहंस स्वामी रामतीर्थजी एम्० ए० के रूप में परिणत हुए ! ब्रह्मदर्शन में तीन प्रतिबंध हैं—मल, विक्षेप और आवरण। इन तीनो के दूर करने का उपाय उपनिषदों में कर्म, उपासना और ज्ञान बताया है, जोकि वेदांत और ब्रह्म-विद्या का सारतत्त्व है। इन्हीं तीनो विषयों का इस ग्रंथरत्न में, तीन खंडों में, अत्यंत ललित, ओजस्वी और दिव्य-वाणी में सजीव वर्णन किया गया है। प्रसिद्ध है कि इस ग्रंथ की श्रद्धा-पूर्वक तीन आवृत्तियाँ कर लेने से ज्ञान के नेत्र खुलकर ब्रह्म दर्शन हो जाता है। ब्रह्म-विद्या के प्रत्येक जिज्ञासु को यह ग्रंथ अवश्य पढ़ना चाहिए। पृष्ठ-संख्या २६० ; मूल्य २)

८—रामचरितमानस वा तुलसीकृत रामायण, आठों कांड

(सटीक, सचित्र, सजिल्द और विशुद्ध)

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास-कृत 'रामचरितमानस" हिंदी-साहित्य का एक अनुपम चमत्कारिक ग्रंथ है। कोई ऐसा हिंदी-भाषी हिंदू-घर न होगा जिसमें यह विद्यमान न हो। श्रीचंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु ने इस ग्रंथरत्न का अत्यंत सरल और मुहाविरेदार शहरी-हिंदी में अनुवाद किया है। अन्य टीकाओं की अपेक्षा इसमें नीचे-लिखी विशेषताएँ हैं—(१) इसका मूल-पाठ प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियों से मिलाकर शुद्ध किया है ; जहाँ भिन्नता है, वहाँ पाठांतर दे दिए हैं। (२) प्रत्येक कथा-प्रसंग पर उसका शीर्षक (हेडिंग) दे दिया गया है। (३) समस्त सांकेतिक अंतर्कथाओं के ज्ञान के लिये विशुद्ध पाद-टिप्पणियाँ हैं। (४) पाठकों को श्रम से बचाने के लिये अनुवाद में शुद्ध स्वाभाविक अर्थ ही ग्रहण किया गया है। (५) धर्मग्रंथ की भाँति पाठ करनेवालों के लिये अयोध्या की प्रति के अनुसार नवाह्न-पाठ और मासिक पाठ भी लगा दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त एक विस्तृत मार्मिक भूमिका, आठो कांडों की बृहत् सूची, गोसाईंजी का जीवनचरित, रामायण-माहात्म्य, प्रभाती, सायं-वंदना, रामशलाका-प्रश्न, आरती, गूढ़ार्थ-दीपिका, श्रीरामपंचायतन का तिरंगा और कथाओं के सादे चित्र आदि सभी आवश्यक

सामग्रियों से ग्रंथ सांगोपांग है। काग़ज़ बढ़िया ; छपाई सुंदर-विशुद्ध ; आकार २२×३२, १६ पेजी ; पृष्ठ-संख्या एक हज़ार से अधिक ; मूल्य केवल ३)

९—श्रीमद्भगवद्गीता (सटीक)

श्रीमद्भगवद्गीता हिंदू-धर्म और हिंदू-ज्ञान का प्राणात्मा है। जबसे हिंदू-महासभा ने गीता को हिंदू-संगठन का मूलाधार बनाने की घोषणा की, तबसे अनेक प्रकाशकों ने गीता के सस्ते संस्करण निकाले हैं ; किंतु इन संस्करणों में गीता के सांप्रदायिक खींचतान से रहित, स्वाभाविक एवं मूल-बोधक अर्थ को ही सरल, मुहाविरेदार शहरी-हिंदी में प्रकाश करने की ओर प्रकाशकों ने ध्यान नहीं दिया। श्रीचंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु ने गीताजी के इस अनुवाद में इन्हीं सब बातों पर विशेष ध्यान दिया है। यही कारण है कि हिंदू-जनता ने इसे ख़ूब पसंद किया। मूल्य =) ; बढ़िया काग़ज़ =)॥

१०—विशुद्ध ज्ञानमाला

बाज़ार में 'ज्ञानमाला' नाम की एक पुस्तक बिकती है, जो महाअशुद्ध और ऊटपटाँग है। अतएव विशुद्ध उपदेशों के प्रचार के लिये श्रीचंद्रिका-प्रसाद जिज्ञासु ने महाभारत से संकलित करके इस पुस्तक का प्रचार किया है। इसमें भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को नित्य-व्यवहार-संबंधी १४६ उपदेश किए हैं। पृष्ठ-संख्या ४० ; आवरण पर कृष्णार्जुन का नयनाभिराम चित्र ; मूल्य =)

११—शिव-महिम्न-स्तोत्र (सटीक)

भक्ति-पूर्वक महिम्न-स्तोत्र के पाठ से आशुतोष शंकरजी शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। किंतु तोता-रटन की तरह पाठ करने से साधक को कुछ नहीं मिलता। श्रीजिज्ञासुजी ने महिम्न का बड़ा ही सरल अनुवाद किया है। कवर पर श्रीशिवजी का दर्शनीय चित्र है। मूल्य केवल -)॥

१२—भगवान् गौतम बुद्ध और उनका उपदेश

(लेखक, भदंत बोधानंद महास्थविर और श्रीचंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु)

इस अद्वितीय ग्रंथ में, बौद्ध-ग्रंथों के आधार पर, बौद्ध-दृष्टि से, भगवान् गौतम बुद्ध का विस्तारित जीवनचरित, उनके उपदेश और उनके अविनाशी निर्वाण-धर्म का वर्णन है। पृष्ठ-संख्या लगभग ३०० । (अभी छपा नहीं)